इकाई – 1 स्वास्थ्य की परिभाषा, स्वस्थ के लक्षण स्वस्थवृत्त का प्रयोजन

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 स्वास्थ्य की परिभाषा
1.4 स्वस्थ के लक्षण
1.5 स्वस्थ वृत्त का प्रयोजन
1.6 सारांश
1.7 शब्दावली
1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.10 सहायक पाठ्य सामग्री
1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना –

हमारे ऋषि और मनीषियों का मानना है कि, मनुष्य का जन्म, जन्म – जन्मान्तरों में किये गये पुण्यों का परिणाम होता है। पूर्व में किये गये सुकृत कर्मो के बिना मनुष्यत्व प्राप्त नहीं हो सकता है। और मनुष्य जीवन को ही अत्यन्त दुर्लभ और महत्वपूर्ण माना गया है। यह सभी स्वीकार करते है कि मनुष्य जीवन अन्य सभी जीव – जन्तुओं से सर्वथा उच्च है और मनुष्य जीवन में ही वह उन्नति कर सकता है। वह अपनी बुद्धि शक्ति का उपयोग करके अद्भुत सफलता प्राप्त कर सकता है। लौकिक दृष्टि से या आध्यात्मिक दृष्टि से, अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मनुष्य को स्वस्थ मन और स्वस्थ तन की आवश्यकता होती है। आरोग्य की आवश्यकता होती है।

आरोग्य के अभाव में लौकिक दृष्टि से भी मनुष्य वाछिंत सफलता प्राप्त नहीं कर सकता है। अतएव आरोग्य रक्षा मनुष्य की प्रथम आवश्यकता है। मनुष्य अपने स्वास्थ्य की रक्षा करते हुए अपने जीवन को सुखमय बनाये। इसी दृष्टि से ही आयुर्वेद का प्रणयन हुआ है। तथा आयुर्वेद के ग्रन्थों में ही कहा गया है। **''धर्मार्थकाममोक्षाणांमारोग्यमूलमत्तमम्''** अर्थात धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरूषार्थो के मूल में आरोग्य ही है। तात्पर्य यह है कि पुरूषार्थ चतुष्टय की सिद्धि तभी होती है। जब मनुष्य का शरीर स्वस्थ हो मन और आत्मा प्रसन्न हो वह सही पथ पर अग्रसर हो।

प्रस्तुत इकाई में आप स्वास्थ्य का विभिन्न परिभाषाओं सहित अध्ययन करेंगे। मनुष्य अपने स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए किन पालनीय नियमों का पालन करता है। इन पालनीय नियमों को ही दिनचर्या के अन्तर्गत बताया गया है। स्वस्थवृत्त का पालन कर मनुष्य अपने स्वास्थ्य को हमेशा उन्नत बनाए रख सकता है, स्वस्थवृत्त का वर्णन, व स्वस्थवृत्त का प्रयोजन का वर्णन इस इकाई में किया गया है।

1.2 उद्देश्य –

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- स्वास्थ्य को समझ सकेंगे।
- स्वास्थ्य की विभिन्न परिभाषाओं का अध्ययन करेंगे।
- स्वस्थ पुरूष के लक्षणों को समझ सकेंगे।
- स्वस्थ वृत्त का प्रयोजन को समझ सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई में दिये गये प्रश्नों के उत्तर देने में सक्षम हो सकेंगे।

1.3 स्वास्थ्य की परिभाषा –

शरीर मन इन्द्रियां और आत्मा इन चारों का पूर्ण स्वस्थ होना ही स्वास्थ्य कहलाता है। अब प्रश्न उपस्थित होता है कि स्वास्थ्य है क्या ?

स्वास्थय शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है, स्व + स्थ। स्व का अर्थ है – आत्मा या अपना, तथा स्थ अर्थात् स्थित होना। अतः स्वयं में स्थित होना ही स्वास्थ्य कहलाता है।

स्व में शरीर, मन, अंतकरण तथा आत्मा आते है। इन सभी का अपनी जगह में स्थित होना ही स्वास्थ्य है।

प्रिय विद्यार्थियों जब हम किसी व्याधि से ग्रस्त रहते है, तो व्याधिग्रस्त या रोगग्रस्त कहलाते है। उस समय हम स्वस्थ नहीं रहते है। तब व्याधिग्रस्त या रोगग्रस्त कहलाते है। स्वस्थ का अर्थ है – निरोग। **जब हम निरोग रहे तथा अपने आप में, सुखस्वरूप आत्मा में स्थित रहे, तभी स्वस्थ कहलाते है।**

स्वास्थ्य का संबध शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक लाभ से है, अर्थात् वही मनुष्य स्वस्थ है, जिसके शरीर में शारीरिक रूप से कोई रोग ना हो, कोई मानसिक द्वन्द ना हो। वह समाज का अभिन्न अंग हो, और आध्यात्मिक रूप से वह स्वस्थ हो, अर्थात् वह ईश्वरीय सत्ता पर विश्वास रखता हो।

शारीरिक स्वास्थ्य क्या है ? मानसिक स्वास्थ्य व आध्यात्मिक स्वास्थ्य कहा है ? इसे इस प्रकार समझा जा सकता है –

- **शारीरिक स्वास्थ्य –** शारीरिक स्वास्थ्य को आधुनिक विज्ञान द्वारा इस प्रकार परिभाषित किया गया है –
- स्वस्थ व्यक्ति वह है, जिसकी एक – एक कोशिका तथा ऊतक से लेकर एक – एक अंग पूरी तरह कार्य कर रहा हो। विभिन्न तंन्त्रों के बीच उसका समायोजन हो तथा मानसिक रूप से भी कोई विकृति ना हो।
- शारीरिक रूप से स्वस्थ वह व्यक्ति है, जिसके शरीर में कोई रोग और कोई व्याधि ना हो।
- **मानसिक स्वास्थ्य –** मानसिक स्वास्थ्य को परिभाषित करते हुए मनोवैज्ञानिक **पी0 बी0 ल्यूकन** ने लिखा है –
- मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति वह है जो स्वयं सुखी है। अपने पड़ोसियों के साथ शान्तिपूर्वक रहता है। अपने बच्चों को स्वस्थ नागरिक बनाता है, और इन आधारभूत कर्तव्यों को करने के बाद भी जिसमें इतनी शक्ति बच जाती है कि वह समाज के हित में कुछ कर सके।
- **सामाजिक स्वास्थ्य –** सामाजिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति वह है, जो समाज के साथ जुड़ा रहे। व्यवहारिक हो। तथा बड़ों का सम्मान करता हो, सभी के साथ आत्मीयता रखता हो। दुर्गति में पड़े लोगों की रक्षा करता हो। तथा वह किसी की भी आत्मा को ठेस नहीं पहुँचाता हो।
- **आध्यात्मिक स्वास्थ्य –** आध्यात्मिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति वह है, जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, आलस्य, ईर्ष्या, भय, प्रमाद, चिंता आदि से दूर रहता हो, व स्वयं के सभी कर्मो को प्रभु को अर्पित कर देने वाला हो, ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पित हो।

इस प्रकार अच्छे स्वास्थ्य की कल्पना ही समग्र स्वास्थ्य है। जिसमें शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य, बौद्धिक स्वास्थ्य, आध्यात्मिक स्वास्थ्य और सामाजिक स्वास्थ्य आदि भी शामिल है।

स्वास्थ्य के सम्बन्ध में आयुव्रेद के ग्रन्थों में कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएं दी गयी है – जो निम्न प्रकार से हैं –

सुश्रुत के अनुसार –

''समदोषः समाग्निष्च समधातुमलक्रियः।

प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ।।" (सु0 सू0 15/41)

अर्थात् जिस पुरूष के दोष, धातु, मल तथा अग्नि व्यापार सम हो तथा जिसकी इन्द्रियाँ मन तथा आत्मा प्रसन्न हो, वही स्वस्थ है।

इस परिभाषा में प्रथम पंक्ति में वर्णित 'दोष, धातु, मल अग्नि' आदि का उल्लेख कर शारीरिक स्वास्थ्य की ओर संकेत किया गया है। कि वह व्यक्ति जिसके तीनों दोष (वात–पित्त–कफ) सम हो, अर्थात् इनमें विषमता ना हो, विषमता का अर्थ है कि आवश्यकता से अधिक कोई एक दोष की वृद्धि या कोई एक दोष कम ना हो जाए। क्योंकि ये दोष अपने प्राकृत कर्म द्वारा हमारे शरीर का उपकार करते हैं। ये हमारे शरीर को धारण किये रहते है। अर्थात् किसी एक दोष की वृद्धि या किसी एक दोष का क्षय हो जाता है। जैसे शरीर में कफ की वृद्धि होने पर वात और पित्त कम हो जाता है। यही स्थिति रोग की अवस्था है। हमारे शरीर में इनका सम रहना पूर्ण स्वास्थ्य है। जब ये दोष दूषित होते है तब ये धातुओं को भी दूषित करते है। धातुओं के दूषित होने को आयुर्वेद में धातुवैषम्य कहा गया है धातु वैषम्य होने पर किसी एक धातु की वृद्धि तथा किसी एक धातु का क्षय हो जाता है। जो रोग की अवस्था है। अतः धातुओं का सम होना आवश्यक है। इसी प्रकार आयुर्वेद के अनुसार हमारे शरीर में 13 प्रकार की अग्नियाँ है। पाँच भूताग्नि (पंच महाभूतों की अग्नि) सात धात्वाग्नि (सात धातुओं की अग्नि) तथा एक जठराग्नि (पाचकाग्नि) इन तेरह प्रकार की अग्नि में समाग्नि होना आवश्यक है। इसी प्रकार शरीर में आयुर्वेद के अनुसार तीन प्रकार के मल (श्वेद, मूत्र, पूरीष) है। इन मलादि का शरीर से निश्चित मात्रा में निष्कासन होना चाहिए। शरीर से अधिक मात्रा में मल का निष्कासन भी रोग की स्थिति है। शरीर में अधिक मात्रा में मल रहने पर भी रोग होते है। अर्थात् मलों के निष्कासन की क्रिया भी सम होनी चाहिए। इस प्रकार इन सभी (दोष धातु मल, अग्नि) का समान होना शारीरिक स्वास्थ्य है।

इस परिभाषा में द्वितीय पंक्ति में वर्णित 'मल '– आत्मा – इन्द्रिय' सम्बन्धी भाव का सम्बन्ध मानसिक, आध्यात्मिक और सामाजिक स्वास्थ्य से है।

इस प्रकार जिस व्यक्ति के इन्द्रियाँ नियंत्रित हो, और मन नियंन्त्रित हो, आत्मा प्रसन्न हो वही स्वस्थ हैं।

इस प्रकार महर्षि सुश्रुत ने पूर्ण स्वास्थ्य की परिभाषा दी है। क्योंकि पूर्ण स्वास्थ्य ही आयुर्वेद का मूल लक्ष्य है। आधुनिक समय में विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने अनेकों बार सुधार कर स्वास्थ्य की परिभाषा दी है –

Health is a state of complete physical, mental, spiritual and social wellbeing and not merely the absence of disease or infirmity.

अर्थात् शरीर में रोगों की अनुपस्थिति मात्र ही पूर्ण स्वास्थ्य नहीं है, बल्कि स्वास्थ्य तो वह स्थिति होती है, जिसमें व्यक्ति शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक रूप से पूर्ण स्वस्थ रहे।

इस प्रकार आचार्य सुश्रुत ने तथा WHO ने व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक इन पक्षों को मिलाकर समग्र स्वास्थ्य के लक्षणों को प्रकट किया है। इसी प्रकार योग भी व्यक्ति के एकांगिक विकास की बात नहीं करता। योग शास्त्र व्यक्ति के जीवन के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक व सामाजिक पहलुओं को लेता है।

महर्षि चरक के अनुसार स्वास्थ्य की परिभाषा –

"हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते।।" (चरक संहिता, सूत्र स्थान 1/41)

अर्थात् सुखायु – दुखायु का तात्पर्य मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन के सुख – दुःख से है, जबकि हितायु और अहितायु का संकेत मनुष्य के सामाजिक पक्ष की ओर है। अर्थात् जो पुरूष सामाजिक दृष्टि से स्वस्थ है वह हितायु है, और इसके विपरीत वाला अहितायु है। इस प्रकार सुखायु (शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ) हितायु

(सामाजिक व आध्यात्मिक रूप से स्वस्थ) ही आयुर्वेद के अनुसार स्वस्थ व्यक्ति को परिभाषित करते है। व्यक्ति का सुखायु और हितायु होना ही पूर्ण स्वास्थ्य है।

प्रिय विद्यार्थियों आधि व्याधि से युक्त होना स्वास्थ्य का नकारात्मक पक्ष कहा जाता है, तथा शारीरिक कार्यो को उचित प्रकार से करना तथा प्रसन्नचित रहना यह एक सकारात्मक पक्ष है।

कश्यप संहिता में भी स्वास्थय के विविध शारीरिक व मानसिक लक्षण बताये गये हैं। वहा पर स्वास्थ्य के लिए आरोग्य शब्द का प्रयोग किया गया है।

इस प्रकार प्रिय विद्यार्थियों मानव शरीर धारी के लिए स्वास्थ्य (आरोग्य) प्रथम आकांक्षा है। इसलिए आरोग्य ही पुरूषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) का मूल माना गया है। तथा तीन ऐषणाओं (प्राणैषणा, धनैषणा, लोकेषणा) की पूर्ति का माध्यम माना गया है। इन सभी के मूल में स्वास्थ्य (आरोग्य) ही है।

जैसा कि **चरक संहिता** में कहा गया है –

''धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमूत्तमम्'' (च0सू0 – 1)

अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरूषार्थ के मूल में आरोग्य ही है। अतः मनुष्य को मनोयोग पूर्वक सदा स्वस्थ रहकर पुरूषार्थ चतुष्टय प्राप्ति हेतु तत्पर रहना चाहिए।

1.4 स्वस्थ के लक्षण –

प्रिय विद्यार्थियों आरोग्य प्रकृति की देन है। आरोग्य स्वाभाविक है। और आरोग्य की रक्षा करना मनुष्य का प्रमुख कर्तव्य है। स्वास्थ्य (आरोग्य) की रक्षा के लिए आयुर्वेद शास्त्र में स्वस्थवृत्त आदि का उल्लेख किया गया है, जिनको धारण कर मनुष्य उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति कर सकता है, तथा अनेक आधि – व्याधियों का निवारण कर सकता है। आरोग्य धारण कर मनुष्य स्वस्थ पुरूष कहलाता है। इसी स्वस्थ पुरूष के लक्षण आयुर्वेद शास्त्रों में बताये गये है कि स्वस्थ पुरूष के क्या लक्षण होते है। किस आधार पर उन्हें स्वस्थ कहा जा सकता है। किन्तु स्वस्थ पुरूष के लक्षणों की व्याख्या करने से पूर्व जीव की बहुपक्षीय आयुर्वेदीय धारणा को जानना आवश्यक है –

''शरीरेन्द्रिय सत्वात्मसंयोगो धारि जीवितम्।'' (च0 सं0 1)

अर्थात् पुरूष शरीर, इन्द्रिय, सत्व (मन) आत्मा का संयोग है। अर्थात् आयुर्वेद के अनुसार जीवित पुरूष के ये चार पक्ष हैं। अतः जब स्वस्थ पुरूष के लक्षणों की व्याख्या की जाए तो स्वास्थ्य के लक्षणों का उल्लेख भी पुरूष के उन चारों पक्षों के संदर्भ में होना उपर्युक्त है। आचार्य सुश्रुत ने पूर्ण स्वास्थ्य के लक्षणों का वैज्ञानिक वर्णन इस प्रकार परिभाषित किया है –

''समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ।।'' (सु0 सू0 15/41)

उपर्युक्त परिभाषा पुरूष के चारों पक्षों – शरीरेन्द्रियसत्वात्म' की ओर संकेत करती है। जिस पुरूष के दोष, धातु, मल तथा अग्नि व्यापार सम हो। तथा जिसकी इन्द्रिया, मन तथा आत्मा प्रसन्न हो, वही स्वस्थ है।

सुश्रुत संहिता के अनुसार – इस प्रकार सुश्रुत संहिता की उपरोक्त परिभाषा के अनुसार स्वस्थ पुरूष के लक्षण निम्न प्रकार से समझे जा सकते है –

स्वस्थ पुरूष वह है –

- जिसके तीनों दोष (वात–पित्त–कफ) सम हो।
- जिसकी धातुए सम हो, न अधिक वृद्धि हो ना कमी हो।
- अग्नियाँ सम हों, जठराग्नि प्रदीप्त हो।
- मल (स्वेद, मूत्र, पुरीष) का उचित मात्रा में शरीर में बना रहना आवश्यक हो तथा उचित मात्रा व समय में निष्कासन होता हो।
- मन, इन्द्रियां प्रसन्न हो, नियंत्रित हो, तो आत्मा स्वयं ही प्रसन्न रहेगी।

- **काश्यप संहिता के अनुसार स्वस्थ पुरूष के लक्षण –** काश्यप संहिता में निम्न परिभाषा दे कर स्वस्थ पुरूष के लक्षण का वर्णन किया गया है –

"अन्नाभिलाषो शुक्तस्य परिपाकः सुखेन च।
सृष्टविण्मूत्रवातत्वं शरीरस्य तु लाघवम।।
सुप्रसन्नेन्द्रियत्वं च सुख स्वप्नप्रबोधकम्।
बलवर्णायुषी लाभ सौमनस्यसमाग्निता।।
विद्यादारोग्यलिंगानि विपरीते विपर्ययम्।"

उपरोक्त परिभाषा में अन्नाभिलाष, परिपाक, विण्मूत्रवात का यथोचित प्रवाह, शरीर में लघुता तथा समाग्निता शारीरिक स्वास्थ्य के लक्षण है। तथा 'सुप्रसन्नेद्रियत्वम्' व सुखस्वप्नप्रबोधकम् मानसिक स्वास्थ्य के द्योतक हैं।
इस प्रकार काश्यप संहिता के अनुसार स्वस्थ पुरूष के निम्न लक्षण है –

1. अन्नाभिलाषी – भूख खुलकर लगना
2. परिपाक – भोजन का पाचन समय पर हो जाना।
3. विण्मूत्रवात का यथोचित प्रवाह – मलों का निष्कासन समय पर निश्चित मात्रा में।
4. शरीर में लघुता – शरीर भारीपन (आलस्य आदि) का ना होना
5. समाग्निता – अग्नि का सम होना
6. सुप्रसन्द्रियत्वं – मन तथा इन्द्रिया प्रसन्न हों।

इस प्रकार आयुर्वेद शास्त्र में स्वस्थ पुरूष के लक्षण उपरोक्त वर्णित किये गये हैं, तथा स्वस्थ रहने के परिणामस्वरूप पुरूष को बल, वर्ण तथा आयुष्य प्राप्त होता है। जिसका विस्तृत वर्णन इस प्रकार से है –

1. **अन्नाभिलाषी – भूख खुलकर लगना –** कश्यप संहिता के अनुसार स्वस्थ पुरूष को भूख ना ज्यादा ना कम लगती है, उसे भूख खुलकर लगती है।
2. **परिपक – भोजन का पाचन समय पर हो जाना –** स्वस्थ पुरूष का भोजन सही समय पर पच जाता है। पेट में भारीपन नहीं होता।
3. **विण्मूत्रवात का यथोचित प्रवाह – मलों का निष्कासन समय पर निश्चित मात्रा में –** स्वस्थ पुरूष में मल (स्वेद, पुरीष, मूत्र) निश्चित मात्रा में शरीर में बने रहते है। निश्चित मात्रा में ये शरीर को बल देते हैं तथा निश्चित मात्रा में इनका निष्कासन होना आवश्यक है । स्वस्थ पुरूष में इनका निष्कासन सही समय पर होता है।
4. **शरीर में लघुता – शरीर भारीपन (आलस्य आदि) का ना होना –** स्वस्थ पुरूष के शरीर में तमोगुण आदि भाव नहीं होते है, शरीर में आलस्य आदि न ही होता है, जिससे शरीर में स्फूर्ति और हल्कापन बना रहता है।
5. **समाग्निता – अग्नि का सम होना –** आयुर्वेद के अनुसार शरीर में 13 प्रकार की अग्नियाँ है। पाँच पंच महाभूतों की अग्नि, सात, सप्त धातुओं की धात्वग्नि और एक पाचकाग्नि या जठराग्नि इन सभी अग्नियों का सम होना ही पूर्ण स्वास्थ्य है।
6. **सुप्रसन्द्रियत्वं – मन तथा इन्द्रिया प्रसन्न हों –** यह पंक्तियां मानसिक व आध्यात्मिक स्वास्थ्य को परिभाषित करती है। जब मनुष्य का शरीर स्वस्थ रहता है, तो मस्तिष्क भी स्वस्थ रहता है। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है। शरीर के स्वस्थ होने पर ही इन्द्रियाँ व मन नियंत्रित हो जाते है। यही स्वस्थ व्यक्ति के लक्षण है।

स्वस्थ रहने के परिणाम स्वरूप व्यक्ति में बल वर्ण की प्राप्ति होती है। आरोग्य और आयुष्य की प्राप्ति होती है।

1.5 **स्वस्थ वृत्त का प्रयोजन –** प्रिय विद्यार्थियों अभी तक आपने स्वास्थ्य की परिभाषा तथा स्वस्थ पुरूष के लक्षणों का अध्ययन किया। अब आपके मन में यह प्रश्न उठ रहे होंगे कि क्या इस स्वास्थ्य (आरोग्य) को प्राप्त करने के लिए तथा इस आरोग्य को हमेशा बनाए रखने के लिए किन पालनीय नियमों की आवश्यकता है, तथा यह प्रयोजन किस शास्त्र का है ?

प्रिय विद्यार्थियों जैसा कि नाम से स्पष्ट है कि स्वस्थवृत्त अर्थात् स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए पालनीय नियमों का वृत्त, इसे ही स्वस्थवृत्त कहते हैं। **स्वस्थवृत्त का वर्णन आयुर्वेद के ग्रन्थों में मिलता है।** प्रिय विद्यार्थियों यहाँ स्पष्ट कर दें कि आयुर्वेद का जो प्रयोजन आयुर्वेद के ग्रन्थों में मिलता है उसे ही स्वस्थवृत्त का प्रयोजन कह दिया गया है। अतः आयुर्वेद का प्रयोजन निम्न है –

आयुर्वेद के प्रयोजन का वर्णन चरक संहिता के अनुसार –

'प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणंमातुरस्य विकार प्रषमनं च।।

(चरक संहिता, सूत्र स्थान 1/12)

अर्थात् यहाँ आयुर्वेद का प्रयोजन व्याधि से पीड़ित मनुष्यों को व्याधि से मुक्त करना तथा स्वस्थ मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा करना है।

इस प्रकार प्रिय विद्यार्थियों चरक संहिता व सुश्रुत संहिता के अनुसार आयुर्वेद के दो प्रयोजन है –

1. स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य का रक्षण करना।
2. आतुर (व्याधि से पीड़ित) मनुष्य के विकार का शमन करना ।

1. **स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य का रक्षण करना –** प्रिय विद्यार्थियों आयुर्वेद शास्त्रों में स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थय को कैसे यथोचित काल तक रक्षण किया जा सके किस प्रकार आरोग्य प्राप्त किया जा सके और आरोग्य प्राप्ति के लिए उचित आहार – विहार क्या है ? इसका वर्णन किया गया है – कि स्वस्थ व्यक्ति किस प्रकार दिनचर्या, रात्रिचर्या और ऋतुचर्या का पालन कर स्वास्थ्य का रक्षण कर सकता है –

''दिनचर्या निषाचर्यामृतुचर्या यथोदिताम्।
आचरन् पुरूषः स्वस्थः सदा तिष्ठति नान्यथा।।''

अर्थात् स्वस्थ मनुष्यों के लिए आयुर्वेद शास्त्र में दिनचर्या, निशाचर्या और ऋतुचर्या का वर्णन किया गया है तथा उन्ही के अनुसार आहार – विहार का विधान बताया गया है। तथा जो मनुष्य इसके अनुसार आचरण करता है। वह निश्चय ही स्वस्थ रहता है। अन्य कोई नहीं। और वह मनुष्य अपनी दीर्घायु का उपभोग करता है।

स्वस्थवृत्त के अन्तर्गत देश, काल, ऋतु और प्रकृति के अनुरूप आहार – विहार का वर्णन किया गया है। क्योंकि देश काल ऋतु और अपनी प्रकृति के अनुसार आहार – विहार करने से तीनों दोष (वात, पित्त, कफ) प्राकृत अवस्था (सम) बने रहते है। अग्नि भी सम बनी रहती है। तथा मल (स्वेद–मूत्र–पूरीष) की क्रिया भी सम रहती है। अर्थात् मलादि का निष्कासन उचित समय तथा उचित मात्रा में होता है, तथा इन्द्रियाँ मन और आत्मा प्रसन्न रहते है। इस प्रकार शरीर में किसी भी प्रकार की विषम स्थिति नहीं होती है तथा मनुष्य के शरीर की सभी क्रियाएं प्राकृत रूप में होती रहती है। तथा शरीर में विकार उत्पन्न नहीं होते। मनुष्य सदैव स्वस्थ ही रहता है।

इस प्रकार स्वस्थ मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा करना तथा देश, काल, ऋतु प्रकृति के अनुसार उसके सम्यक् आहार – विहार का उपदेश करना स्वस्थवृत्त का प्रयोजन है।

प्रिय विद्यार्थियों आपने अभी तक स्वस्थवृत्त के प्रयोजन का अध्ययन किया जो कि आयुर्वेद का प्रथम प्रयोजन है। अब आपके मन में जिज्ञासा हो रही होगी कि यह स्वस्थवृत्त है क्या ? इसलिए अब स्वस्थवृत्त का संक्षिप्त अध्ययन आप करेंगे।

स्वस्थ वृत्त – स्वस्थवृत्त की उत्पत्ति दो शब्दों से मिलकर हुयी है। प्रथम शब्द स्वस्थ एवं द्वितीय शब्द है वृत्त। स्वस्थ का अर्थ है स्व में स्थित होना। तात्पर्य यह है कि वह अवस्था जिसमें व्यक्ति अपने में स्थित हो स्वास्थ्य कहलाता है। द्वितीय शब्द वृत्त से तात्पर्य है घेरा। अर्थात् पालनीय नियमों का घेरा। इस प्रकार स्वस्थववृत्त का अर्थ – ऐसे पालनीय नियमों का वृत्त जिसके पालन से स्वस्थ व्यक्ति सदा स्वस्थ रह सकता है तथा पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त कर सकता है तथा इनके अपालन से मनुष्य का शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक स्वास्थ्य कमजोर हो जाता है। इसलिए स्वास्थ्य रक्षा के लिए स्वस्थवृत्त का पालन करना चाहिए। चरक संहिता में कहा गया है –

''सर्वमन्यत्परित्यज्य शरीरमनुपालयेत्। तदभावेहिभावानां सर्वाभावः शरीरिणाम्।।

(च0 नि0 6/7)

अर्थात् संसार में सब कुछ छोड़कर स्वशरीर का पालन करना चाहिए। क्योंकि शरीर ही सभी सुख – दुःख के भोग का माध्यम है।

चरक संहिता में अन्यत्र कहा गया है कि –

'' नगरी नगरस्येव रथस्येव रथी। स्वषरीरस्य मेधावी कृत्येष्ववहितो भवेत्।।''

(च0 सू0 5/103)

अर्थात् जिस प्रकार नगर स्वामी नगर तथा सारथी रथ की रक्षा में सदा तत्पर रहता है, उसी प्रकार बुद्धिमान पुरूष को अपने शरीर की रक्षा में सदा तत्पर रहना चाहिए।

आयुर्वेद में स्वास्थ्य की रक्षा के लिए स्वस्थवृत्त का उल्लेख है। जिसके अन्तर्गत दिनचर्या, रात्रिचर्या तथा ऋतुचर्या का वर्णन किया गया है –

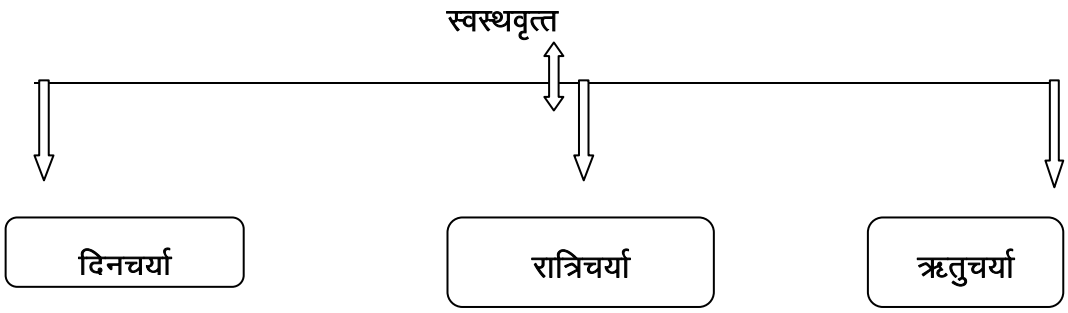

1. **दिनचर्या –** प्रातःकाल ब्रह्ममुर्हुत में उठने से लेकर संध्या काल तक किये जाने वाले ऐसे सुव्यवस्थित कर्म जिससे स्वास्थ्य उन्नत अवस्था में बना रहता है। शरीर में बल व दीघार्यु की प्राप्ति होती है। दिनचर्या के अन्तर्गत आते है।

दिनचर्या के अन्तर्गत निम्नलिखित कर्म आते है–

- **आत्मबोध की साधना** – ब्रह्ममुहुर्त में उठ कर यह साधना की जाती है। ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण तथा कृतज्ञता का भाव तथा पूरे दिन के लिए मार्गदर्शन की कामना इस साधना में की जाती है।
- **भूनमन –** पृथ्वी पर स्पर्श के लिए क्षमा याचना तथा साथ ही पृथ्वी तत्व से ऊर्जा लेने का विधान किया गया है।
- **ऊषापान –** प्रातः शौच जाने से पूर्व ऊषापान का विधान है। ऊषापान में शीतोदक (ठण्डा) जल ही पीना चाहिए। जिससे पाचन संस्थान को बल मिलता है।
- **शौच –** ऊषापान के पश्चात शौच का क्रम आता है। सूर्योदय से पूर्व ही शौच जाना चाहिए।

- **दन्त धावन –** प्राचीन काल में दन्तधावन के लिए नीम तथा बबूल आदि की लकड़ी का प्रयोग बताया गया था, किन्तु आजकल ब्रश का प्रयोग होने लगा है। फिर भी दन्तधावन के लिए आयुर्वेदिक दन्त मंजन ही प्रयोग करना चाहिए।
- **जिह्वा निर्लेखन –** दन्तधावन के पश्चात जिह्वा निर्लेखन का क्रम आता है। इससे जिह्वा की अच्छी तरह सफाई हो जाती है।
- **गण्डूष या गरारा –** दन्त धावन के पश्चात शीतल जल से अथवा स्नेह (तिल तैल) का गरारा करने का विधान आयुर्वेद शास्त्र में दिया गया है।
- **मुख प्रक्षालन –** गण्डूष के पश्चात मुख एवं नेत्र प्रक्षालन करना चाहिए।
- **अंजन –** मुख प्रक्षालन के पश्चात अंजन लगाना चाहिए। अंजन के प्रयोग से दृष्टि सम्यक् बनी रहती है।
- **नस्य –** आयुर्वेदाचार्यो ने प्रतिदिन नासाछिद्रों में स्नेह लगाने का निर्देश दिया है, क्योंकि प्रतिदिन नस्य करने से उर्ध्वजत्रुगत रोग नहीं होते है।
- **धूमपान –** औषधीय द्रव्यों को लेकर धूमपान करने का निर्देश आचार्यो ने दिया है। जिससे मस्तिष्क व गले के रोगों का नाश होता है।
- **व्यायाम एवं चंक्रमण –** इसके पश्चात व्यायाम का क्रम आता है। जो व्यक्ति व्यायाम करने में समर्थ हो उन्हें सामर्थ्य के अनुसार व्यायाम करना चाहिए तथा जो समर्थ ना हो उन्हें चंक्रमण (चहलकदमी) करना चाहिए।
- **क्षौर कर्म –** केश, नख, रोमापमार्जन को अत्यन्त आवश्यक एवं स्वस्थवृत्त की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है। यह शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य एवं मानवोचित सौन्दर्य का कारक है।
- **अभ्यंग –** आयुर्वेद में अभ्यंग को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। अभ्यंग विशेष रूप से वातहर तथा वेदनाहर है। अभ्यंग जराहर तथा आयु को बढ़ाने वाला, त्वचा को सुन्दर बनाने वाला है।
- **शरीर परिमार्जन –** औषधीय चूर्ण या औषधीय कल्क आदि को शरीर पर लगाना परिमार्जन है। इससे त्वचा में स्थित जीवाणुओं का नाश होता है, तथा रोम छिद्र खुलते है।
- **स्नान –** नित्य प्रति स्नान रोगों का नाश करता है। यह निद्राहर है, तथा स्वेद, खुजली का नाश करता है। ऋतुओं के अनुकूल जल से स्नान करना चाहिए।
- **वस्त्र धारण –** सदा निर्मल वस्त्र ही धारण करने चाहिए। निर्मल वस्त्र, हर्षकारक, प्रीतिवर्धक तथा उत्साह वर्धक होते हैं।
- **सन्ध्योपासना एवं ध्यान –** प्रतिदिन की दिनचर्या में सन्ध्योपासना का विशेष महत्व है। इससे सद्प्रवृत्ति, बुद्धि, यश, कीर्ति तथा आत्मिक रूप से ऊर्जा प्राप्त होती है।
- **स्वाध्याय –** स्वाध्याय द्वारा सद्ग्रन्थों का अध्ययन मनन करना तथा उन्हें अपने जीवन में उतारकर स्वयं का जीवन उत्कृष्ट बनाना यह स्वाध्याय है। यह दिनचर्या का प्रमुख अंग है।
- **भोजन –** आयुर्वेद के ग्रन्थों में आहार को अमृत कहा गया है तथा इसका सेवन युक्ति पूर्वक करने का निर्देश दिया गया है। सुश्रुत संहिता में आहार को शरीर को पुष्ट करने वाला, बलकारक, देहधारण करने वाला, आयु, तेज, उत्साह स्मृति देने वाला तथा अग्नि को बढ़ाने वाला कहा गया है।

इस प्रकार प्रिय विद्यार्थियों दिनचर्या का संक्षिप्त अध्ययन आपने किया, अब स्वस्थवृत्त का दूसरा अंग रात्रिचर्या का संक्षिप्त वर्णन आयुर्वेद के ग्रन्थों के अनुसार निम्न है –

2. **रात्रिचर्या –** सन्ध्याकाल के लिए उचित आचरण से रात्रिकाल में करणीय कर्म रात्रीचर्या के अन्तर्गत आते है। रात्रीचर्या के अन्तर्गत रात्री भोजन, शयन, निद्रा एवं स्वप्न, ब्रह्मचर्यादि पालन आदि कर्म स्वस्थवृत्त सम्बन्धी रात्रीचर्या के अंग है।

   अन्त में तत्वबोध की साधना की जाती है। सोने से पहले तत्वबोध की साधना में दिन भर के कार्यो की समीक्षा की जाती है। भूलों के लिए क्षमा प्रार्थना तथा सब कुछ प्रभु को सौंप कर स्वयं भी उसी की गोद में सो जाना चाहिए।
3. **ऋतुचर्या –** दिनचर्या एवं रात्रिचर्या के सभी पालनीय नियमों का पालन करने के साथ – साथ ऋतुचर्या का पालन करना अनिवार्य है। ऋतुचर्या अर्थात् ऋतुओं के अनुकूल आहार – विहार करना। ऋतुओं के लक्षणों को देखकर उनके अनुकूल आहार – विहार का सेवन करने से मनुष्य सदा स्वस्थ रहता है। संक्षिप्त ऋतुचर्या का वर्णन इस प्रकार से है –

   ऋतुचर्या के अन्तर्गत 12 महीनों में दो – दो महिनों की छः ऋतुयें होती है। संक्षिप्त ऋतुचर्या का वर्णन इस प्रकार से है –

क्रम सं0	*ऋतुएं*	*माह*	*अवधि*
1	*शिशिर ऋतु*	*माघ, फाल्गुन*	*16 जनवरी – 15 मार्च तक*
2	*बसन्त ऋतु*	*चैत्र, बैषाख*	*16 मार्च – 15 मई तक*
3	*ग्रीष्म ऋतु*	*ज्येष्ठ, अषाढ*	*16 मई – 16 जुलाई तक*
4	*वर्षा ऋतु*	*श्रावण, भादो*	*16 जुलाई – 15 सितम्बर तक*
5	*शरद ऋतु*	*अश्विन, कार्तिक*	*16 सितम्बर – 15 नवम्बर तक*
6	*हेमन्त ऋतु*	*मार्गषीर्ष, पौष*	*16 नवम्बर – 15 जनवरी तक*

1. **हेमन्त ऋतुचर्या (*मार्गषीर्ष, पौष*) 16 नवम्बर – 15 जनवरी तक –** हेमन्तु ऋतुचर्या में जठराग्नि तीव्र रहती है। शारीरिक बल श्रेष्ठ रहता है। अतः गुरू आहार पचने में समर्थ होते हैं। हेमन्त ऋतु में आतप सेवन, अभ्यंग, शिरोभ्यंग, भूमि गृह में निवास लाभकारी है। गरम वस्त्रों को धारण करना चाहिए।
2. **शिशिर ऋतुचर्या (माघ–फाल्गुन) 16 जनवरी – 15 मार्च तक –** हेमन्त ऋतु तथा शिशिर ऋतु में समानता है परन्तु इस ऋतु में वर्षा जन्य शीत बढ़ जाती है। शिशिर ऋतु में वात रहित गर्म गृह में निवास करना चाहिए। शिशिर ऋतु में कटु – तिक्त कषाय, तथा शीतल अन्नपान का त्याग कर देना चाहिए।
3. **बसन्त ऋतुचर्या (चैत्र – बैशाख) 16 मार्च – 15 मई तक –** बसन्त ऋतु में संचित कफ का निष्कासन होता है। सूर्य की तीव्र रश्मियों से शरीर की अग्नि बल मंद पड़ जाता है। शारीरिक बल मध्यम हो जाता है। इस कारण बसन्त ऋतु में पंचकर्म आदि का विधान किया गया है। बसन्त ऋतु में व्यायाम, उबटन तथा सुखोष्ण जल से स्नान करना चाहिए। बसन्त ऋतु में शरीर में चन्दन व अगर का लेप करना चाहिए। जौ व गेहूँ का भोजन करना चाहिए। इस ऋतु में जठराग्नि मंद रहती है। अतः कई तरह के रोग उत्पन्न होते हैं।
4. **ग्रीष्म ऋतुचर्या (ज्येष्ठ – अशाढ) 16 मई – 16 जुलाई तक –** ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की तीव्र किरणों द्वारा संसार का स्नेह सूख जाता है। इस ऋतु में रूक्षता रहती है तथा शारीरिक बल दुर्बल रहता है। इस ऋतु में शीतगृह में निवास

करना चाहिए तथा चंदन आदि का लेप करना चाहिए। इस ऋतु में घी, दूध, चावल, शीतल मैन्था आदि का सेवन करना चाहिए।

5. **वर्षा ऋतुचर्या (श्रावण – भादो) 16 जुलाई – 15 सितम्बर तक –** आदान काल के कारण मनुष्य के शरीर का बल अत्यन्त दुर्बल रहता है। जठराग्नि भी दुर्बल रहती है। इस ऋतु में वातादि दोष कुपित हो जाते है। इस ऋतु में वस्त्र हल्के, तथा उबटन स्नान आदि कर क्लेद रहित पवित्र स्थान पर बैठना चाहिए। जठराग्नि की रक्षा के लिए पुराने जौ, गेहूँ, चावल का प्रयोग करना चाहिए। इस ऋतु में शहद का सेवन अवश्य करना चाहिए।
6. **शरद ऋतुचर्या (अश्विन –कार्तिक) 16 सितम्बर – 15 नवम्बर तक –** वर्षा ऋतु में संचित पित्त शरद ऋतु में प्रकुपित हो जाता है। पित्त को शान्त करने वाले आहार लेने चाहिए। प्रायः सभी को गेहूँ, चावल का सेवन करना चाहिए। शरद ऋतु में धूप का सेवल, तैल, वसा, दही आदि का सेवन नहीं करना चाहिए। दिन का शयन व पूर्वी हवा का सेवन करना चाहिए।

इस ऋतु में स्वच्छ वस्त्र व प्रदोष काल में चन्द्रमा की किरणों का सेवन हितकारी है।
ऋतुओं के प्रभाव से उनके गुणानुसार दोषों का संचय, प्रकोप तथा प्रशमन होता है। इसलिए मनुष्य को स्वास्थ्य के रक्षण लिए यथायोग्य आहार – विहार और यथायोग्य औषधि का विधान ऋतुचर्या के अन्तर्गत किया गया है। जिसके पालन करने से मनुष्य का स्वास्थ्य उन्नत रहता है।
इस प्रकार स्वस्थवृत्त का प्रयोजन दिनचर्या, रात्रिचर्या व ऋतुचर्या के पालनीय नियमों का पालन कर स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य का रक्षण कर पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त करना है। जो कि आयुर्वेद का प्रथम प्रयोजन है।

1. **अभ्यास हेतु प्रश्न –**

क. स्वयं में स्थित् होना स्वास्थ्य कहलाता है।
ख. 'समदोष समाग्निश्चि' परिभाषा चरक संहिता में वर्णित है।
ग. आयुर्वेद के अनुसार 13 प्रकार की अग्नि होती है।
घ. दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या स्वस्थवृत्त के अंग नहीं है।
ड़. आयुर्वेद के अनुसार स्वस्थवृत्त का प्रयोजन आतुर के विकार का प्रशमन है।

2. **रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए –**

क. दिनचर्या बह्ममूहुर्त में उठने से लेकर .....तक किये जाने वाले सुव्यवस्थित कर्म है।
ख. स्वस्थ पुरूष के दोष .....तथा धातु .....होती है।
ग. काश्यप संहिता के अनुसार स्वस्थ पुरूष का प्रथम लक्षण .....है।
घ. आयुर्वेद के अनुसार चारों पुरूषार्थ के मूल में .....है।
ड़. स्वस्थवृत्त के पालन से .....की प्राप्ति होती है।

1.6 सारांश –

प्रिय विद्यार्थियों स्वस्थवृत्त आयुर्वेद का महत्वपूर्ण अंग है। मानव शरीर की प्रथम आकांक्षा आरोग्य ही है। आरोग्य या स्वास्थ्य प्राप्त कर ही मनुष्य अपना लौकिक और पारलौकिक कर्तव्यों को पूर्ण करने में समर्थ होता है। जो निरोग और सशक्त है उसे ही दीर्घायु प्राप्त हो सकती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि आयुर्वेद का प्रयोजन है, सम्पूर्ण आरोग्य प्राप्त करना। और इसी आरोग्य को प्राप्त करने के लिए आयुर्वेद के ग्रन्थों में स्वस्थवृत्त का वर्णन किया गया है। स्वस्थवृत्त के अन्तर्गत दिनचर्या, रात्रिचर्या व ऋतुचर्या के पालनीय नियमों का वर्णन किया गया है।

इस प्रकार स्वस्थवृत्त का प्रयोजन सम्पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त करना है। जो कि आयुर्वेद का प्रथम प्रयोजन है, वही स्वस्थ वृत्त का प्रयोजन है। स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य का रक्षण कर पूर्ण स्वास्थ्य, दीर्घायु की प्राप्ति करना।

1.7 शब्दावली –

लौकिक – सांसारिक
विकृति – विकार
प्राकृत – प्राकृतिक
धातु वैषम्य – धातुओं में विषमता (किसी एक धातु की वृद्धि या क्षय)

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

1. क. सत्य ख. असत्य ग. सत्य घ. असत्य
   ड. असत्य
2. क. संध्याकाल ख. सम, सम ग. अन्नाभिलाषी घ. आरोग्य
   ड. पूर्ण स्वास्थ्य

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. सिंह रामहर्ष, (2011) स्वस्थवृत्त विज्ञान। चौखम्भा प्रतिष्ठान दिल्ली।
2. शास्त्री अम्बिका दत्त, सुश्रुत संहिता। चौखम्भा प्रतिष्ठान दिल्ली।
3. गोरक्षनाथ , चरक संहिता। चौखम्भा प्रतिष्ठान दिल्ली।
4. गुप्ता अत्रिदेव, अष्टांग संग्रह। चौखम्भा प्रतिष्ठान दिल्ली।
5. गुप्ता अत्रिदेव, अष्टांग हृदय। चौखम्भा प्रतिष्ठान दिल्ली।
6. ब्रह्मवर्चस, (2010) आयुर्वेद का दर्शन क्रिया शरीर। श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट शान्तिकुंज हरिद्वार।

1.10 सहायक पाठ्य सामग्री –

1. बालकृष्ण आचार्य, (2007) आयुर्वेद सिद्धान्त रहस्य। दिव्य प्रकाशन हरिद्वार।
2. जैन राजकुमार, (2011) योग और आयुर्वेद । चौखम्भा ओरन्टालिया दिल्ली।
3. नौटियाल विनोद, (2016) योग और वैकल्पिक चिकित्सा। किताब महल इलाहाबाद।

1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. स्वास्थ्य को परिभाषित करते हुए स्वस्थ पुरूष के लक्षण बताइये।
2. स्वस्थवृत्त का प्रयोजन स्पष्ट कीजिए।
3. पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति में स्वस्थवृत्त की क्या भूमिका है।
4. दिनचर्या, रात्रिचर्या व ऋतुचर्या संक्षिप्त परिचय दीजिए।

इकाई – 2 दिनचर्या की अवधारणा, वैज्ञानिक आधार, आवश्यकता एवं महत्व ।

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 दिनचर्या की अवधारणा
2.3.1 दिनचर्या का अर्थ
2.3.2 दिनचर्या की परिभाषा
2.4 वैज्ञानिक आधार
2.4.1 दिनचर्या के पालनीय नियम व वैज्ञानिक आधार
2.5 आवश्यकता एवं महत्व
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.10 सहायक पाठ्य सामग्री
2.11 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना –

प्रिय विद्यार्थियों इससे पूर्व की इकाईयों में आपने स्वास्थ्य की परिभाषा, स्वास्थ्य क्या है ? स्वस्थ पुरूष के लक्षण तथा स्वस्थवृत्त के प्रयोजन का अध्ययन किया। वस्तुतः आयुर्वेद का प्रयोजन ही स्वस्थवृत्त का प्रयोजन है कि स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य का रक्षण करना तथा विकारी के विकार का प्रशमन करना। परन्तु जो प्रथम प्रयोजन है। **स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य का रक्षण।** उस प्रयोजन को पूर्ण करने हेतु दिनचर्या, रात्रिचर्या तथा ऋतुचर्या का वर्णन किया गया है।

स्वस्थवृत्त का उद्देश्य पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति है। जो व्यक्ति स्वस्थवृत्त के पालनीय नियमों, दिनचर्या का विधिवत् पालन करता है। वह अनागत दुःखों एवं रोगों से बचा रहता है। दिनचर्या के पालन करने से सम्भावित रोगों को होने से पहले ही रोका जा सकता है। रोग का प्रभाव पारिवारिक व सामाजिक स्थितियों पर भी अवश्य पड़ता है। अतः स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए दिनचर्या का पालन अत्यन्त आवश्यक है।

2.2 उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप –

- ❖ दिनचर्या के अर्थ को समझ सकेंगे।
- ❖ दिनचर्या की परिभाषा व उसके वैज्ञानिक आधार का विश्लेषण कर सकेंगे।
- ❖ दिनचर्या का मानव जीवन में क्या आवश्यकता है ? यह समझ सकेंगे।
- ❖ दिनचर्या के महत्व को समझ सकेंगे।
- ❖ दिनचर्या को समझ कर पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति का लाभ ले सकेंगे।

2.3 दिनचर्या की अवधारणा –

प्रिय विद्याथ्रियों लौकिक दृष्टि से हो या आध्यात्मिक दृष्टि से अपने लक्ष्य की साधना के लिए स्वस्थ शरीर का होना अति आवश्यक है। मनुष्य को शरीर को वश में रखते हुए मन को वश में रखना अवश्यम्भावी होता है।

जैसा कि माना गया है कि मनुष्य का यह जन्म स्वधर्म का पालन करते हुए परमपद को प्राप्त करने के लिए हुआ है। धर्म के अनुसार चलने से इहलोक तथा परलोक में सुख

की स्थिति प्राप्ति होती है। और धर्म की अवहेलना करने से कष्ट भोगना पड़ता है। क्योंकि धर्म का साधन यह शरीर ही है, जैसा कि कहा गया है कि –

''शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।'

तात्पर्य यह है कि **धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष** इन पुरूषार्थ की सिद्धि तभी सम्भव है जब मनुष्य अपने शरीर को स्वस्थ और पवित्र रख कर सही पथ पर अग्रसर होता है, तथा इन चारों पुरूषार्थ के मूल में आरोग्य है। आयुर्वेद के ग्रन्थ **चरकसूत्र में** कहा गया है –

''धर्मार्थकाममोक्षाणांमारोग्यंमूलमूत्तमम्'

अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरूषार्थ के मूल में आरोग्य है। आरोग्य के अभाव में मनुष्य लौकिक दृष्टि से भी वाछिंत सफलता प्राप्त नहीं कर सकता है। अतः आरोग्य की रक्षा करना मनुष्य की प्रथम आवश्यकता है। मनुष्य अपने स्वास्थ्य की रक्षा करे तथा जीवन को सुखमय बनाये। इहलोक और परलोक के सुख आदि को प्राप्त करने के लिए शुद्ध आचरण आवश्यक होता है। सम्यक आचरण ही स्वास्थ्य का आधार है। आचार शब्द में आहार ओर विहार दोनों को लिया जाता है। विहार को दैनन्दिन (प्रतिदिन करने योग्य) एवं ऋतु संबधित चर्या में बाँटा गया है। प्रतिदिन करने योग्य चर्या को दिनचर्या कहा जाता है, और दिनचर्या का पालन कर स्वस्थ जीवन, सुखमय जीवन जीया जा सकता है।

2.3.1 दिनचर्या का अर्थ –

दिनचर्या शब्द दिन + चर्या दो शब्दों से मिलकर बना है। दिन का अर्थ है दिवस तथा चर्या का अर्थ है। चरण अथवा आचरण से हैं।

अर्थात् प्रतिदिन की चर्या को दिनचर्या कहते हैं। दिनचर्या एक आदर्श समय सारणी है जो प्रकृति की क्रमबद्धता को अपनाती है, तथा उसी का अनुसरण करने का निर्देश देती है।

आयुर्वेद शास्त्र में वर्णन मिलता है कि – हमें पूर्ण रूप से स्वस्थ रहने के लिए प्राकृतिक क्रम के अनुसार अपने शारीरिक कार्यो के क्रम को व्यवस्थित करना चाहिए। जिससे अन्य सभी क्रम स्वतः ही व्यवस्थित हो जाएंगे। दिनचर्या के अन्तर्गत हितकर आहार व चेष्टा को रखा गया है। आयुर्वेद के ग्रन्थों में दिनचर्या का प्रतिपादन मुख्य रूप से स्वास्थ्य रक्षण हेतु किया गया है।

2.3.2 दिनचर्या की परिभाषा –

प्रिय विद्यार्थियों दिनचर्या नित्य कर्मो की एक क्रमबद्ध श्रंखला है। जिसका हर एक अंग अत्यन्त महत्वपूर्ण है और क्रमवार किया जाता है। दिनचर्या के अनेक बिन्दु नितिशास्त्र एवं धर्मशास्त्र के ग्रन्थों से लिए जाते हैं। परन्तु मुख्यतः आयुर्वेदोक्त हैं। आयुर्वेद के ग्रन्थों व नीतिशास्त्रों में दिनचर्या को इस प्रकार परिभाषित किया गया है।

''प्रतिदिनं कर्त्तव्या चर्या दिनचर्या'' (इन्दू)

अर्थात् प्रतिदिन करने योग्य चर्या को दिनचर्या कहा जाता है।

''दिनेदिने चर्या दिनस्य वा चर्या दिनचर्या। (चरणचर्या)

अर्थात् प्रतिदिन की चर्या को दिनचर्या कहते है।

उभयलोकहितंमाहारचेष्टितं प्रतिदिने यत्कर्त्तव्ये।। (अरूण दत्त)

अर्थात् इहलोक तथा परलोक में हितकर आहार एवं चेष्टा को दिनचर्या में रखा जाता है। दिनचर्या का मुख्य रूप से प्रतिपादन आयुर्वेद के ग्रन्थों में स्वास्थ्य रक्षण हेतु किया गया है। दिनचर्या को प्रधान विषय मानकर उसी के आधार पर अध्यायों का नामकरण किया है। आचार्य सुश्रुत ने दिनचर्या का वर्णन अनागत बाधा प्रतिषेध अध्याय में किया गया है।

''अनागत ईषदागतः, नञ् अत्र ईषदेर्थेः अबाधा दुखं
व्याधिरित्यर्थः ; तस्य प्रतितेधष्चिकित्सतम्। (सु0 डल्हण टीका)

अर्थात् नहीं आए हुए और सम्भावित दुखों और रोगों को रोकने के लिए जो चिकित्सा विधि है। वह दिनचर्या है।

2.4 वैज्ञानिक आधार –

प्रिय विद्यार्थियों पृथ्वी पर कोई भी प्राणी अमर नहीं रहता है। जब जन्म हुआ तो मृत्यु निश्चित है। मृत्यु से त्राण नहीं मिल सकता है। परन्तु रोगों को अवश्य दूर किया जा सकता है। यही उद्देश्य की पूर्ति हेतु आयुर्वेद व स्वस्थवृत्त का विकास किया गया। जैसा कि चरक संहिता में कहा गया है। शरीर ही सभी सुख – दुख के भोग का माध्यम है। इसलिए मनुष्य को संसार में सब कुछ छोड़ कर अपने शरीर को स्वस्थ रखना चाहिए। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए ही आयुर्वेद में दिनचर्या, ऋतुचर्या, रात्रीचर्या का वर्णन किया है। स्वास्थ्य रक्षण के लिए पालनीय नियमों का एक ऐसा वृत्त, जिसे **स्वस्थवृत्त** कहते हे। इसका वर्णन आयुर्वेद में किया गया है। स्वस्थवृत्त के अन्तर्गत प्रथम दिनचर्या का वर्णन किया गया है। और इसका वैज्ञानिक आधार है कि दिनचर्या का पालन कर स्वस्थ व्यक्ति अपने स्वास्थ्य का रक्षण कर दीर्घायु प्राप्त कर सकता है।

प्रिय विद्यार्थियों दिनचर्या का विस्तृत अध्ययन इसके पश्चात् की इकाई में आप करेंगे। इस ईकाई में संक्षिप्त परिचय के साथ – साथ वैज्ञानिक आधार का अध्ययन आप करेंगे। अतः दिनचर्या का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार से है –

2.4.1 दिनचर्या के पालनीय नियम व वैज्ञानिक आधार –

प्रिय विद्यार्थियों दिनचर्या के पालनीय नियमों के अन्तर्गन निम्न कर्म आते है। ब्रह्ममुहुर्त में जागरण, आत्मबोध की साधना, पुथ्वी माँ को नमस्कार, उषापान, शौच, दन्तधावन, जिह्वा निर्लेखन, गण्डूष धारण, मुख प्रक्षालन, अंजन, नस्य, धूमपान, व्यायाम एवं चंक्रमण, क्षौर कर्म, अभ्यंग, शरीर परिमार्जन, स्नान, वस्त्र धारण, सन्ध्योपासना एवं ध्यानादि, स्वाध्याय एवं भोजन।

❖ **दिनचर्या के पालनीय नियम –** दिनचर्या के पालनीय नियम निम्न हैं –

1. **ब्रह्ममूहुर्त में जागरण –**

''ब्रह्मेमुहुते। हयुतिष्ठेज्जीर्णा निरूपय रक्षार्थमामुषः स्वस्थो। (अ0सू0 – 2)
ब्रह्मे मुहुर्ते बुध्यते स्वस्थो रक्षार्थ मायुषः ।।'' (भा0प्र0 1/14)

अर्थात् स्वस्थ मनुष्य आयु की रक्षा के लिए रात के भोजन के पचने न पचने का चिार करता हुआ (ब्रह्ममुर्हुर्त) ऊषाकाल में उठे।

महर्षि मनु ने कहा है –

''ब्रह्त मुहुर्ते बुध्यते धर्मार्थानुचिन्तयेत।
कायक्लेषांष्च तन्मूलान्वेद तत्वार्थमेव च।।'' (मनु 4/92)

प्रत्येक मनुष्य को ब्रह्ममुहुर्त (ऊषाकाल) में उठकर धर्म और अर्थ का चिन्तन करना चाहिए, तथा शरीर के रोग और उनके कारणों पर विचार करना चाहिए। तथा वेद के रहस्य क्या है ? इस पर चिन्तन करना चाहिए। चौबीस घण्टों में सर्वश्रेष्ठ समय ब्रह्ममुहुर्त ही है। इसलिये इस उत्तम समय में निद्रा का त्याग अवश्य कर देना चाहिए।

प्रत्येक प्रभात मनुष्य जीवन का आरम्भ काल है। प्रातःकाल का समय विशेष स्फुर्ति व ऊर्जा का काल होता है। सृष्टि के प्रत्येक प्राणी को नवजीवन, नवचेतना, नवस्फूरणा देना वाला काल है। प्रातःकाल कमल खिलने लगते है। पक्षियों का मधुर संगीत तथा शीतल मंद समीर बहती है।

शारीरिक स्वास्थ्य व मन, बुद्धि आत्मा को प्रसन्नता देने वाला समय प्रातःकाल होता है। अतः मनुष्य को ब्रह्ममुहुर्त (प्रातःकाल) में उठ जाना चाहिए, क्योंकि इस समय

प्रकृति अपने मुक्त हस्त से स्वास्थ्य के साथ – साथ प्रसन्नता, मेधा व बुद्धि का आर्शीवाद प्रदान करती है।

जैसा कि आयुर्वेद के ग्रन्थों में कहा है –

"वर्ण कीर्ति मति लक्ष्मीं स्वास्थ्यमायुच्श्र विन्दती।
ब्रह्मे मुहुर्ते संजाग्राच्छिवं व पंकजं यथा।।"

अर्थात् ब्रह्ममुहुर्त में उठने से सौन्दर्य, यश, बुद्धि, धन, धान्य, स्वास्थ्य और दीर्घायु की प्राप्ति होती है। प्रातः काल उठने से शरीर कमल के समान खिल जाता है।

2. **आत्मबोध की साधना –**

प्रातः ब्रह्ममुहुर्त में उठकर आंख खुलते ही यह साधना की जाती है। प्रातः जागते ही पालथी मार कर बैठ जाइये। दोनों हाथ गोद में रखें। सर्वप्रथम आज के नये जन्म के लिए ईश्वर का आभार मानें। क्योंकि रात्रि में नींद आते ही यह दृश्य जगत समाप्त हो जाता है। मनुष्य स्वप्न सुषुप्ति के किसी अन्य जगत में रहता है। जागने पर चेतना का शरीर से सघन सम्पर्क बनता है। यह स्थिति एक नये जन्म जैसी होती है। सर्वप्रथम दोनों हाथ जोड़कर ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण का भाव रखें तीन बार लम्बी गहर श्वास लें तथा छोड़ें । ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण के भाव के साथ – साथ जो भी शुभ संकल्प है उन्हें दोहराएं तथा प्रार्थना करें कि अपना पुत्र समझ कर सदैव हमारा मार्ग दर्शन कीजिए। इस प्रकार अपने भाव पुष्प अर्पित कीजिए।

❖ **वैज्ञानिक आधार –** आत्मबोध की साधना ब्रह्ममुर्हुर्त में बिस्तर में ही की जाती है। ईश्वर के प्रति पूर्ण समपर्ण का भाव रखने से मनुष्य को एक शक्ति ऊर्जा प्राप्त होती है। ईश्वर प्रणिधान द्वारा पूर्ण समर्पण द्वारा यदि जब साधक सभी कर्मो को स्वयं को समर्पित कर देते हैं , तो ईश्वर भी साधक का हाथ थाम लेता है, और सदैव उसको मार्गदर्शन मिलता रहता है। ईश्वर प्रणिधान से उसके सभी कार्य सिद्ध होते है।

जैसा कि **महर्षि पतंजलि ने** वर्णन किया है –

"समाधि सिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्।" (पा0यो0सू0 2/45)

अर्थात् ईश्वर प्रणिधान से समाधि की सिद्धि हो जाती है। अर्थात् जो ईश्वर शरणागति स्वीकार कर लेता है। ईश्वर की शरण में स्वयं को रखकर और फलेच्छा का त्याग कर निष्काम भाव से अपने कर्त्तव्य कर्मो को करता है। ईश्वर उसके सभी विघ्नों को स्वयं अपने ऊपर ले लेता है। और उसे समाधि जैसी उच्च स्थिति प्राप्त हो जाती है।

समाधि की सिद्धि एक साधक की दृष्टि से, परन्तु साधारण मनुष्य यदि अपने कर्मो को ईश्वर को समर्पित करते हुए कर्त्तव्य कर्म करे और फल की ईच्छा का त्याग कर कर्म करें तो वह अपने लक्ष्य तक अवश्य पहुँच जाएगा।

3. **पृथ्वी माँ को नमस्कार –**

ब्रह्ममुहुर्त में उठने के पश्चात् पृथ्वी माँ को नमन किया जाता है। तथा मातृभूमि के प्रति सम्मान और गौरव भाव रखते हुए निम्न श्लोक को कहना चाहिए।

"समुद्रमेखले देवी पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णु पत्नीं नमस्तुभ्यं पादस्पर्श क्षमस्व मे।"

अर्थात् मेखला की तरह सभी ओर समुद्र से घिरी हुयी तथा पर्वतो से घिरी हुयी विष्णुपत्नी, पृथ्वी माता आपको नमस्कार है। मैं आप पर पैर रखकर अपनी जीवन यात्रा आरम्भ कर रहा हूँ। मुझे पैरों से स्पर्श के लिए क्षमा करें।

- **वैज्ञानिक आधार –**

4. **ऊषापान –**

ब्रह्ममुहुर्त में उठकर उषापान करना चाहिए। आयुर्वेद शास्त्र में नासा छिद्र से ब्रह्ममुहुर्त में पानी पीना ऊषापान कहलाता है। उषःपान के लिए समशीतोष्ण जल

का प्रयोग होता है। इसके लिए कूप का जल सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। भाव प्रकाश में वर्णन मिलता है –

" सवितुः समुदय काले प्रसृतिसलिलस्य पिवेदष्टौ।
रोग जरा परिमुक्तो जीवेद वत्सरषतं साग्रम।।"

अर्थात् सूर्योदय के समय जो व्यक्ति चार अंजलि जलपान करता है, वह रोग से मुक्त हो जाता है। बुढ़ापा उसके पास नहीं आता और वह सौ वर्ष से भी अधिक आयु प्राप्त करता है।

जैसा कि आयुर्वेद ग्रन्थों में वर्णन है कि उषापान नासाछिद्रों से जल पीना चाहिए। परन्तु नासाछिद्रों से सम्भव ना हो तो मुख के द्वारा पीया जा सकता है।

वैज्ञानिक आधार – प्रातःकाल पिया हुआ जल कोष्ठ साफ रखता है। जिससे अनेक रोगों से रक्षा होती है।

उषापान का जल बृहदान्त्र तक अन्ननलिका को साफ करता है। और बृहदान्त्र में अवशोषित होकर वृक्कों द्वारा मूत्र मार्ग को भी शोधन करता है।

उषापान से मलों की अच्छी तरह शुद्धि होकर शरीर में उत्साह की वृद्धि तथा काम विकार, शारीरिक उष्णता, उदर रोग, सिरदर्द, कब्ज, नेत्र विकार दूर होते है।

आयुर्वेद के ग्रन्थों में वर्णन मिलता है –

''विगत घन निषीते प्रातरूथाय नित्यम,
विवति खलु नरो यो ध्राणरन्ध्रेण वारि।
स भवति मति पूणष्चक्षुषा तार्क्ष्यतुल्यो,
बलि पलित बिहीना सर्वरोगै विर्मुक्तः।।

अर्थात् रात्रि का अंधकार दूर हो जाने पर जो मनुष्य प्रातः उठ कर नासिका द्वारा जलपान करता है, वह बुद्धिमान बन जाता है। उसकी नेत्र ज्योति तेज हो जाती है। तथा उस व्यक्ति के बाल असमय सफेद नहीं होते है तथा वह मनुष्य सम्पूर्ण रोगों से मुक्त रहता है।

5. **मलोत्सर्ग –**

ऊषापान के पश्चात् शौच जाना चाहिए। मलोत्सर्ग एवं मूत्रोत्सर्ग वेग प्रतीत होने पर ही करना चाहिए। प्रयत्न पूर्वक मलादि का विसर्जन का निषेध किया गया है। मौन होकर एवं मलोत्सर्ग के समय किसी विषय का ध्यान नहीं करना चाहिए। मलोत्सर्ग के पश्चात् हाथ , पैर व मुख को धोना चाहिए। ऐसा करने से थकावट दूर होती है। तदुपरान्त आचमन करना चाहिए।

- **वैज्ञानिक आधार –** मलादि के वेग को रोकना और प्रयत्नपूर्वक उनका विसर्ग दोनों ही व्याधि का कारण है। मल के वेग को रोकने से विबन्ध (कब्ज) शिरशूल, आदि व्याधियाँ होती है। तथा प्रयत्नपूर्वक मलोत्सर्ग से अर्श (वबासीर) आदि रोग होने की संभावना रहती हे। इसलिए जो लोग मलत्याग का ध्यान नहीं रखते उनके शरीर में रोगों का संग्रह होता है तथा कई प्रकार के विकार उत्पन्न होते है। इसलिए मल विसर्जन सही समय पर होना चाहिए।

6. **दन्त धावन –** मलोत्सर्ग के पश्चात् दन्तधावन का विधान किया गया है। प्रातः एवं सांय शयन पूर्व दन्तधावन करना चाहिए। आयुर्वेद के अनुसार दातुन निम्ब, खादिर, करन्ज, अर्जुन आदि वृक्षों क ताजी हरी लकड़ी की बनाई जाती है। जो बारह अंगुल लम्बी कनिष्ठा अंगुली जितनी मोटी होनी चाहिए। आजकल इसके स्थान पर टूथब्रश का प्रयोग होता है। आयुर्वेद ग्रन्थों में दातौन के साथ – साथ दन्त मंजन भी आयुर्वेदिक होना चाहिए। आचार्यो ने त्रिकुट, त्रिफला, तैल एवं सैन्धव नमक तथा तेजोवती आदि चूर्णो का प्रयोग करने का निर्देश दिया है।

- **वैज्ञानिक आधार –** आयुर्वेद ग्रन्थों में दतौन हरे वृक्षों की लकड़ी की बनाने का वर्णन किया गया है। क्योंकि यह नित्य नयी प्रयुक्त होती है। जिससे मुख के संक्रमण का भय

नहीं रहता है। दतौन का कूर्च बनाने में उसे चबाने के कारण मुखगत मांसपेशियों का व्यायाम हो जाता है, और यह गुण युक्त वृक्षों से बनी होने के कारण औषधि का कार्य करती है।

दंत मंजन के प्रयोग से मुख की दुर्गन्धता का नाश होता है। तथा मसूड़े स्वस्थ रहते है।

निम्न अवस्थाओं में दन्तधावन निषेध है – जेसे गले, तालु, ओष्ठ व जिह्वा के रोग। तथा श्वास हिक्का दौर्बल्य मूर्च्छा आदि।

7. **जिह्वा निर्लेखन –**

दन्तधावन के पश्चात् जिह्वा निर्लेखन अर्थात् जिभी द्वारा जिह्वा को साफ करना चाहिए। जिसका वर्णन इस प्रकार से है –

"जिह्वानिर्लेखनं रौप्यं सौवर्णं वार्क्षमेव च।
तन्मलापहरं शस्तं मृदुष्लक्ष्णं दषाड.गुलम्।। "(सू0 चि0 अ0 24)

अर्थात् जीभ के मैल को दूर करने वाली जीभी चादी, सोना या लकड़ी की टेढ़ी , मुलायम, चिकनी और दश अंगुल लम्बी होनी चाहिए, अथवा दातुन को बीच में से चीरकर भी बनाई जा सकती है।

- **वैज्ञानिक आधार –** दाँतों के साथ – साथ जीभ को भी साफ करना चाहिए। क्योंकि जिह्वा में भी बहुत मैल जम जाती है। जिससे कि मुँह का स्वाद ठीक नहीं रहता तथा दुर्गन्ध आने लगती है। जिभी से साफ करने से मैल साफ हो जाता है तथा रसज्ञान की क्षमता बनी रहती है।

8. **गण्डूष या गरारे करना –**

दन्त धावन के पश्चात् शीतल जल से अथवा स्नेह (तिल तैल) का गरारा करना चाहिए। मुख में इतनी मात्रा में जल अथवा तैल को भरना चाहिए। जिससे वह मुँह में घुमाया ना जा सके, **इसे गण्डूष** कहते हैं, तथा मुख में जल अथवा तैल की इतनी मात्रा भरें कि जिससे कि वह मुँह में घुमाया जा सके इसे **कवल** कहते है। आयुर्वेद ग्रन्थों में गण्डूष (गरारा) व कवल धूप में बैठकर करना चाहिए ऐसा वर्णन किया गया है।

- **वैज्ञानिक आधार –** तैल गण्डूष को दन्त ढाढर्यकर (दाँतों को दृढ़ करने वाला) कहा गया है। इससे दाँत मजबूत होते है। चेहरे की कान्ति बनी रहती है। दाँत दर्द नहीं होता व मसूड़े मजबूत होते है। मुँह का स्वाद अच्छा रहता है। चेहरे की कोमलता व भोजन में रूचि बढ़ती है। नियमित रूप से इसे करने से होठ नहीं फटते है।

9. **मुख प्रक्षालन –**

गण्डूष धारण के उपरान्त मुख तथा नेत्रों का प्रक्षालन करना चाहिए। मुख प्रक्षालन वट, गूलर, आदि क्षीरि वृक्षों के कषाय लोध्र कषाय या आमलक कषाय से करना चाहिए इसके अभाव में शीतोदक (ठण्डा जल) से मुख एवं नेत्र प्रक्षालन करना चाहिए।

- **वैज्ञानिक आधार –** मुख तथा नेत्रों का प्रक्षालन करने से मुख में झाई, मस्से, दाने आदि नहीं होते है। शीताम्बु से मुख पुरित कर नेत्र प्रक्षालन से नेत्र ज्योति ठीक बनी रहती है।

10. **अजंन –** मुखादि प्रक्षालन के पश्चात अजंन लगाना चाहिए। अजंन के प्रयोग से दृष्टि सम्यक् बनी रहती है।

- **वैज्ञानिक आधार –** नेत्रों में अंजन का नित्य प्रयोग करने से नेत्र कण्डु (खुजली) का नाश होता है, और नेत्र वायु तथा धूप सहने में समर्थ होते है। नेत्रों का सौन्दर्य बढ़ता है, तथा नेत्रों के रोग होने की सम्भावना नहीं रहती है।

11. **नस्य –** आयुर्वेद के ग्रन्थों में दिनचर्य के अन्तर्गत नस्य का वर्णन किया गया है। प्रतिदिन अंगुलि में स्नेहलिप्त करके दोनों नासाछिद्रों में स्नेह लगाने को

आचार्यो का निर्देश है। यह प्रातः सायं करना चाहिए। प्रावृट, शरद एवं बसन्त ऋतु में अणु तैल से नस्य करना चाहिए। इसे प्रतिमर्श नस्य कहते है।

- **वैज्ञानिक आधार –** नस्य करने से नासागत रोग, नेत्ररोग, शिरोरोग, वली पलित आदि रोगों का नाश होता है, नस्य द्वारा उर्ध्वभाग का तर्पण होता है। नस्य उर्ध्वजत्रुगत रोगों से बचाव एवं उनकी चिकित्सा में प्रयुक्त होता है। तैल का नस्य श्रेष्ठ माना गया है।

12. **धूमपान –** आचार्य चरक ने इलायची, नागकेसर, चन्दन, तेजपत्र, जटामांसी आदि औषधि के चूर्ण से धूमवर्ति (यवाकार, आठ अंगुल लम्बी, अंगुष्ठ समान मोटी, नलिकाकार) बनाने का विधान किया है।यह धूम्र केवल तीन बार नासा मार्ग अथवा मुख से लिया जाता है, एवं केवल मुख से ही बाहर छोड़ा जाता है।

- **वैज्ञानिक आधार –** औषधीय धूमवर्ति से धूमपान करने से गले के रोग, शिरोरोग, श्वास, कास, मुख दौर्गन्ध आदि रोगों का नाश होता है।

अधिक धूम्रपान से भ्रम, रक्तपित्त, बाधिर्य आदि रोग उत्पन्न होते है। अनेक रोगों में एवं गर्भिणी एवं वात प्रकृति पित्त विकारों में धूमपान निषेध है।

13. **व्यायाम एवं चंक्रमण –** वह शारीरिक चेष्टाएं जो शरीर में स्थिरता एवं बल को बढ़ाने वाली है व्यायाम कहलाती है। आचार्य चरक ने व्यायाम को मात्रावत करने का निर्देश दिया है। शीत एवं बसन्त ऋतु में व्यायाम नितान्त आवश्यक है, अन्य ऋतु में भी स्वल्प मात्रा में ही करना चाहिए। व्यायाम करने वालों को सदा आयु, बल, शरीर क्षमता, देश, काल एवं आहार को ध्यान में रखकर व्यायाम करना चाहिए। क्योंकि अत्यधिक व्यायाम रोगों का कारण बनता है। अतः अर्धबल तक ही व्यायाम करने का निर्देश आचार्यो ने दिया है। तथा उन व्यक्तियों को जो व्यायामक करने में समर्थ ना हो उन्हें चंक्रमण का निर्देश दिया है, जो रोगादि से पीड़ित हो, गर्भिणी या वृद्ध हो, उन्हें सिर्फ चंक्रमण अथवा चहलकदमी करने का निर्देश आचार्य सुश्रुत द्वारा दिया गया है।

- **वैज्ञानिक आधार –** व्यायाम द्वारा शरीर में स्थिरता एवं बलवृद्धि होती है, शरीर में सम्यक् रक्त संचरण होने से शरीर की कान्ति में वृद्धि होती है। शरीर का विकास होता है। जठराग्नि प्रदीप्त होती है। शरीर में स्फूर्ति, हल्कापन आता है। व्यायाम करने से रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास होता है। बुढ़ापा सहसा नहीं आता है। चंक्रमण व चहलकदमी एक मृदु व्यायाम है, जो वृद्धों, हृदय रोगियों आदि के लिए उत्तम है। अत्यधिक व्यायाम से अनेक रोग उत्पन्न होते है तथा अत्यधिक घूमना जरा और दौर्बल्य कारक है।

  व्यायाम के बाद हल्के हाथ से मर्दन करना चाहिए। इससे थकान मिट जाती है।

14. **क्षौर कर्म –** नित्य व्यायाम के समान ही नियमित रूप से क्षौर कर्म करना चाहिए। आचार्य सुश्रुत ने क्षौर कर्म का शमन करने वाला हर्षोत्पादक सौभाग्यकर उत्साहवर्धक माना है। अतः नियमपूर्वक प्रतिदिन क्षौर कर्म करना चाहिए। प्रतिदिन दाढ़ी बनाने से स्फूर्ति आती है, तथा महीने में एक बार बाल कटाने चाहिए। तथा सम्भव हो सके तो तीन सप्ताह में कटाना चाहिए, तथा सप्ताह में एक बार नख काटना चाहिए। क्षौर कर्म के पश्चात स्नान आवश्यक है।

- **वैज्ञानिक आधार –** क्षौर कर्म मानसिक, शारीरिक स्वास्थ्य एवं मानवोचित सौन्दर्य का कारक है। केश नखादि व्याधि उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं का वासस्थान होते हैं अतः समय – समय पर इनका कर्तन, पुष्टिकर, आयुष्य, शुचिकर कहा जाता है।

15. **अभ्यंग –** आयुर्वेद में अभ्यंग को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इसे विशेष रूप से वात – पित्त एवं वेदनाहर कहा है। अभ्यंग के लिए सरसों का तैल, सुगन्धित तैल, पुष्पवासित और अन्य सुगन्धित द्रव्यों से युक्त तैल कभी वर्जित नहीं होता। तैलों में सरसों व तिल का तेल उत्तम रहता है।

त्वचा में वायु का स्थान होता है। अतः अभ्यंग करने से वायु से होने वाले रोग नहीं होते हैं। त्वचा में रोमकूपों के होने से त्वचा में लगाया गया तेल शरीर में समा जाता है। और वायु शान्त हो जाती है। तथा धूप में अभ्यंग करने से तेल जल्द ही शरीर में चला जाता है। तेल से त्वचा स्नेह प्राप्त कर मृदु एवं लचकदार हो जाती है। साथ ही शिरोभ्यंग, कर्ण तर्पण तथा पादाभ्यंग करना चाहिए।

- **वैज्ञानिक आधार –** तैल से अभ्यंग को जरा (बुढ़ापा) नाशक, श्रमहर तथा आयुपुष्टिकर, निद्राजनन, त्वच्य, दाढर्यकर कहा गया है। अभ्यंग से शरीर दृढ और त्वचा कोमल होती है। रूक्षता का नाश होने से त्वचा का फटना आदि रोग नहीं हाते है।

शिरोअभ्यंग से सुखपूर्वक निद्रा भी आती है। शिरोअभ्यंग के साथ केश्या (कंघी) करने से केशों में होने वाले कृमिं का नाश होता है।

कर्ण तर्पण करने से कर्णरोग नहीं होते एवं कान में मैल जमा नहीं होने पाता ।

पादाभ्यंग से पैरों में रूक्षता, बिवाई आदि रोग नहीं होते हैं। पैर के तलवों में अभ्यंग से नेत्र ज्योति बढ़ती है।

ज्वर तथा श्वास, कास व रूग्णावस्था में मालिस नहीं करनी चाहिए।

16. **शरीर परिमार्जन –**शरीर को उद्वर्तन, उत्सादन, उदघर्षण, फेनक आदि विधियों द्वारा स्वच्छ रखने को शरीर परिमार्जन कहते है।

अस्निग्ध अर्थात बिना तैलादि मिले हुए रूक्ष चूर्ण को अंगों पर मलना उदघर्षण या उत्सादन है। यह परम मेद हर है।

स्नेह मिश्रित औषधि कल्क को शरीर पर लगाना उद्वर्तन या उबटन कर्म है। यह त्वचा के वर्ण को निखारता है।

- **वैज्ञानिक आधार –** आज भी उबटन का प्रयोग हो रहा है। यह त्वचा के वर्ण को निखारने के साथ – साथ झाई इत्यादि का नाश करता है। त्वचा रोगों का भी नाश होता है। आज भी हल्दी, चन्दन, मसूर आदि का प्रयोग उबटन के लिए प्रयोग होता है।

फेनक अथवा रीठा, ऑवले के पानी से या साबुन से शरीर परिमार्जन किया जाता है। यह सभी कर्म रोमकूपों को खोलते है एवं त्वचा में स्थित जीवाणुओं का नाश करते है।

17.स्नान – प्रतिदिन स्नान करना दिनचर्या का आवश्यक अंग माना गया है। नित्यप्रति स्नान अनेक रोगों का नाशक है, शीतल जल से स्नान करने से जठराग्नि प्रदीप्त होती है। स्नान करने से पूर्व सिर धोना चाहिए। सिर को सदैव शीतल जल से धोना चाहिए। अत्यन्त शीतल जल से स्नान नहीं करना चाहिए। शीत ऋतु में उष्ण जल का प्रयोग एवं उष्ण ऋतु में शीतल जल का प्रयोग करना चाहिए।

- **वैज्ञानिक आधार –** स्नान करने से शरीर पवित्र होता है। आयु बढ़ती है, थकान दूर होती है। शारीरिक बल बढ़ता है और ओज उत्पन्न करता है। स्नान हृदय को प्रसन्न करता है। श्रेष्ठ इन्द्रिय शोधक, प्यास का नाश करने वाला, दाह, थकावट को दूर करने वाला होता है। स्नान पापनाशक रक्त को शुद्ध करने वाला तथा अग्नि को प्रदीप्त करता है। स्नान के तुरन्त बाद मर्दन नहीं करना चाहिए। ज्वर, कर्णशूल अतिसार, अजीर्ण आदि रोगों की सम्भावना रहती है, तथा भोजन के बाद स्नान नहीं करना चाहिए।

18. **वस्त्रधारण –** स्नान के पश्चात् चन्दन आदि का लेपन करना चाहिए तथा सदा निर्मल वस्त्रों को ही धारण करना चाहिए। मलिन वस्त्रों से कृमि, कण्डू, आदि होने का भय रहता है। दूसरे के पहने हुए वस्त्रादि नहीं पहनने चाहिए। सोने, बाहर निकलने तथा देवपूजन के वस्त्र अलग – अलग होने चाहिए, तथा ऋतुओं के अनुसार ही वस्त्र धारण करना स्वास्थ्य के लिए उत्तम है। शीतकाल में ऊनी (गर्म) तथा ग्रीष्म में कषाय (श्वेत) तथा वर्षा ऋतु में रंगीन वस्त्र पहनने चाहिए। किसी दूसरे का पहना हुआ वस्त्र, जूता आदि नहीं पहनने चाहिए।

- **वैज्ञानिक आधार –** निर्मल वस्त्र आयु को बढ़ाने वाले तथा दरिद्रता का नाश करने वाले होते हैं। निर्मल वस्त्र प्रसन्नता प्रदान करते हैं, तथा निर्मल वस्त्रों से मनुष्य श्रेष्ठ व्यक्तियों के मध्य बैठने योग्य बनता है। ऋतुओं के अनुसार वस्त्र उत्तम स्वास्थ्य प्रदान करते है।

19. **सन्ध्योपासना एवं ध्यानादि –** प्रतिदिन प्राणायाम, सूर्योपासना गायत्री मन्त्र का जाप एवं ईष्ट देव का पूजन करना चाहिए। प्रातः काल में उपासना का बहुत ही महत्व है। उपासना करने से दीर्घायु, बुद्धि, कीर्ति, सद्प्रवृत्ति, यश की प्राप्ति होती है। गायत्री मंत्र जपने से पापों का क्षय होता है। शरीर के भोजन के साथ – साथ आत्मिक भोजन अधिक आवश्यक है। आत्मिक रूप से ऊर्जावान व्यक्ति कठिन परिस्थितियों में धैर्य नहीं खोता है, उनका निवारण खोजने में सक्षम होता है।

- **वैज्ञानिक आधार –** सन्ध्योपासना से शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक स्वास्थ्य, चारित्रिक, नैतिक स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। साथ – साथ बुद्धि, दीर्घायु मेधा शक्ति की प्राप्ति होती है।

20. **स्वाध्याय –** अर्थात् स्वयं का अध्ययन करना तथा सद्ग्रन्थों का अध्ययन करना। ज्ञान द्वारा ही मनुष्य को परम लक्ष्य की प्राप्ति होती है। ऋषियों और महर्षियों ने सम्यक् ज्ञान को ही परम साधन बताया है –

''विद्ययाऽमृतमश्नुते'' (यजु0 40/14)

अर्थात् ज्ञान से मोक्ष मिलता है, और मोक्ष ही मनुष्य जीवन का परम् लक्ष्य है। इसलिये प्रत्येक मनुष्य को ज्ञान की प्राप्ति के लिए स्वाध्याय करना चाहिए।

- **वैज्ञानिक आधार –** स्वाध्याय से ज्ञान की प्राप्ति होती है। स्वाध्याय से अन्तः प्रज्ञा जाग्रत होती है, तथा विवेक ज्ञान की प्राप्ति होती है। मनुष्य की सद्प्रवृत्ति तथा ज्ञान की प्राप्ति होती है। यश, कीर्ति, गौरव की प्राप्ति होती है।

21. **भोजन –** आहार शरीर को पुष्ट करने वाला तथा देह को धारण करने वाला तथ बलकारक, आयु, तेज, उत्साह, स्मृति, ओज और अग्नि को बढ़ाने वाला होता है। आहार के सम्बन्ध में निम्न पाँच सूत्र है –

1. **क्या खायें –** मनुष्य को सदैव हितकारी पदार्थो का ही सेवन करना चाहिए, तथा शुद्ध, सात्विक भोजन लेना चाहिए।
2. **कितना खायें –** मनुष्य को सदैव थोड़ी मात्रा में खाना चाहिए।
3. **कब खायें –** आयुर्वेद के अनुसार भोजन दो ही समय करना चाहिए। प्रथम भोजन 12 बजे से पूर्व तथा रात्रि 7 बजे तक कर लेना चाहिए।
4. **क्यों खाएं –** शरीर को स्वस्थ व निरोग रखने के लिए भोजन करना चाहिए।
5. **कैसे खाएं –** भोजन पहले ईश्वर को अर्पित कर प्रसाद रूप में ग्रहण करना चाहिए। भोजन को खूब चबा – चबा कर खाना चाहिए, तथा भोजन के एक घंटे बाद पानी पीना आरम्भ करना चाहिए।

2.5 आवश्यकता एवं महत्व – प्रिय विद्यार्थियों आयुर्वेद शब्द का अर्थ होता है जीवन का विज्ञान। साधारण शब्दों में जीवन जीने की कला ही आयुर्वेद है। क्योंकि यह विज्ञान जीवन जीने के लिए आवश्यक सभी प्रकार के ज्ञान की प्राप्ति कराता है। तथा साथ ही साथ रोगों तथा उनकी चिकित्सा का निराकरण

भी कराता है। इस प्रकार आयुर्वेद एक इस प्रकार की चिकित्सा प्रणाली है, जो स्वास्थ्य और रोग दोनों के लिए क्रमशः ज्ञान प्रदान करता है।

आयुर्वेद का मुख्य उद्देश्य स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य का रक्षण करना तथा रोगी व्यक्ति के विकारों का प्रशमन करना है।

जैसा कि कहा गया है –

"दोष धातु मल मूलं हि शरीरम्।" (सु0 सू0 15/3)

अर्थात् शरीर में दोष, धातु, मल की स्थिति पर ही स्वास्थ्य का बनना और बिगड़ना निर्भर करता है। शरीर में दोषों का दूषित होना हमारे आहार – विहार पर निर्भर करता है। दोष मनुष्य के गलत आहार – विहार के कारण दूषित होते है, जब ये दूषित होते है तो धातुओं को दूषित करते है। इस प्रकार किसी एक दोष की वृद्धि या क्षय की स्थिति उत्पन्न होती है। जिससे रोग उत्पन्न होते है। इन दोषों की साम्यावस्था बनाये रखने के लिए आयुर्वेद में दिनचर्या और रात्रिचर्या तथा ऋतुचर्या के अनुसार आहार – विहार का वर्णन किया गया है। जिसे आयुर्वेद में स्वस्थवृत्त कहा गया है।

दिनचर्या दिन में सेवन करने योग्य आहार – विहार का क्रम है। दिनचर्या के पालनीय नियमों को अपनाने से उसके अनुसार आचरण करने से स्वास्थ्य की रक्षा होती है, और रोगों के आक्रमण से भी बचा जा सकता है। अतः रोगों से रक्षा तथा पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति हेतु ही दिनचर्या की आवश्यकता है।

प्रिय विद्यार्थियों दिनचर्या का महत्व इस प्रकार से है – दिनचर्या का आचरण अनागत दुखों एवं रोगों से रक्षा करना है। आयुर्वेद के आचार्यो ने जिन अध्यायों में दिनचर्या का वर्णन किया है, उन्हीं अध्यायों में रात्रीचर्या का वर्णन किया है। अर्थात् रात्रीचर्या को भी उन्होंने दिनचर्या के अन्तर्गत माना है और दिनचर्या को प्रधान विषय मानकार उसी के आधार पर अध्यायों का नामकरण किया है। आचार्य सुश्रुत ने दिनचर्या का वर्णन अनागत बाधा प्रतिषेध अध्याय में किया है –

"अनागत ईशदागतः नञ् अत्र ईशदर्थेः अबाधा दुखं
व्याधित्यर्थः तस्य प्रतिशेधष्चकित्सितम्।।" (सु डल्हण टीका)

अर्थात् नहीं आए हुए और सम्भावित दुखों और रोगों को रोकने की चिकित्सा विधि। इस प्रकार सभी आर्ष संहिताओं के आधार पर दिनचर्या के प्रमुख लाभ आचार्यो द्वारा कहे गये है। जो कि दिनचर्या के महत्व का वर्णन करते है –

- **इहलोक तथा परलोक में हितकारी –** दिनचर्या का पालन करने से इहलोक तथा परलोक में हितकारी है। क्योंकि दिनचर्या का पालन करने वाला व्यक्ति स्वस्थ रहता है, और समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व को पूर्ण कर अपने परम् लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।
- **सम्भावित रोगों से पूर्व सुरक्षा –** दिनचर्या के पालन से सम्भावित रोगों को होने से पूर्व ही रोका जा सकता है। क्योंकि दिनचर्या के पालनीय नियमों से जीवनी शक्ति प्रबल रहती है। अतः रोग होने की संभावना कम हो जाती है।
- **दिनचर्या द्वारा समग्र स्वास्थ्य की प्राप्ति –** दिनचर्या के नियमित पालन से शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, पारिवारिक स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। क्योंकि रोग का प्रभाव केवल व्यक्तिगत नहीं होता है। रोग का प्रभाव सामाजिक व पारिवारिक स्थितियों पर पड़ता है। अतः दिनचर्या के पालन से स्वस्थ समाज का निर्माण होता है तथा शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, पारिवारिक समग्र स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है।
- **दिनचर्या द्वारा व्यक्तित्व परिष्कार –** दिनचर्या के पालनीय नियमों में नित्य कर्मो की एक क्रमबद्ध श्रृखला है। जिसका हर एक अंग महत्वपूर्ण है। जिसके पालन से मन, शरीर, इन्द्रियों पर नियंत्रण स्थापित होता है। जिससे कि व्यक्तित्व परिष्कृत होता है।

- **प्राचीन परम्परा का संरक्षण –** आयुर्वेद में स्वस्थ वृत्त के अन्तर्गत दिनचर्या का वर्णन किया गया है। दिनचर्या के पालनीय नियमों से प्राचीन परम्परा हमारे ऋषि – मुनियों द्वारा बनायी गयी परम्परा का संरक्षण होता है। मानवीय मूल्यों का संरक्षण होता है। इन नियमों का पालन कर हमारी वर्षो पुरानी संस्कृति का संरक्षण होता है।

अभ्यास प्रश्न –

1. एक पंक्ति में उत्तर दीजिये।

क. दिनचर्या से क्या समझते है ?

ख. धर्मार्थकाममोक्षाणांमारोग्यं मूलमूत्तमम्। यह किस ग्रन्थ में कहा गया है ?

ग. दिनचर्या का पहला पालनीय नियम क्या है ?

घ. आत्मबोध की साधना कब की जाती है ?

ड़. उषापान के लिए कैसा जल उपयुक्त होता है ?

2. रिक्त स्थान भरिये –

क. आयुर्वेद शब्द का अर्थ .....का विज्ञान।

ख. आयुर्वेद का मुख्य उद्देश्य .....व्यक्ति के स्वास्थ्य का रक्षण एवं .....के विकार का प्रशमन है।

ग. व्यायाम द्वारा शरीर में .....एवं .....होती है।

घ. शिरोभ्यंग से .....निद्रा आती है।

ड़. निर्मल वस्त्र .....वाले होते है।

2.6 सारांश –

आरोग्य की रक्षा मनुष्य की प्रथम आवश्यकता है। मनुष्य अपने स्वास्थ्य की रक्षा करे तथा इहलोक तथा परलोक के सुख आदि को प्राप्त करे। उसके लिए आचरण की आवश्यकता होती है, आचरण में आहार – विहार दोनों को लिया जाता है। अतः प्रतिदिन का आहार – विहार कैसा हो यह वर्णन दिनचर्या में किया गया है। दिनचर्या के अन्तर्गत ब्रह्ममु हुर्त में उठने से लेकर सन्ध्योपासना तथा भोजन तक की चर्या का वर्णन किया गया है। दिनचर्या के पालनीय नियमों का पालन कर मनुष्य उत्कृष्ट व्यक्तित्व, स्वस्थ जीवन, सुखमय जीवन बनाया जा सकता है। पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त कर, आने वाले रोगों से बचा जा सकता है। अतः आज के आधुनिक युग में बढ़ते रोगों के उपशमन हेतु दिनचर्या के पालनीय नियमों को अपनाकर पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त किया जा सकता है।

2.7 शब्दावली –

उषापान	–	प्रातः शौच से पूर्व जल का सेवन
इहलोक	–	संसार, पृथ्वी
प्रक्षालन	–	धोना
क्षीरि वृक्ष	–	औषधि के रूप में प्रयोग आने वाले ऐसे वृक्ष जिनसे दूध का स्राव होता है।
लोध कषाय	–	वृक्ष का काढ़ा
आमलक कषाय	–	आवलाँ का काढ़ा
शीतोदक	–	ठण्डा पानी
प्रावृट	–	वर्षा से पूर्व की ऋतु
अनागत	–	नहि आये हुए।
स्नेह	–	चिकने पदार्थ

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

1. एक पंक्ति में उत्तर दीजिये।

क. प्रतिदिन की चर्या को दिनचर्या कहते हैं।
ख. चरक संहिता
ग. ब्रह्ममुहुर्त में जागरण
घ. प्रातः आँख खुलते ही
ड़. उषापान के लिए समशीतोष्ण जल उपयुक्त होता है।

2. **रिक्त स्थान भरिये –**
क. जीवन **ख.** स्वस्थ , रोगी **ग.** स्थिरता, बलवृद्धि **घ.** सुखमय **ड़.** आयु बढ़ाने

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

7. सिंह रामहर्ष, (2011) स्वस्थवृत्त विज्ञान। चौखम्भा प्रतिष्ठान दिल्ली।
8. शास्त्री अम्बिका दत्त, सुश्रुत संहिता। चौखम्भा प्रतिष्ठान दिल्ली।
9. गोरक्षनाथ , चरक संहिता। चौखम्भा प्रतिष्ठान दिल्ली।
10. गुप्ता अत्रिदेव, अष्टांग संग्रह। चौखम्भा प्रतिष्ठान दिल्ली।
11. गुप्ता अत्रिदेव, अष्टांग हृदय। चौखम्भा प्रतिष्ठान दिल्ली।
12. ब्रह्मवर्चस, (2010) आयुर्वेद का दर्शन क्रिया शरीर। श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट शान्तिकुंज हरिद्वार।

2.10 सहायक पाठ्य सामग्री –

1. बालकृष्ण आचार्य, (2007) आयुर्वेद सिद्धान्त रहस्य। दिव्य प्रकाशन हरिद्वार।
2. जैन राजकुमार, (2011) योग और आयुर्वेद । चौखम्भा ओरन्टालिया दिल्ली।
3. नौटियाल विनोद, (2016) योग और वैकल्पिक चिकित्सा। किताब महल इलाहाबाद।

2.11 निबंधात्मक प्रश्न –

प्रश्न 1. दिनचर्या का अर्थ, परिभाषा व महत्व बताइये।
प्रश्न 2. दिनचर्या का वैज्ञानिक आधार क्या है ? स्पष्ट कीजिए।
प्रश्न 3. दिनचर्या की क्या आवश्यकता है ? स्पष्ट कीजिए।

इकाई – 3 दिनचर्या का विस्तृत वर्णन

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 स्वास्थ्य की परिभाषा
3.3 दिनचर्या
3.3.1 ब्रह्ममूहुर्त में जागरण
3.3.2 आत्मबोध की साधना
3.3.3 भूनमन
3.3.4 ऊषापान
3.3.5 शौच
3.3.6 दन्त धावन
3.3.7 जिह्वा निर्लेखन
3.3.8 गण्डूष या गरारे करना
3.3.9 मुख प्रक्षालन
3.3.10 अजंन
3.3.11 नस्य
3.3.12 धूमपान
3.3.13 व्यायाम एवं चंक्रमण
3.3.14 क्षौर कर्म
3.3.15 अभ्यंग
3.3.16 शरीर परिमार्जन
3.3.17 स्नान
3.3.18 वस्त्रधारण
3.3.19 सन्ध्योपासना एवं ध्यानादि
3.3.20 स्वाध्याय
3.3.21 भोजन
3.4 सरांश
3.5 शब्दावली
3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.8 सहायक पाठ्य सामग्री
3.9 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना –

प्रिय विद्यार्थियों इससे पूर्व की इकाईयों में आपने स्वास्थ्य, स्वस्थ पुरूष के लक्षण, स्वस्थवृत्त का प्रयोजन, का अध्ययन किया, साथ ही यह जाना कि स्वस्थवृत्त पालनीय नियमों का वृत्त है। जिसका प्रथम अंग दिनचर्या है। आयुर्वेद शास्त्र में स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य के रक्षण के लिए ही दिनचर्या, रात्रिचर्या और ऋतुचर्या का वर्णन है। क्योंकि इन चर्याओं का पालन स्वस्थ व्यक्ति ही कर सकता है, और रोगी व्यक्ति दिनचर्या के पालनीय नियमों का पालन नहीं कर सकता है। अतः दिनचर्या का पालन कर स्वस्थ व्यक्ति अपने स्वास्थ्य का रक्षण कर अपने लौकिक और पारलौकिक कर्तव्य पूर्ण कर सकता है।

प्रिय विद्यार्थियों, पूर्व की इकाई में आपने दिनचर्या की अवधारणा, वैज्ञानिक आधार, आवश्यकता एवं महत्व का अध्ययन किया। अब हम इस इकाई में दिनचर्या का विस्तृत अध्ययन करेंगे। दिनचर्या अर्थात् स्वस्थ पुरूष का नित्य प्रातःकाल ब्रह्ममुहुर्त में सोकर

उठने से रात्रीचर्या (सोने तक) तक होती है। इस इकाई में दिनचर्या का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

3.2 उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप –

- दिनचर्या को विस्तारपूर्वक समझ सकेंगे।
- आत्मबोध की साधना का महत्व समझ सकेंगे।
- भूनमन, ऊषापान क्यों आवश्यक है ? समझ सकेंगे।
- शौच, दन्तधावन, अभ्यंग, क्षौर कर्म का अध्ययन कर सकेंगे।
- व्यायाम (यौगिक अभ्यास) प्रातः भ्रमण, स्नान, वस्त्र धारण, सन्ध्या उपासना के क्रम को समझ सकेंगे।
- स्वाध्याय व भोजन के महत्व को समझ सकेंगे।

3.3 दिनचर्या –

प्रिय विद्यार्थियों स्वस्थ पुरूष का नित्य सोकर उठने से लेकर रात्री पर्यन्त तक की चर्या दिनचर्या कहलाती है। प्रतिदिन किए जाने वाले सदाचरण का नाम दिनचर्या है। अथवा सामान्य जीवन में जो हम वृत्तियाँ अपनाते है, उसे दिनचर्या कहा जाता है।

दिनचर्या का शाब्दिक अर्थ दिन + चर्या अर्थात् दिन का अर्थ दिवस तथा चर्या अर्थात् चलना या बढ़ना आदि अनेक अर्थो में प्रयोग हुआ है। इस प्रकार दैनिक क्रमबद्धता को दिनचर्या कहा जाता है।

आयुर्वेद के आचार्य **वाग्भट्ट ने** दिनचर्या का वर्णन इस प्रकार किया है –

3.3.1 ब्रह्ममूहुर्त में जागरण –

"ब्रह्मेमुहुते। हयुतिष्ठेज्जीर्णा निरूपय रक्षार्थमामुषः स्वस्थो। (अ0सू0 – 2)
ब्रह्मे मुहुर्ते बुध्यते स्वस्थो रक्षार्थ मायुषः ।।" (भा0प्र0 1/14)

अर्थात् स्वस्थ मनुष्य आयु की रक्षा के लिए रात के भोजन के पचने न पचने का चिार करता हुआ (ब्रह्ममुर्हुर्त) ऊषाकाल में उठे।

महर्षि मनु ने कहा है –

"ब्रह्त मुहुर्ते बुध्यते धर्मार्थानुचिन्तयेत।
कायक्लेषांष्च तन्मूलान्वेद तत्वार्थमेव च।।" (मनु 4/92)

प्रत्येक मनुष्य को ब्रह्ममुहुर्त (ऊषाकाल) में उठकर धर्म और अर्थ का चिन्तन करना चाहिए, तथा शरीर के रोग और उनके कारणों पर विचार करना चाहिए। तथा वेद के रहस्य क्या है ? इस पर चिन्तन करना चाहिए। चौबीस घण्टों में सर्वश्रेष्ठ समय ब्रह्ममुहुर्त ही है। इसलिये इस उत्तम समय में निद्रा का त्याग अवश्य कर देना चाहिए। प्रत्येक प्रभात मनुष्य जीवन का आरम्भ काल है। प्रातःकाल का समय विशेष स्फुर्ति व ऊर्जा का काल होता है। सृष्टि के प्रत्येक प्राणी को नवजीवन, नवचेतना, नवस्फूरणा देना वाला काल है। प्रातःकाल कमल खिलने लगते है। पक्षियों का मधुर संगीत तथा शीतल मंद समीर बहती है।

शारीरिक स्वास्थ्य व मन, बुद्धि आत्मा को प्रसन्नता देने वाला समय प्रातःकाल होता है। अतः मनुष्य को ब्रह्ममुहुर्त (प्रातःकाल) में उठ जाना चाहिए, क्योंकि इस समय प्रकृति अपने मुक्त हस्त से स्वास्थ्य के साथ – साथ प्रसन्नता, मेधा व बुद्धि का आर्शीवाद प्रदान करती है।

जैसा कि आयुर्वेद के ग्रन्थों में कहा है –

"वर्ण कीर्ति मति लक्ष्मीं स्वास्थ्यमायुच्श्र विन्दती।
ब्रह्मे मुहुर्ते संजाग्राच्छिवं व पंकजं यथा।।"

अर्थात् ब्रह्ममुहुर्त में उठने से सौन्दर्य, यश, बुद्धि, धन, धान्य, स्वास्थ्य और दीर्घायु की प्राप्ति होती है। प्रातः काल उठने से शरीर कमल के समान खिल जाता है।

प्रिय विद्यार्थियों दिनचर्या के अन्तर्गत ब्रह्ममुहुर्त में उठना, आत्मबोध की साधना, पृथ्वी माँ को नमस्कार, ऊषापान, शौच, दन्तधावन, अभ्यंग, प्रातःभ्रमण, व्यायाम, क्षौरकर्म, स्नान, वस्त्रधारण, सन्ध्योपासना, स्वाध्याय, भोजन आदि कर्म आते है। जो कि दिनचर्या के पालनीय नियम हैं। जिनका वर्णन निम्न है –

3.3.2 आत्मबोध की साधना –

प्रातः ब्रह्ममुहुर्त में आंख खुलते ही यह साधना की जाती है। प्रातः जागते ही पालथी मार कर बैठ जाइये। दोनों हाथ गोद में रखें। सर्वप्रथम आज के नये जन्म के लिए ईश्वर का आभार मानें। क्योंकि रात्रि में नींद आते ही यह हश्य जगत समाप्त हो जाता है। मनुष्य स्वप्न सुषुप्ति के किसी अन्य जगत में रहता है। जागने पर चेतना का शरीर से सधन सम्पर्क बनता है। यह स्थिति एक नये जन्म जैसी होती है। पालथी मार कर बैठकर सर्वप्रथम लम्बी गहरी श्वास भर नीले रंग के प्रकाश का ध्यान करते हुए श्वास ले तथा प्रश्वास करे। तीसरी श्वास रक्त वर्ण के प्रकाश का ध्यान करते हुए ले, फिर प्रश्वास करें। प्रसन्नता का अनुभव करें , कि परमात्मा ने कृपा कर आज फिर नया जन्म दिया है। स्वयं को परमात्मा का पुत्र मानकर, उसके नौष्ठिक साधक मानकर, साधक के अनुरूप दिनभर के क्रिया कलापों का खाका मस्तिष्क में बनाना चाहिए। तथा यह भाव रखना चाहिए कि हम ईश्वर के पुत्र हैं तथा उसकी योजना के अनुसार ऐसा जीवन जीएंगे कि उसकी आँखें प्रसन्नता से चमक उठे। साथ ही ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए – हे प्रभु हम संकल्प लेते है कि आप ने हमें जो दुर्लभ शरीर, विभूतियाँ एवं अवसर सहित यह जीवन दिया है, उसे हम सार्थक बनायेंगे। हे प्रभु आपने जिस तत्परता से हमें यह सभी कुछ दिया है। हम उसी तत्परता के साथ इन सभी का उपयोग करेंगे। तथा अपनी सामर्थ्य के अनुसार कार्य में तत्पर रहेंगे। हे ईश्वर अपना पुत्र समझ कर सदैव मेरा मार्गदर्शन कीजिये। ईश्वर के चरणों में भाव पुष्प अर्पित कर पूर्ण समर्पण का भाव अभिव्यक्त करना चाहिए।

3.3.3 भूनमन –

ब्रह्ममुहुर्त में उठने के पश्चात् पृथ्वी माँ को नमस्कार किया जाता है। तथा मातृभूमि के गौरव व उनके गुणों का भाव रखते हुए निम्न श्लोक से क्षमा याचना करनी चाहिए।

"समुद्रमेखले देवी पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णु पत्नीं नमस्तुभ्यं पादस्पर्ष क्षमस्व मे।"

अर्थात् पृथ्वी माँ सभी ओर समुद्र से घिरी हुयी तथा पर्वतो से सुशोभित, विष्णुपत्नी पृथ्वी माता आपको नमस्कार है। मैं आप पर पैर रखकर अपनी जीवन यात्रा आरम्भ कर रहा हूँ। आप इस धृष्टता के लिए मुझे क्षमा करें।

3.3.4 ऊषापान –

पृथ्वी माँ को नमस्कार के पश्चात् ऊषापान का क्रम आता है। ऊषापान प्रातः उठकर शौच जाने से पूर्व करना चाहिए। ऊषापान में शीतल जल का ही सेवन करना सर्वोत्तम है। शीतल जल के सेवन से रात्री के भोजन की अपच भी ठीक हो जाती है। शीतल जल के सेवन से रात्री के भोजन की अपच ठीक हो जाती है। शीतल जल से पाचन संस्थान को बल मिलता है। भाव प्रकाश में लिखा है –

" सवितुः समुदय काले प्रसृतिसलिलस्य पिवेदष्टौ।
रोग जरा परिमुक्तो जीवेद वत्सरषतं साग्रम।।"

अर्थात् सूर्योदय के समय जो व्यक्ति प्रतिदिन चार अंजलि जलपान करता है, वह रोग से मुक्त हो जाता है। बुढ़ापा उसके पास नहीं आता और वह सौ वर्ष से भी अधिक आयु प्राप्त करता है। शास्त्रों में वर्णन है कि ऊषापान से मलों की शुद्धि होती है। शरीर में स्फूर्ति तथा मन में उत्साह की वृद्धि होती है। नित्य ऊषा पान करने से शारीरिक उष्णता, काम विकार, कब्ज, उदर के रोग, सिरसूल , नेत्र से संबधित रोग दूर होते हैं।

3.3.5 **शौच –**ऊषापान के पश्चात शौच का क्रम आता है।

सुश्रुत संहिता में शौच का वर्णन करते हुए लिखा है –

''आयुष्यमुषसि प्रोक्तं मलादिनाम विसर्जनम्।

अर्थात् प्रातःकाल सूर्योदय के पूर्व ही मल त्याग करना चाहिए। सूर्योदय से पूर्व मलत्याग करने से दीर्घायु की प्राप्ति होती है। शौच के सही समय का ध्यान ना रखने पर शरीर में विकारों का संग्रह हो जाता है। जिससे अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन दो बार शौच अवश्य जाना चाहिए। प्रातः तथा सायंकाल। मल – मूत्र के वेग को रोकना नहीं चाहिए। वेग को रोकने से रोग उत्पन्न होते हैं। शौच के बाद हाथ – पैर व मुख प्रक्षालन (धोना) करना चाहिए। ऐसा करने से थकावट दूर होती है और नेत्र ज्योति बढ़ती है।

3.3.6 दन्त धावन –

दॉतों की तुलना मोतियों से की जाती है। दॉतों के बिना मुख की शोभा व सौन्दर्य समाप्त हो जाता है। दाँत मनुष्य शरीर के लिए बहुत उपयोगी है। दाँत शरीर के रक्षक व निर्माता कहे जाते हैं। दाँत मनुष्य शरीर में जन्म के कुछ माह बाद आते हैं। और यदि सफाई व खान – पान का ध्यान नहीं रखा जाए तो यह असमय ही खराब हो जाते हैं। इन्हें स्वस्थ बनाये रखने के लिए कुछ नियमों का पालन करना अनिवार्य है।

महर्षि सुश्रुत के अनुसार –

''दन्ताभवन्ति चपला आदि वज्र तुल्य।
अवेक्ष्यर्तु च दोष च रसं वीर्यं च सर्वदा।।
कषायं मधुरं तिक्तं कटुकं योजयेन्नरः।
निम्बच्श्र तिक्त के श्रेष्ठः कषाये बब्बुलस्तथा।।
मधूको मधुरे श्रेष्ठः करंज कटुके तथा।।'' (सु0चि0अ0 – 24)

अर्थात् सर्वदा दोष , रस और वीर्य को देखकर कसैली, मीठी, कड़वी यथोचित दातुन करनी चाहिए। तिक्त दातुन में नीम, कसैली में बबूल, मधुर में महुवा और कड़वी में करंज का दातुन श्रेष्ठ है।

आयुर्वेद के आचार्यो ने दातुन की बहुत प्रशंसा की है। दातुन करने से दाँत में कीड़े नहीं लगते है। मुँह से दुर्गन्ध नहीं आती है। दाँतों का मल व कफ समाप्त हो जाता है। इन सभी में नीम की दातुन श्रेष्ठ है। आयुर्वेद शास्त्रों में वर्णन है कि दातुन लगभग 12 अंगुल लम्बी कनिष्ठा अंगुली के समान मोटी होनी चाहिए तथा दॉतों से चबा – चबा कर दातुन के ब्रश सा बनाकर दाँतों के ऊपर नीचे घर्षण करना चाहिए। दातुन को बीच से फाड़ कर उसका उपयोग जिह्वा निर्लेखनी के रूप में करना चाहिए। दोनों कोनों से मोड़ कर जिह्वा की सफाई करनी चाहिए। दाँतों की सफाइ के साथ – साथ जिह्वा और तालु की सफाई का भी बहुत महत्व है।

3.3.7 जिह्वा निर्लेखन –

दन्तधावन के बाद जिह्वा निर्लेखन का क्रम आता है।

''जिह्वानिर्लेखनं रौप्यं सौवर्णं वार्क्षमेव च।
तन्मलापहरं शस्तं मृदुश्रुक्ष्णं दषाड.गुलम्।। ''(सू0 चि0 अ0 24)

अर्थात् जीभ के मैल को दूर करने वाली जीभ – छोलनी चादी, सोना या लकड़ी की टेढ़ी , मुलायम, चिकनी और दश अंगुल लम्बी होनी चाहिए। यह प्राचीन विधि है। आज के युग में दातुन की जगह ब्रश ने ले जी है। अतः ब्रश करने के लिए आयुर्वेदिक मंजन ही प्रयोग में लेना चाहिए।

रात्री को सोते समय यदि दुग्ध पीया हो और दाँतों की सफाई ना की हो तो दाँतों में कीड़े लग जाते है। अतः सोने से पहले दाँतों को अच्छी तरह ब्रश आदि से साफ कर लेना चाहिए।

3.3.8 गण्डूष या गरारे करना –

दन्त धावन के पश्चात् जल से अथवा स्नेह (तिल तैल) का गरारा करना चाहिए। मुख में इतनी मात्रा में जल अथवा तैल को भरना चाहिए। जिससे वह मुँह में घुमाया ना जा सके, **इसे गण्डूष** कहते हैं, तथा मुख में जल अथवा तैल की इतनी मात्रा भरें कि

जिससे वह मुँह में घुमाया जा सके इसे **कवल** कहते है। मुख में तैल या जल इतनी देर तक रखना चाहिए कि जब तक नेत्रों से अश्रुस्राव न होने लगे। आयुर्वेद के ग्रन्थों में , सुश्रुत संहिता में वर्णन है –

"मुखवैरस्य दौर्गन्ध्यषोफजाड्यहरं सुखम्।
दन्तदाढर्यकरं रूच्यं स्नेहगण्डूषधारणम्।।" (सु0 चि0 24/14)

अर्थात् इससे मुख की शुद्धि होती है। दुर्गन्ध तथा जीभ व दातों में जमा मैल भी निकल जाता है। अतिरिक्त कफ भी निकल जाता है। तैल गण्डूष को दन्त दाढर्यकर (दॉतों को दृढ़ बनाने वाला) कहा जाता है। दॉत मजबूत होते है। दात दर्द नहीं होता है। मुँह का स्वाद अच्छा रहता है। चेहरे पर कोमलता भोजन में रूचि होने लगती है।

3.3.9 मुख प्रक्षालन –

गण्डूष अथवा कवल के उपरान्त मुख तथा नेत्र प्रक्षालन करना चाहिए। मुख प्रक्षालन वट, गूलर, आदि क्षीरि वृक्षों के कषाय लोध्र कषाय या आमलक कषाय से करना चाहिए इसके अभाव में शीतोदक (ठण्डा जल) से मुख एवं नेत्र प्रक्षालन करना चाहिए।

मुख तथा नेत्रों का प्रक्षालन करने से मुख में झाई, मस्से दाने आदि नहीं होते है। तथा नेत्र ज्योति बढ़ती है।

3.3.10 अजंन –

मुख प्रक्षालन के पश्चात अञजन लगाना चाहिए। अञजन के प्रयोग से दृष्टि सम्यक् बनी रहती है।

सुश्रुत संहिता में वर्णन है –

"सुखं लघु निरीक्षेत दृढं पष्यति चक्षुषा। मतं स्रातोअंजनं
श्रेष्ठं विषुद्धं सिन्धुसम्भवम्।।
दाहकण्डूमलघ्न च दृष्टिक्लेदरूजापहम्। तेजोरूपावहं चैव सहते मारूतातपौ।।"
(सु0 चि0 24/17 – 18)

अर्थात् नेत्र प्रक्षालन तथा अंजन प्रयोग से मनुष्य बिना कष्ट के सुखपूर्वक सूक्ष्म वस्तुओं को दृढ़ता से देख सकता है। सोत्रोजन का प्रयोग नित्य करना चाहिए। यह अंजन नेत्रदाह, तथा नेत्र कण्डु (खुजली) का नाश करता है। तथा नेत्र वायु और धूप सहने में समर्थ हो जाते है।

आचार्य सुश्रुत ने उक्त व्यक्ति को अंजन निषेध किया है। सिर से नहाए हुए, वमन या नस्य किये हुए, रात में जगे हुए एवं बुखार से पीड़ित।

3.3.11 नस्य –

प्रतिदिन अंगुलि में स्नेहलिप्त करके दोनों नासाछिद्रों में स्नेह लगाने का आचार्यो ने निर्देश दिया है। यह नस्य प्रातः सायं करना चाहिए। प्रतिमर्श नस्य हेतु तैल का प्रयोग सर्वश्रेष्ठ माना गया है। क्योंकि सिर के कफ स्थान होने से घी व वसा आदि स्नेहों का प्रयोग हानिकारक है। नित्य नस्य का प्रयोग करने वाले पुरूष को उर्ध्वजत्रुगत रोग नहीं होते, उनके केश स्वस्थ रहते हैं। नेत्र रोग, शिरोरोग नहीं होते। सिर में कम्पन आदि विकार समाप्त होते हैं। मुख प्रसन्न तथा स्वर स्निग्ध होता है। अतः मनुष्य का प्रावृट, शरद एवं बसन्त ऋतु में अणु तैल से नस्य करना चाहिए।

3.3.12 धूमपान –

आचार्य चरक ने इलायची, नागकेसर, चन्दन, तेजतत्र, जटामांसी आदि औषधि के चूर्ण से धूमवर्ति (यवाकार, आठ अंगुल लम्बी, अंगुष्ठ समान मोटी, नलिकाकार) बनाने का विधान किया है। इस औषधिय धूमवर्ति से धूम्रपान से गलरोग, शिरोरोग, श्वास, कास, मुखदौर्गन्ध्य आदि रोगों का नाश होता हें इस धूमपान के आठ काल चरक संहिता में कहे गए हैं – **स्नान के बाद, भोजन के बाद, वमनोपरान्त, छींकने के बाद, दन्तधावन के बाद, नस्योपरान्त, अंजनोपरान्त, निद्रा लेने के बाद।** यह धूम्र केवल तीन बार नासा अथवा मुख से लिया जाता है एवं केवल मुख से ही बाहर छोड़ा जाता है। अधिक

धूम्रपान से भ्रम, रक्तपित्त, बाधिर्य आदि उपद्रव होते है। अनेक रोगों में एवं गर्भिणी, वात प्रकृति एवं पित्त विकारों में धूम्रपान निषेध है।

3.3.13 व्यायाम एवं चंक्रमण –

वह शारीरिक चेष्टाएं जो शरीर में स्थिरता एवं बल को बढ़ाने वाली है व्यायाम कहलाती है। आचार्य सुश्रुत के अनुसार शरीर में थकान उत्पन्न करने वाली चेष्टाएं व्यायाम कहलाती है।

शरीरायासजननं कर्म व्यायामसंज्ञितम्। (सु0 चि0 24/38)
शरीरचेष्टा या चेष्टा स्थैर्याथाबलवर्धिनी।
देहव्यायामसंख्याता मात्रया ता समाचरेत ।। (च0 सू0 7/ 31)

आचार्य चरक ने शरीर की उन चेष्टाओं को जो मन के भी इष्ट हो और शरीर में स्थिरता एवं बल वृद्धि करती हों उन्हें व्यायाम कहा है और उन्हें मात्रावत करने का ही निर्देश दिया है।

व्यायाम द्वारा शरीर पुष्ट होता है, शरीर में सम्यक रक्त संचरण होने से शरीर की कान्ति में वृद्धि होती है। शरीर का विकास होता है। जठराग्नि प्रदीप्त होती है। शरीर में फुर्ती आती है। शरीर में हल्कापन रहता है। और श्रम, प्यास, सर्दी गर्मी आदि को सहने की शक्ति प्राप्त होती है। व्यक्ति निरोगी रहता है। मोटापा कम करने के लिए व्यायाम से बढ़कर उपाय नहीं है। व्यायामक करने वाले व्यक्ति को बुढापा सहसा नहीं आता है। शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास होता है।

शीत एवं बसन्त ऋतु में व्यायाम नितान्त आवश्यक है। अन्य ऋतु में भी स्वल्प मात्रा में व्यायाम करना ही चाहिए। व्यायाम करने वालों को सदा आयु, बल, शरीर क्षमता, देश, काल एवं आहार को ध्यान में रखकर व्यायाम करना चाहिए। अत्यधिक व्यायाम रोगों का कारण होता है। अत्यधिक व्यायाम करने वाले व्यक्ति को क्षय, रक्तपित्त, श्वास आदि रोग हो सकते है। अतः अर्धबल तक ही व्यायाम करने का निर्देश आचार्यो द्वारा दिया गया है। बल का अर्थ होने के निम्न लक्षण है – व्यायाम करते समय हृदयस्थ प्राणवायु का मुख तक आ जाना, अथवा जब मस्तक में पसीने का अनुभव हो तो बलार्थ समझना चाहिए। श्वास, कास, ज्वर, क्षय आदि रोगों में व्यायाम नहीं करना चाहिए। जो रोगादि से पीड़ित है अथवा वृद्ध या गर्भवती महिलाओं को चक्रमण अथवा चहलकदमी करने का निर्देश आचार्य सुश्रुत द्वारा दिया गया है। यह एक मृदु व्यायाम जो वृद्धों, हृदय रोगियों आदि के लिए उत्तम है। अत्यधिक घूमना जरा एवं दौर्बल्यकारक है।

व्यायाम के बाद शरीर का हल्के हाथ से मर्दन करना चाहिए, जिससे थकान मिट जाती है।

3.3.14 क्षौर कर्म –

केश, नश्व रोमापमार्जन को अत्यन्त आवश्यक एवं स्वस्थवृत्त की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है। यह शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य एवं मानवोचित सौन्दर्य का कारक है। केश नखादि व्याधि उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं का वासस्थान होते हैं अतः समय – समय पर इनका कर्तन, पुष्टिकर, आयुष्य, शुचिकर कहा जाता है। आचार्यो ने पक्ष में तीन बार केश–नख–रोग–शत्रु आदि कर्तन को कहा है। क्षौर कर्म के बाद स्नान आवश्यक है। आचार्य सुश्रुत ने क्षौरकर्म को पापों का शमन करने वाला हर्षोउत्पादक सौभाग्यकर, उत्साहवर्धक माना है। अतः नियमपूर्वक प्रतिदिन क्षौरकर्म करना चाहिए। क्षौर कर्म मानसिक, शारीरिक स्वास्थ्य एवं मानवोचित सौन्दय का कारक है। केश, नख आदि व्याधि उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं का वासस्थान होते है। अतः समय – समय पर इसका कर्तन, पुष्टिकर, आयुष्य शुचिकर कहा जाता है।

3.3.15 अभ्यंग –

आयुर्वेद में अभ्यंग को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इसे विशेष रूप से वात एवं वेदनाहार कहा गया है। तैलाभ्यंग को जरा (बुढ़ापा) नाशक, श्रमहर, आयुपुष्टिकर, निद्राजनन,

त्वच्य, दार्ढयकर कहा है। अभ्यंग से शरीर दृढ़ और त्वचा कोमल होती है। अभ्यंग से शरीर त्वक में रक्त संचार बढ़ता है और तैल से स्नेह प्राप्त कर त्वचा मृदु एवं लचकदार होती है। रूक्षता का नाश होने के कारण त्वचा का फटना आदि रोग नहीं हो पाते। सिर में तैल मर्दन से शिरःशूल, वली, पलित आदि रोगों का नाश होता है। शिरोअभ्यंग से सुखपूर्वक निद्रा भी आती है। शिरोअभ्यंग के साथ केश्या (कंघी) करने से केशों में होने वाले यूका पिपिलिका आदि कृमियों का नाश होता है। कर्ण तर्पण करने से कर्णरोग नहीं होते एवं कान में मैल जमा नहीं हो पाता । इसी प्रकार पादाभ्यंग से पैरों में रूक्षता बिवाइ आदि रोग नहीं होते यह शीघ्र श्रमहर होता है।

ज्वर अथवा अजीर्ण जन्य रोगों में अभ्यंग नहीं करना चाहिए।

"सार्षपं गन्ध तैलष्च यत्तैलं पुष्पवासितम्।
अन्यद्रव्य युतं तैलं न दुश्यति कदाचन।।"

सरसों का तेल, सुगन्धित तैल, पुष्पवासित और अन्य सुगन्धित द्रव्यों से युक्त तैल कभी वर्जित नहीं होता है। तैलो में तिल तैल मालिश करना सबसे श्रेष्ठ है।

चरक संहिता में वर्णन किया गया है कि –

मालिश से वायु विकार शान्त रहते है, तथा तैलाभ्यंग से श्रम एवं क्लेश हरने की क्षमता बढ़ जाती है।

3.3.16 शरीर परिमार्जन –

शरीर को उद्वर्तन, उत्सादन, उदघर्षण, फेनक आदि विधियों द्वारा स्वच्छ रखने को शरीर परिमार्जन कहते है। अस्निग्ध अर्थात बिना तैलादि मिले हुए रूक्ष चूर्ण को अंगों पर मलना उदघर्षण या उत्सादन है। यह परम मेद हर है। स्नेह मिश्रित औषधि कल्क को शरीर पर लगाना उद्वर्तन या उबटन कर्म है। यह त्वचा के वर्ण को निखारने, झाांई, व्यंगादि का नाश करते हे। इनसे त्वचा रोगों का नाश होता है। आज भी घर में स्त्रियां हल्दी, चन्दन, मसूर आदि उद्वर्तन के लिए प्रयोग करती है। फेनक अथवा रीठे के पानी ऑवले के पानी से या साबुन से शरीर परिमार्जन किया जाता है। यह सभी कर्म रोमकूपों को खोलते है एवं त्वचा में स्थित जीवाणुओं का नाश करते है। इष्टिका (ईंट) के चूर्ण का प्रयोग भी उदघर्षण के लिए किया जाता है। आजकल इसके स्थान पर स्पंज का प्रयोज होता है।

3.3.17 स्नान –

नित्यप्रति स्नान अनेक रोगों का नाश है। यह स्वेद, खुजली, तन्द्रा, निद्राहर है और अग्नि वृद्धि करता है। शीतल जल से स्नान करने से जठराग्नि प्रदीप्त होती है। स्नान करने से पूर्व सिर धोना चाहिए। सिर को सदैव शीतल जल से धोना चाहिए। उष्ण जल से नेत्र ज्योति का ह्रास होता है। अत्यन्त शीतल जल से स्नान नहीं करना चाहिए। शीतल ऋतु में शरीर पर उष्ण जल का प्रयोग एवं उष्ण ऋतु में शीतल जल का प्रयोग करना चाहिए। इससे ऋतुजन्य दोषों का निवारण होता है। भोजन के तुरन्त बाद अर्धरात्रि एवं व्याधि में स्नान नहीं करना चाहिए। बहुत अधिक वस्त्र धारण अथवा पूर्ण नग्न होकर स्नान नहीं करना चाहिए। अतिसार, ज्वर, कर्णशूल अजीर्ण आदि रोगों में स्नान नहीं करना चाहिए। स्नान के पश्चात शरीर का मर्दन नहीं करना चाहिए। स्नान के तुरन्त बाद शरीर स्वच्छ वस्त्र से पोंछकर निर्मल वस्त्र धारण करने चाहिए।

स्नान के पश्चात चन्दनादि का लेपन करना चाहिए इससे स्वेद, दौर्गन्ध आदि का नाश होता है। इत्र, सुगन्धित माला आदि को धारण करना चाहिए। यह उत्तम सौभाग्यकर एवं प्रीतिवर्धक होता है।

वैदिक दिनचर्या के अन्तर्गत प्रतिदिन स्नान अनावश्यक है। स्नान करने से शरीर शुद्ध हो जाता है। रोमकूप खुलते है, तथा आलस्य व निद्रा दूर होती है, चित्त प्रसन्न होता है। अथर्ववेद में जल की महत्ता का वर्णन करते हुए लिखा है –

भिषाभ्यो भिषक्तरा आपः। (अथर्ववेद 19/2/3)

जल में आरोग्यता प्रदान करने की शक्ति है। जल कल्याण करने वाला है, तथा जल औषधियों में परम औषधि है।

महर्षि चरक ने स्नान के निम्न लाभ बताये हैं –

''पवित्रं वृश्मायुष्यं श्रमस्वेदमलापहम्।
शरीरं बल संधानं स्नानं ओजस्करं परम्।।''

स्नान करने से शरीर पवित्र होता है। आयु बढ़ती है। थकावट पसीना तथा मैल को दूर करता है। शारीरिक बल तथा ओज बढ़ता है।

सुश्रुत संहिता चि0 स्थान 24 में वर्णन है – स्नान दाह, थकावट, चर्म रोग और प्यास का नाश करने वाला, हृदय को प्रसन्न करने वाला मैल नाशक तथा श्रेष्ठ इन्द्रियों को शुद्ध करने वाला है। रक्त को साफ करने वाला, अग्नि का प्रदीप्त करने वाला तथा पाप नाशक है।

3.3.18 वस्त्रधारण –

सदा निर्मल वस्त्रों को ही धारण करना चाहिए। मलिन वस्त्रों से कृमि, कण्ड, आदि होने का भय रहता है। जो वस्त्र जीर्ण न हुए हों एवं स्वच्छ हो उन्हें धारण कर व्यक्ति बड़े लोगों के बीच बैठने की योग्यता प्राप्त करता है। यह हर्षकारक, उत्साहवर्धक एवं प्रीतिवर्धक होता है। दूसरे के पहने हुए वस्त्रादि नहीं पहनने चाहिए। शीतकाल में ऊनी (गर्म), गर्मी में कषाय (श्वेत) और वर्षा ऋतु में रंगीन वस्त्र धारण करने को आचार्यो द्वारा कहा गया है। शरीर पर निर्मल वस्त्र एवं सिर पर उष्णीश धारण (पगड़ी) करना चाहिए। स्नान क बाद वस्त्र स्वच्छ धारण करने चाहिए। निर्मल वस्त्र आयु को बढ़ाने वाले तथा स्वास्थ्यकर होते है। जैसा कि **चरक सूत्र** में कहा गया है –

''काम्यं यषस्यमायुष्यमलक्ष्मीघ्नं प्रहर्षणम्।
श्री मत्पारिषदं शस्तं निर्मलाम्बर धारणम्।।'' (च0सू0अ0 5/95)

अर्थात् निर्मल वस्त्र आयु को बढ़ाने वाले दरिद्रता नाशक, प्रसन्नता प्रदान करने वाला, और श्रेष्ठ लोगों के मध्य बैठने योग्य बनाते है।

देवपूजन, सोने तथा बाहर निकलने के लिए अलग – अलग वस्त्र होने चाहिए। किसी दूसरे के धारण किये हुए वस्त्र के अतिरिक्त, किसी दूसरे द्वारा धारण किया हुआ जूता भी प्रयोग नहीं करना चाहिए।

3.3.19 सन्ध्योपासना एवं ध्यानादि –

प्रतिदिन प्राणायाम, सूर्योपासना गायत्री मन्त्र का जाप एवं ईष्ट देव का पूजन करना चाहिए। इससे आत्मिक विकास होता है, इससे बुद्धि सदप्रवृत्ति यश की प्राप्ति होती है। आत्मिक रूप से ऊर्जावान व्यक्ति कठिन परिस्थिति का भी निवारण करने में सक्षम होता है।

सन्ध्या, उपासना मानव जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है। जिस प्रकार स्थूल शरीर को भोजन की आवश्यकता है, ठीक उसी प्रकार आत्मिक भोजन आवश्यक है। उसके लिए सन्ध्या उपासना नितान्त आवश्यक है। सन्ध्या उपासना से आयु, सद्बुद्धि, प्राण, प्रज्ञा, पशु, कीर्ति तथा उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है।

चाणक्य नीति में वर्णन है –

''विप्रो वृक्षस्तस्य मूलंच संध्या वेदाः शाखा धर्मकर्माणि पत्रम्।
तस्यान्मूलं यत्रतो रक्षणीयं, छिन्नेमूलं नैव शाखा न पत्रम् ।।'' (चा0 10/12)

अर्थात् यदि सन्ध्या को जीवन का आधार कहें तो अतिश्योक्ति ना होगी। सन्ध्या उपासना से दीर्घायु, बुद्धि मेधा, स्वास्थ्य प्राप्त होता है, तथा जप आदि करने से पापों का क्षय होता है, तथा सुख , समृद्धि, शारीरिक व मानसिक आरोग्य की प्राप्ति होती है।

3.3.20 स्वाध्याय –

स्वाध्याय दिनचर्या का एक प्रमुख अंग है। स्वाध्याय का अर्थ है – स्वयं का अध्ययन करना तथा सद्ग्रन्थों का अध्ययन करना। ज्ञान द्वारा ही अपने परम लक्ष्य की प्राप्ति होती है। हमारे प्राचीन ऋषि मुनियों ने ज्ञान की प्राप्ति के लिए स्वाध्याय का महत्व बताया है। जिस प्रकार श्वास – प्रश्वास का क्रम चलता रहता है। उसी प्रकार स्वाध्याय का क्रम भी टूटना नहीं चाहिए। स्वाध्याय से ही मनुष्य अपने लक्ष्य तक पहुँच सकता है। स्वाध्याय से अंतः प्रज्ञा जागत होती है। विवेक ज्ञान की प्राप्ति होती है। इसी से यश, गौरव, कीर्ति प्राप्त होती है। स्वाध्याय को मनुष्य जीवन का तप कहा जाता है। प्राचीन ऋषि – मुनियों ने स्वाध्याय का महत्व समझा कर उसको दिनचर्या के अन्तर्गत रखा है। स्वाध्याय से सदाचार की प्रेरणा सदा मिलती रहती है। शास्त्रों का निरन्तर अभ्यास, तत्वों का सत्त अध्ययन और अबाध रूप से आत्म चिन्तन ही स्वाध्याय है।

ऐसे वेद, शास्त्र, उपनिषद, पुराण, रामायण आदि ग्रन्थ या ज्ञानीजनों के अनुभव से युक्त लेख, आदि जिनके द्वारा कर्तव्य का बोध होता हो, हित, अहित, विवेक ज्ञान तथा यर्थाथ का ज्ञान हो, ऐसे शास्त्रों का अध्ययन, पठन – पाठन स्वाध्याय कहलाता है। स्वाध्याय से शारीरिक व मानसिक विकारों का उपशमन होता है। अतः प्रतिदिन स्वाध्याय करना चाहिए।

3.3.21 भोजन –

मुख मार्ग द्वारा जो हम अन्न ग्रहण करते है उसे आहार कहते हैं। इस आहार के उपयोगी अंश से रस की उत्पत्ति होती है। रस अन्य धातुओं में परिणत होकर शारीरिक अंगों का पोषण करता है। शरीर को स्वस्थ रखता है। शरीर को शक्ति प्रदान करता है। शरीर को जीवित रखता है। समस्त प्राणियों के लिए उनका आहार उनका पोषण करता है। मनुष्य के लिए अमृत तुल्य कहा गया है और युक्तिपूर्वक इसका सेवन अमूत है, तथा अयुक्तिपूर्वक विष। अतः स्वस्थ रहने के लिए भोजन से संबधित ज्ञान का होना अतिआवश्यक है।

सुश्रुत संहिता में आहार का वर्णन इस प्रकार से किया गया है –

"आहारः प्रीणनः सद्यो बलकृत देहधारकः।
आयुस्तेजः समुत्साहस्मृत्योजोऽग्निविवर्धनः।।" (सु0 चि0 अ0 24)

अर्थात् आहार शरीर को पुष्ट करने वाला, बलकारक, देह को धारण करने वाला, आयु, तेज, उत्साह, स्मृति, ओज और अग्नि को बढ़ाने वाला होता है।

आहार के सम्बन्ध में मुख्यतः पाँच नियम अपनाये जाते हैं। ये पाँच नियम निम्न है –

6. **क्या खायें –** मनुष्य को स्वविवेक से हितकारी पदार्थो का ही सेवन करना चाहिए। जो खाने लायक हो उसे खाना चाहिए। अर्थात् शुद्ध, सात्विक जो शरीर मन बुद्धि और आत्मा के लिए हितकर हो, ऐसा आहार ग्रहण करना चाहिए।
7. **कितना खायें –** खाद्य पदार्थ उचित मात्रा में ही खाने चाहिए। चाहे वह कितने ही पौष्टिक एवं स्वास्थ्यवर्धक क्यों ना हो। यदि खाद्य पदार्थो का सेवन उचित मात्रा में नहीं किया गया तो हॉनि की सम्भावना रहती है। भोजन उतना ही खाना चाहिए जिससे शरीर का पोषण हो सके।
8. **कब खायें –** आयुर्वेद के अनुसार भोजन दो ही समय करना चाहिए। प्रथम भोजन 12 बजे से पूर्व कर लेना चाहिए तथा सायंकाल का भोजन 7 बजे तक कर लेना चाहिए। भोजन भूख लगने पर ही करना चाहिए।
9. **क्यों खाएं –** पुरूषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति का साधन स्थूल शरीर ही है। जैसा कि कहा गया है। **" शरीर माध्यम खलु धर्म साधनम्।।"** अतः भोजन का उद्देश्य आरोग्य की प्राप्ति है तथा आरोग्य ही चारों पुरूषार्थ के मूल में है। भोजन द्वारा शरीर को स्वस्थ रख कर अपने लक्ष्य को प्राप्त करें।

10. **कैसे खाएं –** भोजन को खूब चबा – चबा कर खाना चाहिए। जिससे जठराग्नि को श्रम न करना पड़े। जो भी भोजन मिले उसे ईश्वर को अर्पित कर प्रसाद स्वरूप ग्रहण करना चाहिए। प्रसन्न मन से भोजन ग्रहण करना चाहिए। भोजन करने के एक घण्टे बाद ही जल पीना चाहिए। जूठा भोजन ग्रहण नहीं करना चाहिए ना ही किसी को जूठा भोजन देना चाहिए। इस प्रकार इन नियमों को ध्यान में रखते हुए शुद्ध, सात्विक भाव रखकर प्रसन्न मन से भोजन करना चाहिए। जिससे कि उस भोजन से हमें सद्विचार, सद्भावनाएं उत्पन्न हो तथा हमारा शरीर निरोग हो।

अभ्यास प्रश्न –

1. **सत्य / असत्य बताइये –**
   क. दिनचर्या का प्रथम पालनीय नियम दन्तधावन है।
   ख. आत्मबोध की साधना प्रातः की जाती है।
   ग. स्वाध्याय ऋतुचर्या का अंग है।
   घ. वृद्ध और दुर्बल व्यक्तियों को यथाशक्ति व्यायाम करना चाहिए।
   ड़. तैल का नस्य श्रेष्ठ माना गया है।
2. **रिक्त स्थान भरिये –**
   क. प्रतिदिन .....अंजलि उषापान करना चाहिए।
   ख. गण्डूष धारण करने से मुख की .....होती है।
   ग. मुख व नेत्र प्रक्षालन से .....रोग नहीं होते है।
   घ. स्नेह मिश्रित औषधि या कल्क को शरीर में लगाने को ....या कहते है।
   ड़. शीतल जल से स्नान करने से जठराग्नि .....होती है।

3.4 सारांश –

प्रतिदिन किये जाने वाले सदाचरण का नाम दिनचर्या है। दिनचर्या के अन्तर्गत निम्न कर्म आते है। **ब्रह्म मुहुर्त में जागरण, आत्मबोध की साधना, पृथ्वी माँ को नमस्कार, उषापान, मलोत्सर्ग, दन्तधावन, जिह्वा निर्लेखन, गण्डूष धारण, मुख प्रक्षालन, अंजन, नस्य, धूम्रपान, व्यायाम एवं चंक्रमण, क्षौर कर्म, अभ्यंग, शरीर परिमार्जन, स्नान, वस्त्र धारण, सन्ध्योपासना, स्वाध्याय एवं भोजन।** इन सभी कर्मो को उचित समय पर व नियमित रूप से पालन करने पर शरीर स्वस्थ रहता है तथा दिनचर्या के अपालन से नानाविध रोग उत्पन्न होते है। अतः स्वस्थ व्यक्ति को अपना स्वास्थ्य उन्नत बनाए रखने के लिए दिनचर्या का पालन करना चाहिए।

3.5 शब्दावली –

प्रक्षालन	–	धोना
चंक्रमण	–	चहलकदमी
परिमार्जन	–	परिमार्जन
उद्धर्तन	–	औषधि मिश्रित स्नेह कल्क को शरीर पर लगाना
उद्घर्षण या उत्सादन	–	रूक्ष औषधीय चूर्णो को शरीर पर लगाना।
उर्ध्वजत्रुगत	–	ग्रीवा से ऊपर के भाग में स्थित
शिरोरोग	–	मस्तिष्क से संबधित रोग

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

1. **क. असत्य ख. सत्य ग. असत्य घ. असत्य ड़. सत्य**
2. **क. चार ख. शुद्धि ग. उर्ध्वजत्रुगत घ. उद्धर्तन या उबटन ड़. प्रदीप्त**

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 सिंह रामहर्ष, (2011) स्वस्थवृत्त विज्ञान। चौखम्भा प्रतिष्ठान दिल्ली।
2 शास्त्री अम्बिका दत्त, सुश्रुत संहिता। चौखम्भा प्रतिष्ठान दिल्ली।
3 गोरक्षनाथ , चरक संहिता। चौखम्भा प्रतिष्ठान दिल्ली।
4 गुप्ता अत्रिदेव, अष्टांग संग्रह। चौखम्भा प्रतिष्ठान दिल्ली।
5 गुप्ता अत्रिदेव, अष्टांग हृदय। चौखम्भा प्रतिष्ठान दिल्ली।
6 ब्रह्मवर्चस, (2010) आयुर्वेद का दर्शन क्रिया शरीर। श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट शान्तिकुंज हरिद्वार।

सहायक पाठ्य सामग्री –

1 बालकृष्ण आचार्य, (2007) आयुर्वेद सिद्धान्त रहस्य। दिव्य प्रकाशन हरिद्वार।
2 जैन राजकुमार, (2011) योग और आयुर्वेद । चौखम्भा ओरन्टालिया दिल्ली।
3 नौटियाल विनोद, (2016) योग और वैकल्पिक चिकित्सा। किताब महल इलाहाबाद।

3.8 निबंधात्मक प्रश्न –

प्रश्न 1. दिनचर्या का विस्तृत वर्णन कीजिए।

इकाई 4 : संध्याचर्या करणीय एवं अकरणीय कर्म

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य
4.3 संध्याचर्या का अर्थ
4.4 संध्याचर्या के करणीय कर्म
4.5 संध्याचर्या के अकरणीय कर्म
4.6 सारांश
4.7 पारिभाषिक शब्दावली
4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

आयुर्वेद शास्त्र में मनुष्य की सुखायु को बढाने हुए एवं दुखायु को घटाने हेतु दिनचर्या, संध्याचर्या एवं रात्रिचर्या को विशेष रुप से वर्णित किया गया। आयुर्वेद में स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य के परिरक्षण एवं रोग ग्रस्त व्यक्ति के रोग को दूर करने में दिनचर्या, संध्याचर्या एवं रात्रिचर्या को महत्वपूर्णता से वर्णित किया गया है किन्तु वर्तमान समय के भागदौड भरी स्पर्धात्मक जीवन शैली में शामिल होकर जैसे ही मानव ने दिनचर्या, संध्याचर्या एवं रात्रिचर्या को महत्वहीन माना, वैसे ही इसके नकारात्मक परिणाम रोगों के रुप में प्रकट हुए तथा विभिन्न प्रकार के रोगों ने समाज में अपनी जडे गहरी की। आधुनिक समाज में शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक रोगों के तेजी से बढने के पीछे दिनचर्या, संध्याचर्या एवं रात्रिचर्या का अपालन एक महत्वपूर्ण कारक रहा। साथ ही साथ आधुनिक समय में भी जिन मनुष्यों ने इस विषय की गंभीरता को समझकर अपने जीवन में दिनचर्या, संध्याचर्या एवं रात्रिचर्या का पालन किया, उन्होने उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त किया। योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा में दिनचर्या, संध्याचर्या एवं रात्रिचर्या पालन का विशेष महत्वपूर्ण स्थान है। सरल शब्दों में योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा में दिनचर्या, संध्याचर्या एवं रात्रिचर्या का पालन स्वास्थ्य का आधार माना गया है। इनका पालन करने से गंभीर एवं जीर्ण रोग का उपचार आसानी से किया जा सकता है।

प्रिय पाठकों, पूर्व इकाई में आपने दिनचर्या के विषय में जाना और ज्ञान प्राप्त किया कि दिनचर्या का हमारे स्वास्थ्य के साथ सीधा सम्बन्ध है। आपने जाना कि दिनचर्या का पालन करने से मनुष्य रोगों से मुक्त स्वस्थ जीवन व्यतीत करता है। दिनचर्या का ज्ञान प्राप्त होने पर अब आपके मन में संध्याचर्या के विषय में जानने की जिज्ञासा भी अवश्य ही उत्पन्न हई होगी। इसके साथ साथ आपके मन में यह प्रश्न भी अवश्य ही उत्पन्न हुआ होगी कि संध्याचर्या का क्या अर्थ होता है, संध्याकाल में कौन कौन से कर्म करने चाहिए एवं किन किन कर्मों को संध्याकाल में नही करने चाहिए, संध्याचर्या में करणीय कर्मों को करने से क्या लाभ होते हैं एवं अकरणीय कर्मों से क्या हानि होती है, संध्याचर्या का मानव के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पडता है। इसके अतिरिक्त संध्याचर्या का मानव जीवन में महत्व अथवा उपयोगिता क्या है। ऐसे प्रश्न जो सामान्य एवं स्वाभाविक रुप से आपके समक्ष अवश्य ही उपस्थित हुए होगें। प्रस्तुत इकाई में आप इन सभी प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करोंगें। इसके साथ साथ संध्याचर्या से सम्बन्धित अन्य महत्वपूर्ण तथ्यों से अवगत होगें।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- संध्याचर्या के अर्थ की विवेचना कर सकेंगे।
- संध्याचर्या का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेगें।
- संध्याचर्या को परिभाषित करने में सक्षम हो सकेंगे।
- संध्याचर्या के करणीय एवं अकरणीय कर्म का विस्तारपूर्वक वर्णन कर सकेंगे।
- संध्योपासना के महत्व को जान पाओगें।
- प्रस्तुत इकाई के अन्त में प्रश्नों के उत्तर दे सकेंगे।

4.3 संध्याचर्या का अर्थ

संध्याचर्या शब्द की उत्पत्ति दो शब्दों के मिलने से होती है। प्रथम शब्द संध्या एवं द्वितीय शब्द चर्या। संध्या शब्द का अर्थ बहुत विस्तृत एवं व्यापक है जिसकी अनेकों विद्धानों द्वारा भिन्न भिन्न दृष्टिकोणों से व्याख्या की गयी है। चर्या का अर्थ आचरण अथवा व्यवहार से होता है। इस प्रकार संध्या काल में किये जाने वाला ऐसा अनुकरणीय आचरण अथवा व्यवहार जिससे मनुष्य का स्वास्थ्य उन्नत अवस्था में रहता है, संध्याचर्या कहलाती है। अब इस विषय पर सविस्तार विचार करते हैं।

मूल रुप से संध्या शब्द की उत्पत्ति संधि से होती है। किन्ही दो तत्वों, विषयों अथवा पदार्थों के मिलने अथवा आपस में जुडने को संधि कहा जाता है। यहॉ पर दो कालों के मिलन के अर्थ में संधि अथवा संध्या को लिया गया है। इस प्रकार संध्या काल दिवस एवं रात्रि के मिलन का वह काल है जिसमें प्रकाश और अंधकार का मिलन होता है। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं विशेष काल होता है क्योकि इस काल के कुछ क्षणों में वातावरण में बाह्माण्डीय ऊर्जा का आदान प्रदान (Transformation of Energy) होता है जिसका सीधा प्रभाव मानव की शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक ऊर्जा पर भी पडता है। प्रकाश और अंधकार के मिलन की विशेष बेला में किए जाने वाले ऐसे अनुकरणीय आचरण अथवा व्यवहार जिसका मानव स्वास्थ पर उत्तम प्रभाव पडता है, **संध्याचर्या** कहलाती है। यद्यपि सामान्य रुप से संध्या से तात्पर्य सांयकाल से लिया जाता है किन्तु वास्तव में ऐसा नही है अपितु संध्याकाल संधि अथवा मिलन की वह बेला होती है जिसमें प्रकाश और अन्धकार समान मात्रा में उपस्थित होते हैं। एक दिन के चौबीस घंटों यह बेला दो बार – प्रातःकाल सूर्योदय पूर्व एवं सांयकाल सूर्यास्त उपरान्त उपस्थित होती है। इस प्रकार प्रातःकाल सूर्योदय पूर्व के कुछ क्षण एवं सांयकाल सूर्यास्त उपरान्त के कुछ क्षण संध्याकाल कहलाते है। इन दोनों कालों में किये जाने वाले करणीय कर्मों को **संध्याचर्या** कहा जाता है।

कुछ विद्वान "सं" का अर्थ सम से करते है। सम एक अनुकूल अवस्था है जिसमें शरीर, मन और आत्मा सकारात्मक अनुभूति करते हैं। "ध्या" को यहॉ पर ध्यान के अर्थ में वर्णित किया गया है। इस प्रकार संध्या वह काल अथवा अवस्था है जिसमें शरीर, मन और आत्मा सकारात्मक अनुभूति करते हैं। इस अवस्था में ध्यान करने को संध्या के अर्थ में लिया गया है। संध्या का यह सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टिकोण बहुत व्यवहारिक है क्योकि प्रायः सभी धर्मों में संध्या काल को ध्यान के साथ जोडा गया है और संध्या काल में ध्यान करने का उपदेश किया गया है। सामाजिक स्तर पर भी संध्याकाल में व्यक्तिगत एवं सामूहिक रुप में ध्यान करने की प्रथा प्राचीन काल से भारतीय समाज में चली आ रही है अर्थात संध्याकाल का ध्यान के सम्बन्ध बहुत प्राचीन एवं गहरा है। इस प्रकार सार संक्षेप में यह भी कहा जा सकता है कि संध्या काल में समस्त नकारात्मक वृत्तियों को त्यागकर एकाग्रतापूर्वक ध्यान करना संध्याचर्या कहलाती है।

प्रिय विधार्थियों, जैसा कि इकाई में स्पष्ट किया गया कि संध्याकाल ऊर्जा के आदान प्रदान का काल होता है जिसमें वातावरण की ब्राह्माण्डीय ऊर्जा का आदान प्रदान होता है। संध्याकाल ब्राह्माण्डीय ऊर्जा के साथ साथ शरीर में उपस्थित ऊर्जा के भी आदान प्रदान का विशेष काल होता है। यहॉ पर यह तथ्य बहुत महत्वपूर्ण होता है कि इस समय कुछ क्षणों तक ब्राह्माण्डीय ऊर्जा सम स्थिति में बनी रहती है। इस सम अवस्था में ब्राह्माण्डीय ऊर्जा को शरीर में आसानी से धारण किया जा सकता है इसीलिये सूर्योदय एवं सूर्यास्त का संध्याकाल अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। इस काल में ब्राह्माण्डीय ऊर्जा को किस प्रकार शरीर में धारण किया जाए तथा किस प्रकार शारीरिक एवं मानसिक ऊर्जा को विषम होने से बचाए, यह मनुष्य के लिए विचारणीय एवं चिन्तन का विषय है। इस विषय को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न शास्त्रों में इस काल में किए जाने वाले करणीय कर्मों एवं अकरणीय कर्मों पर प्रकाश डाला गया है। संध्याकाल में करणीय कर्मों को करने से मनुष्य शारीरिक एवं मानसिक ऊर्जा को ग्रहण करता है एवं शरीर में उपस्थित ऊर्जा को सम बनाता है, जबकि इस काल में अकरणीय कर्मों को करने से मनुष्य की शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक ऊर्जा क्षीण होकर असंतुलित हो जाती है। इस प्रकार संध्याचर्या को करणीय एवं अकरणीय कर्मों के अनुसार अच्छी प्रकार परिभाषित किया जा सकता है। सरल रुप में **"संध्याकाल में किए जाने वाला ऐसा अनुकूल आचरण अथवा करणीय कर्म जिसका मानव स्वास्थ पर उत्तम प्रभाव पडता है, संध्याचर्या कहलाती है"।**

संध्याचर्या के अर्थ को जानने के उपरान्त अब आपके मन में यह प्रश्न उपस्थित होना स्वाभाविक ही है कि संध्याकाल में ऐसे कौन कौन से कर्म करने चाहिए जिनसे स्वास्थ उन्नत अवस्था को प्राप्त रहता है अतः अब संध्याचर्या के करणीय कर्मों पर विचार करते हैं –

4.4 संध्याचर्या के करणीय कर्म

प्रिय विधार्थियों, जैसा कि आपने जाना कि संध्याकाल ऊर्जा के आदान प्रदान का काल है, इस काल में किए जाने वाला एकमात्र करणीय कर्म संध्योपासना है। संध्याकाल में संध्योपासना करने का स्पष्ट उल्लेख विभिन्न ग्रन्थों में स्पष्ट एवं अनिवार्य रुप में किया गया है। भारतीय वैदिक दर्शन में भी संध्याकाल में संध्योपासना को करणीय कर्म कहा गया है। अब आपके मन में संध्योपासना को जानने की जिज्ञासा भी अवश्य ही उत्पन्न हुई होगी। संध्याकाल में किए जाने वाली संध्योपासना का परिचय इस प्रकार हैं –

4.4.1 संध्योपासना :

संध्याकाल में किए जाने वाला सबसे प्रमुख एवं महत्वपूर्ण करणीय कर्म **संध्योपासना** है। संध्योपासना का अर्थ संध्या काल में उपासना करने से होता है। उपासना शब्द उप और आसन से मिलकर बनाता है। उप का अर्थ समीप अथवा निकट से होता है जबकि आसन का अर्थ बैठने से लिया जाता है। इस प्रकार संध्योपासना से तात्पर्य संध्या काल में ईश्वर के समीप बैठकर ध्यान करने से होता है। वैदिक वांग्मय में पॉच प्रकार के यज्ञों (ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ एवं बलिवैश्वदेवयज्ञ) को वर्णित किया गया है। इन पॉच प्रकार के यज्ञों में प्रथम स्थान ब्रह्मयज्ञ का ही होता है। ब्रह्मयज्ञ का अर्थ संध्योपासना से होता है। इस यज्ञ में संध्याकाल में ध्यानात्मक आसन में स्थित होकर

ब्रह्म अर्थात परमात्मा का ध्यान एवं चिन्तन मनन किया जाता है। देवयज्ञ घृत–सामग्री एवं अन्य सुगन्धित व पौष्टिक पदार्थों को मंत्रों के साथ अग्नि देव को अर्पित करने से होता है। अपने माता–पिता, घर के अन्य वृद्धजनों तथा गुरुओं की सेवा करना पितृयज्ञ कहलाता है। बिना किसी निश्चित तिथि घर में आए अतिथि की सेवा करना अतिथि यज्ञ है। गाय, कौए, कबूतर, चिडिया, कुत्ते अथवा अपने आश्रित मनुष्यों अथवा अन्य प्राणियों जैसे पशु पक्षियों व जीव जन्तुओं को अन्न देना अथवा उनकी सहायता करना बलिवैश्व देवयज्ञ कहलाता है। यह पॉच यज्ञ प्रत्येक मनुष्य को प्रतिदिन करने चाहिए, ऐसी वैदिक मान्यता है। इन पँवमहायज्ञों को करने से मनुष्य का शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास होता है और वह मनुष्य मुक्ति के मार्ग का पथिक बनता है। यहाँ पर अध्ययन का प्रमुख विषय संध्याचर्या के अन्तर्गत वर्णित संध्योपासना है अतः अब संध्योपासना की विधि पर विचार करते हैं –

(क) संध्योपासना की विधि : इसके लिए संध्याकाल में बाह्य रुप से स्नानादि द्वारा स्वच्छ होकर, साफ स्वच्छ वस्त्रों को धारण करने के उपरान्त साफ स्वच्छ प्रदूषण एवं शोरगुल रहित स्थान का चयन करते हुए प्रातःकाल सूर्योदय पूर्व रात्रि और दिन के मिलन के समय पूर्वाभिमुख होकर कमर एवं गर्दन को सीधा रखते हुए किसी भी ध्यानात्मक आसन में स्थित होकर बैठे। विधिपूर्वक आसन में बैठने के उपरान्त ऑखों को सहजतापूर्वक बंद करते हुए परमात्मा का ध्यान करें। इस अवस्था में शरीर को मूर्तिवत स्थिरता प्रदान करने के उपरान्त मन को काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं ईर्ष्या–द्वेष आदि वृत्तियों से रहित करते हुए, मन को स्थिरता प्रदान करें। बाह्य विचारों एवं भौतिक विषयों का त्याग करते हुए मन को अर्न्तमुखी बनाकर सर्मपण भाव के साथ सर्वशक्तिमान ईश्वर का ध्यान करें। अब शरीर एवं मन के स्थिर होने पर गायत्री मंत्र से संध्योपासना का प्रारम्भ करते हैं। संध्योपासना में विधिपूर्वक निम्न लिखित वैदिक मंत्रों का वाचन एवं मनन चिन्तन किया जाता है –

(1) गायत्री मंत्र : वैदिक संध्या का प्रारम्भ गायत्री मंत्र से होता है। इसके लिए सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन में स्थित होने के उपरान्त तीन प्राणायामों का अभ्यास करें। अब श्रृद्धापूर्वक गायत्री मंत्र का वाचन करते हुए सिर की शिखा में गॉठ लगाए।

(2) आचमन मंत्र : गायत्री मंत्र के उपरान्त आचमन मंत्र के वाचन के साथ शुद्ध जल के तीन आचमन करें।

(3) इन्द्रियस्पर्श मंत्र : तीन आचमन के उपरान्त इन्द्रिय स्पर्श मंत्र का वाचन करते हुए इन्द्रियों के बलवान एवं यशस्वी की बनने की प्रार्थना करें।

(4) मार्जन मंत्र : मार्जन मंत्र से सिर, नेत्र, कण्ठ, हृदय, नाभि, पैर आदि अंगों के पवित्र एवं बलवान बनने की कामना करें।

(5) प्राणायाम मंत्र : प्राणायाम मंत्र का वाचन करते हुए पुनः तीन प्राणायाम करें।

(6) अघमर्षण मंत्र : इसके अन्तर्गत तीन मंत्रों का वर्णन आता है। इन मंत्रों में ईश्वर के महान स्वरुप का वर्णन किया गया हैं। ईश्वर की महानता का ध्यान करते हुए उसके प्रति श्रृद्धा एवं विश्वास उत्पन्न करते हुए इन मंत्रों का वाचन करें।

(7) आचमन मंत्र : अब पुनः आचमन मंत्र के वाचन के साथ शुद्ध जल के तीन आचमन करें।

(8) मनसा परिक्रमा मंत्र : इसके अन्तर्गत कुल छह मंत्रों का वर्णन आता है। इन मंत्रों में ईश्वर को चारों दिशाओं के साथ साथ ऊपर एवं नीचे उपस्थित होना कहा गया है। इन मंत्रों में सर्वत्र व्याप्त ईश्वर को बार बार नमन करते हुए प्रार्थना की गयी है कि आपके आधिपत्य, रक्षा और जीवन प्रदान के लिए हे प्रभों, आपको बारम्बार नमस्कार है। जो हमसे द्वेष करता है अथवा जिसे हम द्वेष करते हैं, उसे हम आपके न्यायरुपी सामर्थ्य पर छोड देते हैं।

(9) उपस्थान मंत्र : उपस्थान मंत्रों में चार मंत्रों का वर्णन आता है। इन मंत्रों में ईश्वर के समीप जाने अथवा ईश्वर को प्राप्त करने की प्रार्थना करते हुए कहा गया है कि हे प्रभों, आप अनाादि काल से विद्वानों एवं संसार के हितार्थ शुद्ध वर्तमान है। हे प्रभो, हम आपको सौ वर्ष देखें, आपकी आज्ञा में सौ वर्ष जीवें, आपके नाम का सौ वर्ष व्याख्यान करें, सौ वर्ष की आयु भर पराधीन न हों और योगाभ्यास से सौ वर्ष से भी अधिक आयु हो तो इसी प्रकार विचरें अर्थात इसी प्रकार आचरण और व्यवहार करें।

(10) गायत्री मंत्र : अब पुनः गायत्री मंत्र का उच्चारण करें।

(11) समर्पण मंत्र : समर्पण मंत्र में दोनों हाथों को जोडकर प्रार्थना श्रृद्धाभाव से प्रार्थना करें कि हे ईश्वर दयानिधे, आपकी कृपा से जप और उपासना आदि कर्मों को करके हम धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करें।

(12) नमस्कार मंत्र : संध्योपासना के अन्तिम मंत्र में सर्वोत्तम सुखों को प्रदान करने वाले, कल्याणकारी, मोक्षस्वरुप, सुख एवं शान्ति प्रदान करने वाले प्रभु को अत्यन्त नम्रता, परम श्रृद्धा एवं भक्ति भाव से बारम्बार नमस्कार करें।

इस प्रकार वैदिक संध्या में कुल 22 मंत्रों का वाचन एवं इनके अर्थ का चिन्तन किया जाता है। इन मंत्रों का वाचन करने के उपरान्त स्वयं को ईश्वर को समर्पित करते हुए मन में शुभ संकल्पों को धारण करते हुए सर्वत्र सुख एवं शान्ति की मंगल कामना करें। तत्पश्चात शुभ एवं पवित्र संकल्प के साथ संध्योपासना में वाचन किए गये मंत्रों के अर्थ एवं भावों का चिन्तन करते हुए सर्वशक्तिमान परम पिता परमात्मा का ध्यान करें। इस अवस्था में सर्मपण भाव के साथ स्वयं को ईश्वर के अत्यन्त निकट अथवा सम्मुख अनुभव करें। सर्वत्र विद्यमान सर्वशक्तिमान परमेश्वर मेरी प्रत्येक क्रिया एवं भाव के देख–सुन एवं जान रहा है, इस भाव का चिन्तन करते हुए ईश्वर का चिन्तन करें। जिस प्रकार एक अबोध बालक अपनी माता की गोद में बैठकर स्वयं को पूर्ण सुरक्षित एवं आनंदित अनुभव करता है ठीक उसी प्रकार स्वयं को ईश्वर की अमृतमयी गोद में अनुभव करें। संध्योपासना में स्वयं को ईश्वर के साथ एकाकार करते हुए आत्मसाक्षात्कार करें। अंत में पूर्ण सर्मपण भाव के साथ करते हुए शान्तिपाठ करें एवं स्वयं को ईश्वर की श्रेष्ठ कृति मानकर ईश्वरीय आनन्द को अनुभव करें। इसी प्रकार सांयकाल में भी उपरोक्त विधिपूर्वक सन्ध्योपासना करनी चाहिए किन्तु सांयकाल में पश्चिमोभिमुख अर्थात पश्चिम दिशा की ओर मुख करते हुए संध्या करने का विधान वैदिक ग्रन्थों में प्राप्त होता है। इस प्रकार प्रातःकाल पूर्व दिशा की ओर मुख करके तथा सांयकाल पश्चिम दिशा की ओर मुख करके संध्या करनी चाहिए।

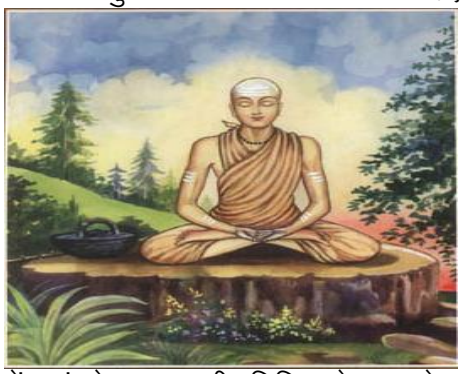

प्रिय जिज्ञासु पाठकों, संध्योपासना की विधि को जानने के उपरान्त आपके मन में यह प्रश्न उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है कि संध्योपासना को संध्याचर्या का प्रमुख अंग क्यों माना गया है अथवा संध्योपासनासे क्या लाभ होते हैं। मानव जीवन में संध्योपासनाका क्या महत्व है एवं संध्योपासना क्यों आवश्यक है। अतः अब इन प्रश्नों पर विचार करते हैं –

(ख) संध्योपासना का लाभ : संध्योपासना प्रत्येक मनुष्य के जीवन अनिवार्य दैनिक पालनीय अंग है। संध्योपासना की अनिवार्यता को समझाते हुए महर्षि मनु लिखते हैं –

न त्रिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
सशूद्रवद्बहिष्कार्यःसर्वस्माद्द्विजकर्मण।। (महर्षि मनु)

अर्थात जो प्रातःकाल और सांयकाल की संध्या नही करें, वह सम्पूर्ण द्विज कर्मों से बहिष्कार करने योग्य है। इसके साथ साथ मनु महाराज पुनः लिखते हैं –

अद्भिर्गात्राणि शुद्धयन्ति, मनः सत्येन शुद्धयति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्धयति।। (महर्षि मनु)

अर्थात जल से शरीर, सत्य से मन, विद्या तथा तप से आत्मा तथा ज्ञान से बुद्धि शुद्ध होती है।

वैज्ञानिक स्तर पर अध्ययन भी संध्योपासना के महत्व को स्पष्ट करता है। संध्योपासना मानव के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक तीनों ही स्तर पर लाभकारी प्रभाव पडता है। वैज्ञानिक स्तर पर आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के साथ जोडकर संध्योपासना के लाभों को इस प्रकार समझा जा सकता है –

(1) नियमित रुप से कमर गर्दन सीधा करते हुए आसन में बैठने से शरीर की अस्थियों विशेष रुप से रीढ की कशेरुकाओं पर अच्छा प्रभाव पडता है। इससे रीढ झुकने के स्थान पर सदैव सीधी बनी रहती है एवं रीढ संबधी रोग नही होते हैं। इसके साथ साथ रीढ सीधी रहने से उम्र बढने पर भी बुढापे के लक्षण नही आते हैं। संध्योपासना करने से शारीरिक नियंत्रण प्राप्त होता है अर्थात व्यक्ति का अपने शरीर पर नियंत्रण रहता है।

(2) शरीर में हार्मोन्स की मात्रा सम बनती है इसके साथ साथ सम भावों में स्थित होने से विभिन्न पाचक रसों अर्थात एन्जाइम्स का स्रावण भी नियमित बनता है। हार्मोन्स एवं एन्जाइम्स के स्राव सुव्यवस्थित होने के परिणामस्वरुप शरीर की चयापचय दर सन्तुलित होती है एवं शरीर रोगों से मुक्त होकर ऊर्जावान बनता है।

(3) मस्तिष्क पर अनुकूल प्रभाव पडता है। ध्यान करने से एकाग्रता बढती है, स्मरण शक्ति का विकास होता है एवं मस्तिष्क पर सकारात्मक प्रभाव पडता है जिसके परिणामस्वरुप विभिन्न प्रकार के मस्तिष्क सम्बधित रोग स्वतः ही दूर होते हैं।

(4) चूंकि इस अवस्था में मनुष्य सकारात्मक अनुभूति करता हुआ स्वयं को ईश्वर के अत्यन्त निकट एवं सुरक्षित अनुभव करता है जिसके परिणामस्वरुप उसके शरीर के प्रतिरक्षा तंत्र को बल मिलता है। इसके प्रभाव से शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता एवं जीवनी शक्ति प्रबल बनती है।

(5) संध्योपासना का शारीरिक स्तर के साथ साथ मानसिक स्तर पर भी सकारात्क प्रभाव पडता है। संध्योपासना से मन को सकारात्मक ऊर्जा प्राप्त होती है एवं मन से नकारात्मक वृत्तियॉ जैसे क्रोध, ईष्या–द्वेष दूर होती है। विशेष रुप से क्रोध पर विजय प्राप्त कर लेता है। मन में सकारात्मक भावों की प्रबलता होने के कारण अभ्यासी मनुष्य का मानसिक स्वास्थ्य उन्नत स्थिति को प्राप्त होता है।

(6) नियमित संध्योपासना करने वाले व्यक्ति की मानसिक ऊर्जा संन्तुलित रहती है जिससे उस व्यक्ति को मानसिक तनाव, निराशा, अवसाद, कुण्ठा, बैचेनी एवं घबराहट आदि मानसिक रोगों का सामना नही करना पडता अथवा उसका जीवन मनोविकारों से मुक्त रहता है।

(7) वर्तमान समय में तेजी से बढ रहे मनोशारिरिक रोगों (Psychosomatic Disease) की श्रेष्ठ चिकित्सा संध्योपासना है। नियमित रुप से संध्योपासना करने से मन एवं शरीर दोनों स्वस्थ बनते हैं, शारीरिक एवं मानसिक ऊर्जा का सन्तुलन अच्छा बनता है एवं अभ्यासी साधक पुरुष मनोशारीरिक रोगों से मुक्त रहता है।

(8) संध्योपासना करने से मनुष्य के अन्दर मानवीय गुण जैसे दया, प्रेम, करुणा, सहानुभूति आदि का तेजी से विकास होता है। इसके परिणामस्वरुप उसका समाज के अन्य मनुष्य के साथ आपसी तालमेल एवं सामंजस्य बढता है एवं उसका सामाजिक स्वास्थ्य अच्छा बनता है।

(9) आध्यात्मिक स्तर पर आत्मबल की प्राप्ति होती है। संध्योपासना करने वाला मनुष्य स्वयं को ईश्वर के अत्यन्त निकट अनुभव करता है। वह जीवन के समस्त सुख दुख, लाभ हानि एवं जय पराजय को सम भाव से ईश्वरीय प्रसाद मानकर ग्रहण करता है एवं ईश्वरीय आनन्द में मग्न होकर शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत करता है।

(10) संध्योपासना करने वाले मनुष्य के चारों ओर एक सकारात्मक ऐरा (धनात्मक ऊर्जा का घेरा) बन जाता है जिससे उसके मुख मण्डल की आभा एवं तेज प्रखरता को प्राप्त होते हैं। ऐसे संध्याचर्या का पालन करने वाले मनुष्य समाज के लिए एक आर्दश रुप में होते है।

प्रिय विधार्थियों, संध्याचर्या में वर्णित संध्योपासना ईश्वर प्राप्ति का एक उत्तम साधन है जिसके अभ्यास से मनुष्य विभिन्न प्रकार के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक रोगों से मुक्त रहता है। जिस प्रकार शरीर को स्वस्थ एवं ऊर्जावान बनाए रखने के लिए पौष्टिक भोजन की आवश्यक्ता होती है ठीक इसी मानसिक शुद्वि, आत्मा एवं अन्तःकरण को शुद्ध, पवित्र एवं ऊर्जावान बनाने हेतु संध्योपासना आवश्यक है। संध्योपासना के महत्व को जानकर प्राचीन काल से इसका अभ्यास संध्याचर्या के अनिवार्य अंग के रुप में पारम्परिक रुप से भारतीय समाज में चला आ रहा है। इस प्रकार यह तथ्य स्पष्ट होता है कि संध्याचर्या में संध्योपासना करनी चाहिए। अब इस विषय का ज्ञान होना भी अनिवार्य है कि संध्याचर्या में किन किन कार्यों को नही करना चाहिए अर्थात संध्याचर्या के अकरणीय कर्म कौन कौन से है ? अतः अब संध्याचर्या के अकरणीय कार्मे पर विचार करते हैं –

4.5 संध्याचर्या के अकरणीय कर्म

प्रिय विधार्थियों, आयुर्वेद शास्त्र में संध्याकाल को एक अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं विशिष्ट काल मानते हुए इस काल के करणीय एवं अकरणीय कर्मों पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। आयुर्वेद के ग्रन्थों में स्पष्ट किया गया कि जिस प्रकार इस काल में करणीय कर्म तुरन्त लाभकारी फल प्रदान करते है ठीक उसी प्रकार इस काल में अकरणीय कर्मों को करने से हानिकारक दुष्प्रभाव भी शीघ्र प्राप्त होते हैं। संध्याचर्या के अकरणीय कर्मों पर प्रकाश डालते हुए आचार्य भाव मिश्र कहते हैं –

एतानि पचंकर्माणि संध्यायां वर्जयेद्बुधः।
आहारं मैथुनं निन्द्रा सम्पाठं गतिमध्वनि।।
भोजनाज्जायते व्याधिर्मैथुनाथत् गर्भवैकृतिः।
निन्द्रया निस्वता पाठादायुर्हानिर्गगतेर्भयम्।।

(भाव प्रकाश)

अर्थात संध्याकाल में भोजन, मैथुन, निन्द्रा, पढना एवं मार्ग गमन यह पॉच कर्म नही करने चाहिए। इन निषिध कर्मों को करने से इनके निम्न दुष्परिणाम प्राप्त होते हैं –

(क) संध्याकाल में भोजन :

प्रिय विधार्थियों, भोजन हमारे शरीर एवं मन दोनों के लिए अत्यन्त अनिवार्य एवं महत्वपूर्ण तत्व है। भोजन मनुष्य की शारीरिक एवं मानसिक ऊर्जा का आधार है इसीलिए विधिपूर्वक एवं नियमपूर्वक भोजन ग्रहण करने से शरीर एवं मन ऊर्जावान बने रहते है जबकि विधिहीन एवं अनुशासनहीनतापूर्वक भोजन ग्रहण करने से शरीरिक एवं मानसिक ऊर्जा क्षीण पड जाती है एवं मनुष्य अनेक प्रकार के रोगों से ग्रस्त हो जाता है। भोजन ग्रहण करने में काल का निर्धारण अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। गलत काल अथवा कुसमय भोजन ग्रहण करने से उस भोजन का पाचन भलि भांति नही हो

पाता जिससे शरीर एवं मन को पर्याप्त ऊर्जा प्राप्त नही हो पाती एवं रोगों की उत्पत्ति होती है।

संध्याकाल के दोनों समयों अर्थात प्रातःकाल एवं सायंकाल में भोजन ग्रहण करना संध्याचर्या का प्रथम अकरणीय कर्म है जिसका वर्णन संध्याचर्या के अन्तर्गत किया जाता है। संध्याकाल में भोजन के निषेध को आप अच्छी प्रकार समझा सकते हो, चूंकि आपने इकाई के पूर्व में अध्ययन किया कि यह काल ऊर्जा के आदान–प्रदान का काल होता है तथा इस काल में उदर प्रदेश में स्थित अन्न को पचाने वाली जठराग्नि विषम अवस्था में रहती है। जठराग्नि के विषम अवस्था में रहने के कारण ग्रहण किए गये अन्न का पाचन, अवशोषण एवं उत्सर्जन अच्छी प्रकार नही हो पाता है तथा अनेक प्रकार के पाचन संबधी तथा अन्य रोगों की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार संध्याचर्या में स्पष्ट किया गया कि संध्याकाल में भोजन ग्रहण नही करना चाहिए। इसके विपरित आचरण अर्थात इस काल में भोजन ग्रहण करने से उस भोजन का पाचन भलि भंति नही होता है एवं अन्नज रोग उत्पन्न होते हैं।

(ख) संध्या काल में मैथुन :

संध्याकाल में मैथुन क्रिया करना संध्याचर्या का दूसरा अकरणीय कर्म है जिसका हानिकारक दुष्प्रभाव मनुष्य के शरीर एवं मन पर पडता है। मैथुन क्रिया का मूल उद्देश्य गर्भ की उत्पत्ति करना होता है किन्तु ऐसे काल में जब शारिरिक एवं मानसिक ऊर्जा का आदान–प्रदान हो रहा होता है, मैथुन क्रिया करने से विकृत गर्भ के उत्पन्न होने की संभावना अधिक होती है। इसके अतिरिक्त संध्याकाल में मैथुन करने से शारीरिक एवं मानसिक ऊर्जा असन्तुलित हो जाती है। इस प्रकार स्पष्ट किया गया कि संध्याकाल में मैथुन क्रिया निषिध कर्म है जिसे करने से गर्भ भी विकारयुक्त उत्पन्न होता है।

(ग) संध्या काल में निन्द्रा :

संध्या के दोनों कालों में निन्द्रा को पूर्ण रुप से निषेध कहा गया है। जिस प्रकार इस काल में बाह्य वातावरण में ऊर्जा का आदान प्रदान होता है, ठीक उसी प्रकार इस काल में शरीर में अन्दर भी ऊर्जा का आदान प्रदान होता है और इस काल में सोने से शरीर में ऊर्जा का सन्तुलन बिगड जाता है जिसके परिणाम स्वरुप शरीर दीन हीन, कमजोर एवं रोगों से ग्रस्त हो जाता है। इसके साथ साथ संध्याकाल में सोने से मानसिक स्तर पर भी नकारात्मक प्रभाव पडता है। संध्याकाल में सोने से मानसिक ऊर्जा असन्तुलित हो जाती है एवं मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार संध्याकाल में सोने वाला व्यक्ति शीघ्र ही शारीरिक एवं मानसिक रोगों ये ग्रस्त हो जाता है। इस संदर्भ में देववाणी में सूक्ति दी गयी –

कुचैलिनं दन्तमलोपधारिणं बह्वाशिनं निष्ठुरभाषिणं च।
सूर्योदये चास्तमिते शयानं विमुञ्चति श्रीर्यदि चक्रपाणिः।।
(देववाणी)

अर्थात जिनके शरीर और वस्त्र मैले रहते हैं, दॉतों पर मैल जमा रहता है, बहुत अधिक भोजन करते हैं, सदा कठोर वचन बोलते हैं तथा जो सूर्य के उदय और अस्त के समय अर्थात संध्याकाल में सोते हैं, वे महादरिद्र होते हैं। यहां तक कि चाहे चक्रपाणि अर्थात लक्ष्मीपति विष्णु ही क्यों ना हो, उनको भी लक्ष्मी छोड देती है।

इस प्रकार संक्षेप में स्पष्ट किया गया कि संध्याकाल में सोना एक अकरणीय कर्म हैं जिसे करने से शारीरिक एवं मानसिक ऊर्जा का ह्रास होता है एवं इसके परिणामस्वरुप द्ररिद्रता उत्पन्न होती है।

(घ) संध्या काल में पढना :

संध्याकाल में पठन–पाठन क्रिया को निषेध कहा गया है। इस बिदुं के पीछे भी वैज्ञानिक कारण होता है क्योंकि संध्या काल में प्रकाश की मात्रा स्थिर नही होती है बल्कि इसके विपरित कम से अधिक अथवा अधिक से कम होती है। चूंकि पढने की

क्रिया में ऑखों को स्थिर प्रकाश की आवश्यक्ता होती है जो संध्या काल में नही होता है इसीलिए संध्या काल में पढने को वर्जित माना गया है। इस काल में पढने से ऑखों की ऊर्जा क्षीण पडती है एवं नेत्र दोष उत्पन्न होते हैं।

(ड) संध्याकाल में मार्ग गमन करना :

संध्याकाल में मार्ग गमन को निषेध कहा गया है। यहॉ पर मार्ग गमन से तात्पर्य पथ यात्रा करने अर्थात पैदल चलने से है। यह तथ्य स्पष्ट है कि पैदल यात्रा करने में शरीर को अत्यधिक ऊर्जा की आवश्यक्ता पडती है। संध्या काल चूंकि शरीर में ऊर्जा के आदान प्रदान का काल है अतः इस काल में शरीर के अन्दर ऊर्जा प्रवाह अस्थिर अवस्था में रहता है अतः इस अवस्था में यात्रा करने से शरीर में ऊर्जा के असंन्तुलन की स्थिति उत्पन्न होने की संभावना रहती है। इस कारण संध्याकाल में मार्ग गमन को निषेध कहा गया है। मार्ग गमन पर्याप्त प्रकाश काल में ही करना चाहिए चूंकि सांय के समय संध्याकाल के उपरान्त वातावरण में प्रकाश की मात्रा कम होती चली जाती है अतः संध्याकाल को मार्ग गमन हेतु निषेध कहा गया है।

प्रिय विधार्थियों, इस प्रकार संध्याकाल में उपरोक्त पॉच कर्मो को अकरणीय कर्मों की श्रेणी में रखते हुए कहा गया है –

एतानि पंच कर्माणि संध्याया वर्जयेत द्रवुधः।
आहारं मैथुनं निन्द्रा सम्पाठं गतिमध्वनि।

अर्थात संध्याकाल में भोजन, मैथुन, निन्द्रा, पढना एवं मार्ग गमन यह पॉच कर्म नही करने चाहिए।

अभ्यास हेतु प्रश्न –

1– **सत्य / असत्य**

(क) संध्याकाल में एक मात्र अकरणीय कर्म संध्योपासना है।

(ख) संध्योपासना सदैव पश्चिमोभिमुख अर्थात पश्चिम दिशा की ओर मुख करते हुए करने का विधान वैदिक ग्रन्थों में प्राप्त होता है।

(ग) संध्या काल में पढने से ऑखों की रोशनी घटती है।

(घ) संध्योपासना करने वाले मनुष्य के चारों ओर एक नकारात्मक ऐरा बन जाता है।

(ड) संध्याचर्या में संध्या के दोनों कालों में निन्द्रा को पूर्ण रुप से निषेध कहा गया है।

2– रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

(क) ––––– काल के कुछ क्षणों में वातावरण में बाह्माण्डीय ऊर्जा का आदान प्रदान (Transformation of Energy) होता है।

(ख) मूल रुप से संध्या शब्द को ––––– के अर्थ में वर्णित किया जाता है।

(ग) संध्याकाल के दोनों समयों अर्थात प्रातःकाल एवं सायंकाल में भोजन ग्रहण करना संध्याचर्या का प्रथम ––––––––– कर्म है

(घ) संध्याकाल में मैथुन क्रिया करने से ––––– के उत्पन्न होने की संभावना अधिक होती है।

(ड) मनोशारिरिक रोगों (Psychosomatic Disease) की श्रेष्ठ चिकित्सा ––––––– है।

3– **एक शब्द में उत्तर दीजिए –**

(क) संध्याचर्या का एकमात्र करणीय कर्म क्या है ?

(ख) आचार्य भाव मिश्र संध्याचर्या के कितने अकरणीय कर्मों पर प्रकाश डालते हैं ?

(ग) संध्याचर्या का प्रथम अकरणीय कर्म क्या है ?

(घ) वैदिक वांग्मय में कितने प्रकार के यज्ञों को वर्णित किया गया है।

(ड) संध्याकाल में सोने से क्या आती है ?

4–बहुविकल्पीय प्रश्न –

(क) संध्याकाल से तात्पर्य है –

(a) सांय सूर्यास्त उपरान्त काल से (b) प्रातः सूर्योदय पूर्व काल से

(c) प्रातः सूर्योदय उपरान्त काल से (d) a तथा b दोनों।

(ख) उपासना शब्द में उप से क्या तात्पर्य है –

(a) ऊपर (b) नीचे

(c) निकट (d) दूर ।

(ग) सन्ध्योपासना का प्रारम्भ किस मंत्र से किया जाता है –

(a) गायत्री मंत्र (b) महामृत्युञ्जय मंत्र

(c) नमस्कार मंत्र (d) शान्ति पाठ ।

(घ) घृत–सामग्री एवं अन्य सुगन्धित व पौष्टिक पदार्थों को मंत्रों के साथ अग्नि देव को अर्पित करना क्या कहलाता है –

(a) ब्रह्मयज्ञ (b) देवयज्ञ

(c) अतिथियज्ञ (d) पितृयज्ञ ।

(ङ) संध्याकाल में भोजन करने से कौन से रोग उत्पन्न होते हैं –

(a) वातज रोग (b) अन्नज रोग

(c) पित्तज रोग (d) कफज रोग।

4.6 सारांश–

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत इकाई का प्रारम्भ संध्याचर्या के अर्थ की व्याख्या साथ किया गया है। इकाई के प्रारम्भ में ही स्पष्ट किया गया कि संध्याचर्या प्रकाश और अंधकार के मिलन की विशेष बेला में किए जाने वाले ऐसे अनुकरणीय आचरण अथवा व्यवहार है जिसका मानव स्वास्थ पर उत्तम प्रभाव पडता है, अथवा जिनके करने से मनुष्य शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक रुप से पूर्ण स्वस्थ बना रहता है। संध्या काल में वातावरणीय ब्रह्माण्डीय ऊर्जा का आदान प्रदान होता है इसी प्रकार इस समय मनुष्य के शरीर में भी ऊर्जा का परिर्वतन होता है अतः यह बहुत महत्वपूर्ण काल होता है जिसमें करणीय और अकरणीय कर्म बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। इकाई में आगे विषय का विस्तार करते हुए संध्याकाल के करणीय कर्म पर प्रकाश डाला गया है। इकाई में स्पष्ट किया गया है कि संध्याकाल में एक मात्र करणीय कर्म संध्योपासना है। संध्या की पवित्र बेला में 22 वैदिक मंत्रों के वाचन के साथ ईश्वर को स्मरण, मनन एवं चिन्तन करना संध्योपासना कहलाता है।

इकाई में समझाया गया है कि संध्योपासना एक ओर जहॉ ईश्वर को प्राप्त करने का सरल एवं प्रमुख साधन है तो वहीं दूसरी ओर संध्योपासना से मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य पर भी अनुकूल एवं सकारात्मक प्रभाव पडता है। इकाई में आगे संध्याचर्या के पॉच अकरणीय कर्मों पर प्रकाश डाला गया है। यहॉ पर आयुर्वेद शास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य आचार्य भाव मिश्र के अनुसार संध्याकाल में भोजन, मैथुन, निन्द्रा, पढना एवं मार्ग गमन यह पॉच कर्म नही करने चाहिए अर्थात ये पॉच कर्म संध्याचर्या के अकरणीय कर्म है। इकाई के अंत में इन पॉच अकरणीय कर्मों का सविस्तार वर्णन करते हुए इकाई को पूर्ण किया गया है।

4.7 पारिभाषिक शब्दावली–

परिरक्षण	रक्षा करना, बनाए रखना
बेला	समय, काल
वाग्मय	साहित्य संग्रह
दरिद्रता	अभावग्रस्त अवस्था
ह्रास	क्षय होना, घटना
श्रेष्ठ कृति	उत्तम रचना
मनोशारीरिक रोग	मन से उत्पन्न होने के उपरान्त शरीर पर प्रभाव देने वाले जैसे ब्लड प्रेशर, डायाबिटीज, मानसिक तनाव, अनिन्द्रा आदि।

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क.	असत्य	क. संध्या	क. पित्त	क.	d
ख.	असत्य	ख. त्वचा	ख. डायालिसिस	ख.	c
ग.	सत्य	ग. अकरणीय	ग.भोजन ग्रहण करना	ग.	a
घ.	असत्य	घ. विकृत गर्भ	घ.दरिद्रता	घ.	b
ड.	सत्य	ड. संध्योपासना	ड.पेन्क्रियाज	ड.	b

4.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रो0 रामहर्ष सिंह – स्वस्थवृत्त विज्ञान – चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली। (पुनःमुद्रित संस्करण 2014)
2. कल्याण आरोग्य अंक (जनवरी एवं फरवरी 2001 ई0) – गीता प्रेस, गोरखपुर।
3. आचार्य बालकृष्ण – आयुर्वेद सिद्धान्त रहस्य, दिव्य प्रकाशन, दिव्य योग मन्दिर ट्रस्ट, हरिद्वार। (संस्करण फरवरी 2007)।
4. ब्रह्मवर्चस – आयुर्वेद का दर्शन, क्रिया शारीर एवं स्वस्थ वृत्त, श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट, शांतिकुँज, हरिद्वार। (छटा संस्करण 2010)
5. आचार्य राजवीर शास्त्री – वैदिक सन्ध्या हवन पद्धति – आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली। (संस्करण अक्टूबर 1999)

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न–

1.संध्याचर्या के अर्थ को समझाते हुए संध्याचर्या का सविस्तार व्याख्या किजिए।
2.संध्याचर्या के करणीय एवं अकरणीय कर्मों को सविस्तार लिखिए।
3.संध्योपासना की विधि एवं लाभ पर प्रकाश डालिए।
4.संध्याचर्या पर एक निबन्ध लिखिए।

इकाई 5 : रात्रिचर्या का विस्तृत वर्णन

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य
5.3 रात्रिचर्या का अर्थ
5.4 रात्रिचर्या के करणीय कर्म
5.4.1 रात्रिकालीन भोजन
5.4.2 रात्रिकालीन निन्द्रा
5.4.3 रात्रिकाल में ब्रह्मचर्यपालन
5.5 रात्रिचर्या के अकरणीय कर्म
5.6 सारांश
5.7 पारिभाषिक शब्दावली
5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

मानव का प्रकृति के कालचक्र के साथ बहुत गहरा सम्बन्ध है। प्रकृति के कालचक्र के अनुरुप मानव शरीर में ऊर्जा का स्तर घटता एवं बढता रहता है। मानव के द्वारा प्रकृति के कालचक्र के अनुरुप व्यवहार करने से मनुष्य स्वस्थ बना रहता है जबकि प्रकृति के कालचक्र के विपरित अथवा प्रतिकूल व्यवहार करने से मनुष्य की शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक ऊर्जा क्षीण हो जाती है एवं मनुष्य नाना प्रकार के शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक रोगों से ग्रस्त हो जाता है। प्रकृति के कालचक्र के अनुरुप व्यवहार करने में प्रमुख रुप से दिनचर्या, संध्याचर्या, रात्रिचर्या एवं ऋतुचर्या के पालन करने का वर्णन आता है। पूर्व की इकाई में आपने दिनचर्या एवं संध्याचर्या के विषय में ज्ञान प्राप्त किया एवं इनके महत्व को जाना। दिनचर्या एवं संध्याचर्या के विषय में जानने के उपरान्त आपके मन में रात्रिचर्या के विषय में जानने की जिज्ञासा भी अवश्य ही उत्पन्न हुई होगी। जिस प्रकार दिनचर्या एवं संध्याचर्या के करणीय एवं अकरणीय कर्म मानव स्वास्थ्य को उन्नत बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका वहन करते हैं, उसी प्रकार रात्रिचर्या का भी मानव के स्वास्थ्य पर सीधा प्रभाव पडता है। प्रस्तुत इकाई में रात्रिचर्या के करणीय एवं अकरणीय कर्मों का शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है तथा मानव जीवन में रात्रिचर्या के महत्व को विभिन्न दृष्टिकोणों से स्पष्ट किया गया है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- रात्रिचर्या के अर्थ की विवेचना कर सकेंगे।
- रात्रिचर्या का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेगें।
- रात्रिचर्या के करणीय एवं अकरणीय कर्म का विस्तारपूर्वक वर्णन कर सकेंगे।
- रात्रिचर्यापालन का मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव को समझाने में सक्ष्म हो पाओंगे।
- रात्रिचर्यापालन के महत्व को जान पाओगें।
- प्रस्तुत इकाई के अन्त में दिए गये प्रश्नों के उत्तर दे सकेंगे।

5.3 रात्रिचर्या का अर्थ

आयुर्वेद शास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य महर्षि चरक आहार, निन्द्रा एवं ब्रह्मचर्य को मानव स्वास्थ्य के उपस्तम्भ कहते है। इन उपस्तम्भों पर मनुष्य का स्वास्थ्य पूर्ण रुप से आधारित होता है। इनका पालन करने से मनुष्य उन्नत स्वास्थ्य को प्राप्त होता है, जबकि इनका अपालन करने से मनुष्य का स्वास्थ्य निम्न स्तर को प्राप्त होता है एवं

उसे नाना प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक रोगों का सामना करना पडता है। मानव स्वास्थ्य के इन तीन उपस्तम्भों – आहार, निन्दा एवं ब्रह्मचर्य का रात्रिकाल में विधि पूर्वक पालन करना रात्रिचर्या कहलाता है।

रात्रिचर्या का शब्दिक अर्थ करें तो रात्रिचर्या दो शब्दों रात्रि और चर्या के मिलने से बनाता है। सांय संध्याकाल के उपरान्त का काल रात्रिकाल कहलाता है, इस काल में काले घने अंधकार की चादर प्रकृति को ढक देती है। अंधकार की इस बेला के एक पक्ष में आकाश में चन्द्रमा की शीतल रश्मियों की व्रीवता बढती चली जाती है जबकि अपनी पूर्ण अवस्था (पूर्णिमा) को प्राप्त होने के उपरान्त दूसरे पक्ष में चन्द्रमा की रश्मियों की व्रीवता घटती चली जाती है। सामान्य रुप से रात्रि का यह काल संसार के प्राणियों के लिए विश्राम काल होता है जिसमें दिन भर कार्य करने के उपरान्त पशु पक्षी एवं अन्य जीव निन्द्रा में विश्राम करते हैं। रात्रिकाल की निन्द्रा प्राणियों में प्राणतत्व का विस्तार करती है। संसार के जीव रात्रि में सोकर विश्राम करने से एक नई ऊर्जा, उत्साह एवं उमगं को प्राप्त करते हैं। रात्रिकाल मनुष्य के लिए भी अत्यन्त महत्वपूर्ण काल है जिसका मनुष्य के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य पर सीधा प्रभाव पडता है। रात्रिकाल में मनुष्य द्वारा किए जाने वाला ऐसा आचरण अथवा व्यवहार जिससे उसका स्वास्थ्य उन्नत स्थित में बना रहे, रात्रिचर्या कहलाती है।

रात्रिकाल में मनुष्य द्वारा किए जाने वाले ऐसे करणीय कर्म जिनसे मनुष्य के स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रभाव पडता है एवं जिनके परिणामस्वरुप उस मनुष्य का स्वास्थ्य उन्नत अवस्था में बना रहता है, रात्रिचर्या कहलाती है। रात्रिचर्या के अन्तर्गत रात्रिकालीन भोजन अर्थात आहार, शयन का काल, स्थान, स्थिति अर्थात निन्द्रा एवं रात्रिकाल में ब्रह्मचर्यपालन (गर्भाधान) नामक तीन प्रमुख बिंदुओं पर विचार किया जाता है। रात्रिचर्या के यह बिंदु मनुष्य के स्वास्थ्य को उन्नत अथवा हीन बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका वहन करते हैं। इन बिदुंओं पर ध्यान देकर मनुष्य अपने स्वास्थ्य को उन्नत बना सकता है। इस प्रकार रात्रिचर्या के करणीय कर्मों में रात्रिकालीन भोजन, निन्द्रा एवं ब्रह्मचर्य के विधिपूर्वक पालन को वर्णित किया गया है। रात्रिचर्या के इन करणीय कर्मों की सही विधि क्या है ? इन कर्मों को किस प्रकार किया जाए कि मनुष्य का स्वास्थ्य उन्नत अवस्था में बना रहें। यह विचारणीय एक विषय है जिस पर अब सविस्तार विचार करते हैं –

5.4 रात्रिचर्या के करणीय कर्म

प्रिय विधार्थियों, जैसा कि आपने जाना कि रात्रिकाल विश्राम का वह काल है जिसमें संसार के अधिकांश प्राणी निन्द्रा के द्वारा अपने प्राणतत्व एवं जीवनी शक्ति का विस्तार करते हैं। मनुष्य भी रात्रिकाल में निन्द्रा के द्वारा शारीरिक एवं मानसिक ऊर्जा का संचय करता है। रात्रिकाल में सही प्रकार विश्राम करने से मनुष्य को नई ऊर्जा के साथ नवजीवन की प्राप्ति होती है जबकि रात्रिकाल में सही प्रकार विश्राम नही करने का मनुष्य के स्वास्थ्य पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पडता है एवं उसकी शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक ऊर्जा क्षीण पड जाती है। अब आपके मन में यह प्रश्न उत्पन्न होना अत्यन्त स्वाभाविक ही है कि किस प्रकार रात्रिकालीन विश्राम से क्या अर्थ है, यह विश्राम किस प्रकार करें जिससे अधिकतम लाभ प्राप्त हो सके, उसी प्रकार रात्रिकाल में ऐसे क्या क्या कार्य करने चाहिए जिससे अच्छी प्रकार रात्रिकालीन निन्द्रा एवं विश्राम बिना किसी व्यवधान के भलिभांति किया जा सके एवं किन–किन कार्यों को रात्रिकाल में नही करना चाहिए। सरल शब्दों में रात्रिचर्या के करणीय एवं अकरणीय कर्म कौन कौन से हैं ? इन सभी प्रश्नों के उत्तरों का रात्रिकाल में किए जाने वाले करणीय कर्मों से करते हैं। रात्रिचर्या के इन करणीय कर्मों का परिचय इस प्रकार हैं –

5.4.1 रात्रिकालीन भोजन :

प्रिय विधाथिर्यों, जैसा कि आपने पूर्व इकाई में ज्ञान प्राप्त किया कि सांय संध्याकाल में भोजन कदापि नही करना चाहिए। अब प्रश्न आता है कि रात्रिकाल में भोजन का उत्तम काल कौन सा है ? इसे स्पष्ट करते हुए आयुर्वेद के प्रमुख ग्रन्थ भाव प्रकाश ग्रन्थ में कहा गया –

रात्रौ तु भोजनं कुर्यात् प्रथम पहरान्तरे।
किच्चिदूनं समश्नीयाद् दुर्जरं तत्र वर्जयेत।।

(भाव प्रकाश)

अर्थात विषम परिस्थितियों को छोडकर रात्रिकाल के प्रथम पहर के अंत में भोजन कर लेना चाहिए।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि संध्याकाल के उपरान्त रात्रिकाल के प्रथम पहर में संध्योपासना के उपरान्त रात्रिकालीन भोजन ग्रहण करना चाहिए। रात्रिकाल के प्रथम पहर के अंत से तात्पर्य रात्रिकाल में सात से नौ बजे का समय है जो रात्रिकालीन भोजन के लिए सर्वाधिक उपयुक्त समय होता है। यद्यपि इस समय में ऋतुनुसार कुछ परिर्वतन अवश्य होता है जैसा कि सर्दी के दिनों में जब दिन छोटे एवं रात्रियॉ लम्बी होती है तब रात्रिकाल में जल्दी भोजन कर लेना चाहिए तथा गर्मी के दिनों में जब दिन बडे एवं रात्रि छोटी होती है, तुलनात्मक रुप से थोडी देर में भोजन ग्रहण करना चाहिए।

रात्रिकाल में संध्योपासना के उपरान्त शुद्ध सात्विक भावों को मन में रखते हुए शान्तिपूर्ण ढंग से भोजन करना चाहिए। रात्रिकाल में सदैव हल्का, सुपाच्य एवं ताजा भोजन निम्न मंत्र का वाचन करते हुए करना चाहिए –

ओ३म अन्नपत्तेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुंष्मिणः।
प्र प्र दातारं तारिष ऊर्जा नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे।।
(यजुर्वेद 11/73)

अर्थात अन्न के स्वामी ईश, आप हमें रोग रहित एवं पुष्टिकारक अन्न प्रदान करें। आप दानी का उद्धार करते हैं, आप हमारे कटुम्बियों और पशुओं को ऊर्जा अर्थात बल प्रदान करें।

इस प्रकार रात्रिकाल के प्रथम पहर में उपरोक्त मंत्र का वाचन करते हुए शुद्ध–सात्विक आहार ग्रहण करना चाहिए। अब आपके मन में यह प्रश्न उत्पन्न होना भी स्वाभाविक

ही है कि रात्रिकाल आहार में किन किन महत्वपूर्ण तथ्यों को ध्यान रखना चाहिए, अतः अब रात्रिकालीन भोजन में पालन करने योग्य कुछ सामान्य नियमों पर दृष्टिपात करते हैं जो इस प्रकार हैं –

1. रात्रिकाल में आलू, बैंगन, चावल, उदड की दाल तथा राजमा आदि वात दोष प्रधान भारी भोज्य पदार्थों का सेवन नही करना चाहिए।
2. रात्रिकाल में दही एवं मठ्ठे का प्रयोग कदापि नही करना चाहिए।
3. रात्रिकाल में भोजन के तुरन्त बाद सोना नही चाहिए।
4. रात्रिकाल में अधिक देर में भोजन नही करना चाहिए।
5. सदैव एकाग्रचित्त होकर प्रसन्न एवं स्थिर मन के साथ भोजन करना चाहिए।
6. कभी भी खडे होकर, जल्दी में अथवा बाते करते हुए अथवा बिना एकाग्रता के कही भोजन नही करना चाहिए।
7. एक निर्धारित समय पर निश्चित मात्रा में भोजन करने की आदत बनानी चाहिए।
8. रात्रिकाल में अच्छी प्रकार भूख होने पर ही भोजन का सेवन करना चाहिए इसके विपरित भूख नही होने पर भोजन का सेवन नही करना चाहिए।
9. मनुष्य को अपनी रसेन्द्रिय पर नियंन्त्रण करते हुए शरीर की प्रकृति के अनुकूल आहार का सेवन करना चाहिए। विशेष रुप से 50 वर्ष की आयु के उपरान्त (वानप्रस्थ काल) में इसका विशेष ध्यान रखते हुए इन्द्रिय सयंम को अपनाना चाहिए।
10. रात्रिकाल में बासी भोजन, तेज नमक, मिर्च–मसाले, खटाई तथा रासायनिक पदार्थों से युक्त भोजन का सेवन नही करना चाहिए।

इस प्रकार उपरोक्त नियमों को ध्यान में रखकर आहार ग्रहण करने से पाचन तंत्र स्वस्थ एवं सक्रिय बनता है, ग्रहण किए गये आहार का पाचन अच्छी प्रकार होता है, ऐसे आहार के सेवन से किसी प्रकार का विकार उत्पन्न नही होता है एवं रात्रिकाल में निन्द्रा अच्छी प्रकार आती है। उपरोक्त नियमों के साथ साथ आयुर्वेद शास्त्र में मनुष्य को दीर्घ बनाने हेतु निम्न श्लोक को भी वर्णित किया गया है –

दिनान्ते च पिबेत् दुग्धं निशान्ते च जलं पीबेत्।
भोजनान्ते पिबेत् तकं वैद्यस्य किं प्रयोजनम् ।।

(आयुर्वेद)

अर्थात रात्रिकाल में शयन से पूर्व दूध, प्रातःकाल सोकर उठने पर जल और दोपहर भोजन के बाद तर्क अर्थात मठ्ठे का सेवन करने वाले को वैद्य की क्या आवश्यक्ता होती है। इस प्रकार रात्रिकाल में उपयुक्त आहार ग्रहण करने का मनुष्य के स्वास्थ पर अनुकूल प्रभाव पडता है तथा ऐसे मनुष्य का स्वास्थ्य उन्नत अवस्था में बना रहता है।

प्रिय जिज्ञासु पाठकों, रात्रिकाल के आहार के विषय में जानने के उपरान्त अब आपके मन में रात्रिचर्या के द्वितीय करणीय कर्म निन्द्रा के विषय में जानने की जिज्ञासा अवश्य ही बढ गयी होगी अतः अब निन्द्रा पर विचार करते हैं –

5.4.2 रात्रिकालीन निन्द्रा : रात्रिकाल में निन्द्रा का आना मनुष्य की एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। रात्रिकाल में अच्छी प्रकार निन्द्रा आने से मनंष्य को एक नई ताजगी एवं ऊर्जा प्राप्त होती है जबकि इसके विपरित रात्रिकाल में अच्छी प्रकार निन्द्रा नही आने से मनुष्य के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पडता है और निन्द्रा

में व्यवधान उत्पन्न होने पर मनुष्य अनेंक प्रकार की शारीरिक एवं मानसिक व्याधियों से ग्रस्त हो जाता है। तात्पर्य यह है कि निन्द्रा का मनुष्य के जीवन बहुत अधिक महत्व है। अब यहॉ पर प्रश्न उपस्थित होता है कि हमें निन्द्रा क्यों आती है ? तथा कौन कौन से कारक निन्द्रा को प्रभावित करते हैं। क्या करने से अच्छी निन्द्रा आती है तथा किन कारणों से निन्द्रा में व्यवधान उत्पन्न होता है ? अतः रात्रिचर्या के दूसरे प्रमुख अंग निन्द्रा के स्वरुप से संबधी विभिन्न पक्षों पर विचार करते हैं –

प्रिय पाठकों, सर्वप्रथम निन्द्रा की उत्पत्ति पर विचार करें तो निन्द्रा आने के संदर्भ में निम्न लिखित मान्यताएं हैं –

(क) आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध आचार्य महर्षि चरक निन्द्रा के स्वरुप की व्याख्या करते हुए कहते हैं –

यदा तु मनसि क्लान्ते कर्मात्मानः क्लामान्विताः।
विषयेभ्यो निवर्तन्ते तदा स्वपिति मानवः ।।

(च0 सू0 21/35)

अर्थात मन जब कार्य करते करते थक जाता है और इन्द्रियॉ भी कार्य करने से थककर अपने विषयों से निवृत्त हो जाती है, तब मनुष्य को निन्द्रा आ जाती है।

इस प्रकार आयुर्वेद शास्त्र में निन्द्रा को विश्राम की वह अवस्था विशेष कहा गया है जिसमें मन एवं इन्द्रियों की अपने विषयों से मुक्त हो जाती है।

(ख) आधुनिक मान्यता के अनुसार जब मनुष्य दिन भर क्रियाशील रहता है तब कार्य करने के दौरान चयापचय क्रिया के फलस्वरुप उसके शरीर में अनुपयोगी विजातीय पदार्थों की उत्पत्ति होती है। इन विजातीय पदार्थों को होमोटाक्सिन्स कहा जाता है। इन विजातीय पदार्थों कारण ही शरीर में भारीपन एवं थकावट उत्पन्न होती है। रात्रिकाल होने तक मानव शरीर में इनकी मात्रा बहुत अधिक बढ जाती है जिसके कारण शरीर बहुत थक जाता है। शरीर में इन विजातीय द्रव्यों की अधिकता निन्द्रा को उत्पन्न करती है। निन्द्रा काल में इन विजातीय द्रव्यों को शरीर से हटाया जाता है जिससे शरीर पुनः कार्य करने के लिए तरोताजा एवं ऊर्जावान हो जाता है।

(ग) चिकित्सा वैज्ञानिक निन्द्रा की व्याख्या हार्मोन्स (अन्तःस्रावी तंत्र) के साथ जोडकर करते हैं। वैज्ञानिक मान्यता के अनुसार मानव शरीर में रात्रिकाल में मस्तिष्क में उपस्थित पीनियल ग्रन्थि से मेलाटोनिन हार्मोन अधिक मात्रा में स्रावित होकर रक्त में मिला दिया जाता है। इस प्रकार रात्रिकाल में रक्त में मेलाटोनिन हार्मोन की सान्द्रता बढने से स्वतः निन्द्रा आती है इसीलिए हम प्रायः अनुभव करते हैं कि रात्रिकाल में एक निश्चित समय में हमें स्वतः ही निन्द्रा आ जाती है जबकि इसके विपरित विषम अथवा तनावयुक्त अवस्था में शरीर में हार्मोन्स का असन्तुलन होने पर मनुष्य अनिन्द्रा रोग से ग्रस्त हो जाता है।

(घ) कुछ वैज्ञानिक निन्द्रा की व्याख्या एक प्रतिवर्ती क्रिया (Reflex action) के रुप में करते है। इस मान्यता के अनुसार निन्द्रा बाह्य वातावरणीय क्रिया की प्रतिक्रिया का परिणाम है अर्थात यदि अंधेरा कर दिया जाए, एक सुन्दर सा बिस्तर लगा दिया जाए तथा सोने के लिए अनुकूल वातावरण जैसे शीतल सुगंन्धित वायु, मधुर संगीत एवं कम प्रकाश कर दिया जाए तो स्वतः ही निन्द्रा आने लगती है।

(ड) कुछ विद्धानों की मान्यतानुसार निन्द्रा एकाग्रता अथवा ध्यान की ही एक अवस्था विशेष है। प्रायः हम व्यवहारिक रुप में यह अनुभव भी करते हैं कि कोई कार्य जैसे पढने, सुनने, लिखने अथवा टी0 वी0 को अत्यन्त ध्यानपूर्वक देखते– देखते हम निन्द्रा में चले जाते हैं। इसके अतिरिक्त प्रायः बहुत अनुकूल (सम) अथवा प्रतिकूल (विषम) अवस्था में भी हम निन्द्रा में चले जाते हैं।

प्रिय पाठकों, निन्द्रा के आने के स्वरुप एवं कारणों को जानने के उपरान्त अब आपके मन में यह प्रश्न उत्पन्न होना भी स्वाभाविक ही है कि रात्रिकालीन निन्द्रा को कौन कौन से कारक प्रभावित करते हैं। किस प्रकार रात्रिकाल में अच्छी निन्द्रा प्राप्त की जा

सकती है जिससे शरीर पूर्ण रुप से विश्राम कर आगे के लिए अच्छी प्रकार ऊर्जावान एवं तरोताजा हो सके, अतः अब निन्द्रा के संदर्भ में पालनीय नियमों पर विचार करते हैं

1. एक स्वस्थ व्यस्क मनुष्य को अहोरात्र (चौबीस घंटे) के चतुर्थांश अर्थात छह घंटे की निन्द्रा लेनी चाहिए। इसके लिए रात्रि काल को चार भागों में विभक्त करें तो प्रथम एवं चतुर्थ भाग को छोडकर मध्य के दो भागों में निन्द्रा लेनी चाहिए।
2. सदैव पूर्व अथवा दक्षिण दिशा में सिर करके शयन करना चाहिए।
3. आयुर्वेद शास्त्र में गीले पैर भोजन एवं सूखे पैर शयन को उत्तम माना गया है अर्थात सोने से पूर्व पैरों को अच्छी प्रकार पौंछकर सूखाकर सोने से अच्छी निन्द्रा आती है।
4. रात्रिकाल में भोजन करने के तुरन्त बाद नही सोना चाहिए अपितु रात्रिकाल का भोजन सोने से दो घंटे पूर्व कर लेना चाहिए। भोजन के उपरान्त कुछ दूर भ्रमण करने के उपरान्त ही सोना चाहिए।
5. रात्रिकाल में साने के लिए साफ स्वच्छ स्थान होना चाहिए, उस स्थान में साफ स्वच्छ वायु का भलि– भांति आवागमन होना चाहिए। कभी भी बंद, घुटनयुक्त एवं अस्वच्छ वातावरण में नही सोना चाहिए।
6. रात्रिकाल में सोते समय सदैव ढीले वस्त्रों को पहनकर ही सोना चाहिए।
7. सोने के बिस्तर में ऋतुनुकूल धुले हुए साफ स्वच्छ वस्त्र होने चाहिए। गर्मी के दिनों सूती वस्त्रों एवं सर्दी के दिनों में गर्म ऊनी कपडों का प्रयोग करना चाहिए।
8. रात्रिकाल सोते समय प्रेरणाप्रद महापुरुषों के उच्च चरित्र का चिन्तन करना चाहिए। विशेष रुप से बच्चों के सामने सोने से पूर्व अच्छे चरित्रों का चित्रण करने से बच्चों में अच्छे संस्कार उत्पन्न होते हैं। व्यस्क पुरुषों को सोने से पूर्व आत्ममंथन करना चाहिए जिसमें दिन भर किए गये कार्यों को स्मरण कर अपनी गलतियों एवं भूलों की पहचान कर ईश्वर से क्षमा याचना की जाती है।
9. अंत में रात्रिकाल में सोते समय सदैव मन में सकारात्मक भावों का मनन चिन्तन करते हुए ही शयन करना चाहिए। वैदिक मान्यता के अनुसार रात्रिकाल में मन को शान्त एवं सकारात्मक ऊर्जायुक्त बनाने के उद्देश्य से श्रृद्धापूर्वक निम्न मंत्रों का वाचन करने के उपरान्त ही शयन करना चाहिए –

ओ३म् यज्जाग्रतो दुरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।
ओ३म् येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।
ओ३म् यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्जोतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।
ओ३म् येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।
ओ३म् यस्मिन्नृचः साम यजूँषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।

यस्मिश्चित्तँ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।
ओ३म् सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यात्रेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

(यजुर्वेद 34/1–6)

अर्थात जो दिव्य मन जागते हुए मनुष्य का दूर तक जाता है और जो सोते हुए उसी प्रकार दूर तक जाता है दूर तक जाने वाला प्रकाशों का प्रकाश, वह मेरा मन शुभ विचारों वाला होवे।

जिस मन से कर्मठ और धीर विद्धान लोग यज्ञ तथा शास्त्रार्थों में कर्मों को करते हैं जो अपूर्व और पूज्य मन प्राणी मात्र के अन्दर है। वह मेरा मन शुभ विचारों वाला होवे।

जो मन ज्ञान, स्मृति और धारण शक्ति का साधन है, जो प्राणी मात्र के अन्दर अमर ज्योति है, जिसके बिना कोई काम नही किया जा सकता है, वह मेरा मन शुभ विचारों वाला होवे।

जिस अमर मन ने ये तीनों काल – भूत, वर्तमान और भविष्यत् – अपने वश में किए हुए है, जिसके द्वारा सात होताओं (यज्ञकर्ता) वाला यज्ञ किया जाता है, वह मेरा मन शुभ विचारों वाला होवे।

जिस मन में ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद रथ के नाभि में अरों के तुल्य जुडे हुए है, जिसमें जीव मात्र का सारा ज्ञान ओत–प्रोत है, वह मेरा मन शुभ विचारों वाला होवे।

जो मन मनुष्यों को उस प्रकार चलाता है, जैसे उत्तम सारथी घोडों को। जो हृदय में रहता है, अत्यन्त फुर्तीला है और अति वेगशाली है, वह मेरा मन शुभ विचारों वाला होवे।

इन मंत्रों का वाचन एवं मनन चिन्तन रात्रिकाल में सोने से पूर्व करने से मन में नकारात्मक ऊर्जा नष्ट होती है एवं सकारात्मक भावों का विस्तार होता है। रात्रिकाल सोते समय मन में नकारात्मक ऊर्जा की प्रबलता बने रहने से मन विचलित बना रहता है तथा निन्द्रा काल में भी मन अनेक प्रकार के अच्छे–बुरे सपनों के ताने–बाने बुनता रहता है, इसके परिणाम स्वरुप निन्द्रा में व्यवधान बना रहता है। इस स्थिति से मुक्त रहने के लिए तथा मन को शान्त एवं सकारात्मक ऊर्जायुक्त बनाने के हेतु श्रृद्धापूर्वक उपरोक्त मंत्रों का वाचन करने के उपरान्त ही शयन करना चाहिए। उपरोक्त मंत्रों का वाचन करने के उपरान्त शयन करने से मनुष्य का शरीर स्वस्थ, मन शान्त एवं आत्मा आनन्दित रहता है जिसका मनुष्य के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रभाव पडता है एवं ऐसा मनुष्य शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक पूर्ण रुप से स्वस्थ बना रहता है।

प्रिय विधार्थियों, इस प्रकार आपने रात्रिचर्या के अन्तर्गत आपने रात्रिकालीन आहार एवं निन्द्रा के विषय में ज्ञान प्राप्त किया। रात्रिकालीन आहार एवं निन्द्रा के विषय में जानने के पश्चात आपके मन में रात्रिचर्या के तीसरे महत्वपूर्ण अंग ब्रह्मचर्य के विषय में जानने की जिज्ञासा भी बढ गयी होगी। इसके साथ साथ आपके मन में यह प्रश्न भी अवश्य ही उत्पन्न हुआ होगा कि ब्रह्मचर्य का अर्थ क्या होता है ? तथा ब्रह्मचर्य का रात्रिचर्या में क्या महत्व होता है, अतः अब रात्रिचर्या के तीसरे अंग ब्रह्मचर्य पर विचार करते हैं

5.4.3 रात्रिकाल में ब्रह्मचर्यपालन :

वैदिक वर्णाश्रम का प्रथम आश्रम ब्रह्मचर्य आश्रम है अर्थात मानव जीवन का प्रारम्भ इसी आश्रम से होता है किन्तु इसका संबन्ध केवल जीवन के प्रथम पच्चीस वर्ष से ही नही होता है अपितु यह जीवन प्रर्यन्त पालनीय अभ्यास है। ब्रह्मचर्य क्या है ? इस पर विचार करें तो ब्रह्मचर्य की शाब्दिक व्याख्या से ही इसका अर्थ स्पष्ट होता है। ब्रह्मचर्य दो शब्दों– ब्रह्म और चर्य के मिलने से बनता है। ब्रह्म परमात्मा का वाचक शब्द है जिससे परमात्मा को ग्रहण किया जाता है। चर्य का अर्थ अनुसरण करने अथवा आचरण से होता है अर्थात ब्रह्मचर्य का अर्थ परमात्मा के समान आचरण करने से होता है।

दूसरे शब्दों में परमात्मा के शुद्ध स्वरुप का चिन्तन मनन एवं ध्यान करते हुए उसके समान व्यवहार करने के अर्थ में भी ब्रह्मचर्य को वर्णित किया जाता है।

महाभारत के रचियता महर्षि व्यास विशेयेन्द्रिय द्वारा प्राप्त होने वाले सुख के संयमपूर्व त्याग करने को ब्रह्मचर्य की संज्ञा देते हैं। सामान्य रुप से प्रजनन इन्द्रिय पर संयम को ब्रह्मचर्य के अर्थ के रुप में वर्णित किया जाता है। ब्रह्मचर्य का अर्थ शरीर की सबसे महत्वपूर्ण शुक्र धातु की संयम पूर्वक रक्षा करने से भी होता है। इस प्रकार ब्रह्मचर्य को विभिन्न अर्थों में अभिव्यक्त किया जाता है किन्तु मूल रुप से आशय इन्द्रिय पर संयम रखते हुए शरीर की महत्वपूर्ण धातु की रक्षा करना होता है।

रात्रिचर्या के अन्तर्गत रात्रिकाल में ब्रह्मचर्यपालन करते हुए विधिपूर्वक सन्तानोत्ति करने का निर्देश किया गया है। इस संदर्भ में महर्षि दयानन्द सरस्वती संस्कार विधि नामक ग्रन्थ में गृहस्थ आश्रम को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि गृहस्थाश्रम संस्कार उसे कहते है कि जो एहिक और पारलौकिक सुख प्राप्ति के लिए विवाह करके अपने सार्मथ्य के अनुसार परोपकार और नियत काल में यथाविधि ईश्वरोपासना और गृहकृत्य करना, सत्यधर्म में ही तन, मन, धन लगाना तथा धर्मानुसार सन्तानों की उत्पत्ति करना। महर्षि पुनः अन्यत्र कहते हैं कि मनुष्य बाल्यवस्था में विवाह न करें, उपस्थ इन्द्रिय का संयम रखे, वेदादि शास्त्रों को पढता–पढाता रहे। विवाह के पीछे भी ऋतुगामी बना रहे और पर स्त्री–गमन आदि व्यभिचार को मन–वचन–कर्म से त्याग देवे– तब इससे दो प्रकार का वीर्य अर्थात बल बढता है– एक शरीर का और दूसरा बुद्धि का। इसके बढने से मनुष्य अत्यन्त आनन्द में रहता है (ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका)।

इस प्रकार भारतीय दर्शन में ब्रह्मचर्यपालन को जीवन के एक अत्यन्त अनिवार्य अंग के रुप में वर्णित किया गया है। ब्रह्मचर्यपालन से शरीर में बल, तेज, उत्साह एवं उमॅग की वृद्धि होती है। शरीर बलवान एवं गर्मी–सर्दी, शीत–उष्ण एवं पीडा आदि को सहने में सक्ष्म बनता है। शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता प्रबल बनी रहती है एवं शरीर रोगों से मुक्त बना रहता है। ब्रह्मचर्यपालन से स्मरण शक्ति व्रीव बनी रहती है एवं वृद्धावस्था नही आती है। ब्रह्मचर्यपालन से इन्द्रियॉ स्वस्थ एवं मन प्रसन्न बना रहता है। इसके साथ साथ ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले मनुष्य के मन में धैर्य का विकास होता है जिससे वह प्रतिकूल, विषम परिस्थितियों, कठिनाईयों एवं विपत्तियों का सामना सम भाव से करने में सक्ष्म बनता है। इसके स्पष्ट प्रमाण हमारें महापुरुषों (स्वामी दयानन्द सरस्वती एवं स्वामी विवेकानन्द आदि) के जीवन चरित्रों में प्राप्त होते हैं जिन्होने ब्रह्मचर्य के तप से कठिन से कठिन विपत्तियों का सामना धर्यपूर्वक किया।

ब्रह्मचर्य के महत्व पर प्रकाश डालते हुए अथर्ववेद में कहा गया –

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्त।। (अथर्ववेद ब्रह्मचर्य सूक्त)

अर्थात ब्रह्मचर्य के तप से देवता मृत्यु को जीत लेते हैं।

प्रिय पाठकों, इस प्रकार आपने रात्रिचर्या के तीन महत्वपूर्ण करणीय कर्मों – रात्रिकालीन आहार, निन्द्रा एवं ब्रह्मचर्य का ज्ञान प्राप्त किया तथा इनके महत्व को भी जाना। अब इन करणीय कर्मों के विषय जानने के उपरान्त आपके मन में रात्रिचर्या के अकरणीय कर्मो के विषय में जानने की जिज्ञासा भी अवश्य ही उत्पन्न हुई होगी अतः अब रात्रिचर्या के अकरणीय कर्मो पर विचार करते हैं –

5.5 रात्रिचर्या के अकरणीय कर्म :

प्रिय विधाथिर्यों, जिस प्रकार रात्रिकाल में आहार, निन्द्रा एवं ब्रह्मचर्य सम्बन्धी करणीय कर्म स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रभाव डालते हैं और इनके विधिपूर्वक पालन से स्वास्थ्य उन्नत अवस्था में बना रहता है तो वहीं इसके विपरित इनके प्रतिकूल व्यवहार करने से स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पडता है एवं रात्रिचर्या में अकरणीय कर्मों को करने से अनेक प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं। मनुष्य के स्वास्थ्य को उन्नत एवं हीन बनाने में रात्रिचर्या के करणीय एवं अकरणीय कर्म बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आपके द्वारा इकाई में रात्रिचर्या के करणीय कर्मो का अध्ययन कर

लेने के पश्चात अब आपके मन में रात्रिचर्या के अकरणीय कर्मों के विषय में जानने की जिज्ञासा भी अवश्य ही बढ गयी होगी अतः अब रात्रिचर्या के अकरणीय कर्मों पर विचार करते हैं –

(क) रात्रिकाल में अधिक देर से भोजन ग्रहण करना अकरणीय कर्म है। अधिक देर में भोजन करने से भोजन करने से भोजन का पाचन ठीक प्रकार नही होता है और पाचन तंत्र से संबन्धी विकार जैसे पेट दर्द, गैस, अपच आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

चूंकि रात्रिकाल में शारीरिक श्रम का अभाव होता है और निन्द्राकाल में पाचन क्रिया तुलनात्मक रुप से धीमी पड जाती है अतः रात्रिकाल में कभी भी गरिष्ठ एवं भारी आहार का सेवन नही करना चाहिए। दूसरे शब्दों में रात्रिकाल में गरिष्ठ एवं भारी भोजन का सेवन करना रात्रिचर्या का अकरणीय कर्म है। इसके अतिरिक्त आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार रात्रिकाल में दही सेवन पूर्ण रुप से वर्जित अकरणीय कर्म है। वर्तमान समाज में रात्रिकाल में भोजन के साथ दही का सेवन बहुतायात में किया जाने लगा है जो रात्रिचर्या एवं आयुर्वेद के दृष्टिकोण से अकरणीय कर्म है तथा जिसके दुष्परिणाम समाज में रोग के रुप में प्रकट हो रहें हैं। आयुर्वेद शास्त्र में रात्रिकाल में दही के सेवन से स्रोतस अर्थात कोशिकाओं में अवरोध को वर्णित किया गया है। रात्रिकाल में दही सेवन से सर्दी–जुकाम, खॉसी, बुखार एवं कफ विकृति बढ जाती है। रात्रिकाल में दही के सेवन से शरीर की कोशिकाओं एवं नाडियों में अवरोध उत्पन्न हो जाता है और इसीलिए दही के दीर्घकाल तक सेवन करने से इन्द्रियों (ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मन्द्रियों) में शिथिलता उत्पन्न होती है। रात्रिकाल में दही सेवन का नकारात्मक प्रभाव मनुष्य के तंत्रिका तंत्र पर पडता है एवं दीर्घकाल तक दही का सेवन करने से मनुष्य की स्मरण शक्ति एवं तर्क वितर्क की शक्ति क्षीण पड जाती है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि रात्रिकाल में दही का प्रयोग नही करना चाहिए अपितु सोने से पूर्व गुनगुने अथवा गर्म दूध का सेवन करना स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से हितकारी होता है। मनुष्य शरीर की प्रकृति एवं क्षमता के अनुसार दूध के साथ हल्दी, हरड, त्रिफला अथवा चव्यनप्राश आदि रासायनों का प्रयोग भी किया जा सकता है।

(ख) रात्रिकाल में अधिक देर तक जागना अकरणीय कर्म है। आधुनिकता की दौड में आधुनिक मनुष्य द्वारा रात्रिकाल में देर तक जागने से शरीर की जैविक घडी का क्रम बिगड जाता है। इसके परिणाम स्वरुप शरीर में हार्मोन्स का असन्तुलन हो जाता है और शरीर की चयापचय दर बिगड जाती है जिसके आगे चलकर शारीरिक और मानसिक रोगों के रुप में दुष्परिणाम प्राप्त होते हैं अतः रात्रिकाल में पूर्व वर्णित चर्या के अनुसार समय से सोना चाहिए।

वर्तमान समय में सोने के स्थान पर मच्छर आदि कीटों को मारने के लिए रासायनिक जहरीली कॉयल अथवा लिक्विड का प्रयोग किया जाता है जो पूर्ण रुप से अप्राकृतिक अकरणीय कर्म है। इन जहरीले रसायनों को जलाकर सोने से ये रासायन श्वास के द्वारा शरीर में पहुॅचते हैं। इन रासायनों के प्रयोग से एलर्जी, दमा, खॉसी, सिर दर्द आदि रोग उत्पन्न होते हैं। इसके साथ साथ लम्बे समय तक इनका प्रयोग करने से शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता एवं जीवनी शक्ति कमजोर पड जाती है और व्यक्ति जल्दी जल्दी संक्रामक रोगों से ग्रस्त होने लगता है। इन जहरीली कॉयल अथवा लिक्विड के स्थान पर मच्छरदानी का प्रयोग पूर्ण रुप से प्राकृतिक एवं सुरक्षित विकल्प है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि रात्रिकाल में सोते समय मच्छर आदि कीटों से बचने के लिए मच्छरदानी का प्रयोग करना एक करणीय कर्म है जबकि जहरीले रासायनिक पदार्थों का प्रयोग करना अकरणीय कर्म है। इनके प्रयोग के केवल मनुष्य के स्वास्थ्य पर ही नकारात्मक प्रभाव नही पडता है अपितु वातावरण में जहरीले रासायन घोलकर प्रकृति के संतुलन को बिगाडने का पाप भी मनुष्य को लगता है।

रात्रिकाल में उत्तर अथवा पश्चिम की ओर सिर करके सोना एक अकरणीय कर्म है। वास्तु शास्त्र के अनुसार पृथ्वी की उत्तर दिशा चुम्बक का उत्तरीय ध्रुव है जिससे

धनात्मक ऊर्जा का वास होता है। पृथ्वी की यह धनात्मक ऊर्जा उत्तर दिशा से दक्षिण दिशा की ओर बहती है। मानव शरीर में सिर धनात्मक ऊर्जा का केन्द्र होता है। उत्तर दिशा में सिर करने से दो धनात्मक सिरे (पोल्स) एक दिशा में हो जाते हैं। दो समान सिरे (पोल्स) एक दूसरे को प्रतिकर्षित करते हैं। इस कारण उत्तर दिशा में सिर करके सोने से मस्तिष्क में विक्षेप उत्पन्न होता रहता है एवं इसके परिणाम स्वरुप अच्छी निन्द्रा नही आती है। इसके विपरित दक्षिण दिशा में सिर और उत्तर दिशा में पैर करने से दोनों सिरों (पोल्स) की दिशा एक दूसरे के विपरित हो जाती है और विपरित सिरे (पोल्स) एक दूसरे को आकर्षित करने का कार्य करते हैं इसीलिए दक्षिण दिशा में सिर एवं उत्तर दिशा में पैर करके सोना चाहिए। रात्रिकाल में पूर्व दिशा में पैर करके सोना भी अकरणीय कर्म है। पूर्व दिशा में सूर्य देव के साथ देवों एवं पितरों के वास को माना गया है अतः इस दिशा में पैर करके सोना अशुभ एवं अशोभनीय कर्म है।

(ग) रात्रिकाल में ब्रह्मचर्य का अपालन करना रात्रिचर्या का अकरणीय कर्म है। ब्रह्मचर्य का अपालन करने से शरीर, बल, तेज, बुद्धि, धन, मान के साथ यह लोक और परलोक सबकी हानि होती है। ब्रह्मचर्य का अपालन करने से मनुष्य की जीवनी शक्ति एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता क्षीण पड जाती है वह शीघ्र अनेक प्रकार की शारीरिक एवं मानसिक व्याधियों से ग्रस्त हो जाता है। उसके शरीर में द्वन्दों को सहन करने की क्षमता कम हो जाती है। वह शीत–उष्ण, गर्मी–सर्दी, वर्षा आदि को सहन करने में असक्ष्म हो जाता है। थोडे से शारीरिक श्रम से ही वह अधिक शारीरिक एवं मानसिक थकान को अनुभव करने लगता है। उसका स्वभाव चिडचिडा एवं आत्मबल कमजोर हो जाता है। वह आलस्य से घिरा रहता है और उसके अन्दर से उत्साह एवं उमंग का अभाव हो जाता है।

ब्रह्मचर्य का अपालन करने बुद्धि मंद हो जाती है और स्मरण शक्ति कमजोर हो जाती है। व्यक्ति के सोचने एवं समझने की शक्ति पर भी इसका कुप्रभाव पडता है और मनुष्य की एकाग्रता एवं चिन्तन मनन शक्ति क्षीण हो जाती है। ब्रह्मचर्य का अपालन करने से असमय वृद्धावस्था आ जाती है। जिस प्रकार इकाई में स्पष्ट किया गया है कि ब्रह्मचर्य के तप से मृत्यु पर विजय प्राप्त होती है तो वहीं इसके विपरित ब्रह्मचर्य का अपालन करने से मनुष्य मृत्यु की ओर अग्रसर होता है। इस प्रकार रात्रिकाल में ब्रह्मचर्य पालन करणीय कर्म एवं ब्रह्मचर्य अपालन एक अकरणीय कर्म है।

अभ्यास हेतु प्रश्न –

1– **सत्य / असत्य**

(क) रात्रिचर्या के अनुसार रात्रिकाल में भोजन के तुरन्त बाद सो जाना चाहिए।

(ख) रात्रिचर्या के अनुसार रात्रिकाल के अन्तिम पहर में भोजन ग्रहण करना चाहिए।

(ग) रात्रिकाल के एक निश्चित समय एवं मात्रा में भोजन करने की आदत नही डालनी चाहिए।

(घ) रात्रिकाल में सदैव पूर्व अथवा दक्षिण की ओर सिर करके शयन करना चाहिए।

(ड) ब्रह्मचर्य का अपालन करने से स्मरण शक्ति कमजोर एवं असमय वृद्धावस्था आ जाती है।

2– रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

(क) रात्रिकाल में आहार, निन्द्रा एवं ब्रह्मचर्य संबधी नियमों का पालन करना ––––– कहलाता है

(ख) रात्रिकाल की निन्द्रा प्राणियों में ––––– का विस्तार करती है।

(ग) रात्रिकाल में रक्त में ––––––––– हार्मोन की सान्द्रता बढने पर निन्द्रा आती है।

(घ) एक स्वस्थ व्यस्क मनुष्य को ––––– घंटे की निन्द्रा लेनी चाहिए।

(ड) ––––––– के तप से देवता मृत्यु को जीत लेते हैं।

3– **एक शब्द में उत्तर दीजिए –**

(क) वैदिक मान्यता के अनुसार रात्रिकाल में सोने से पूर्व यजुर्वेद के कितने मंत्रों का वाचन करना चाहिए ?

(ख) रात्रिकाल में किस दोष प्रधान आहार नही करना चाहिए ?

(ग) मन और इन्द्रियों की विषयों से मुक्त अवस्था विशेष क्या कहलाती है ?

(घ) पृथ्वी की धनात्मक ऊर्जा किस दिशा से किस दिशा की ओर बहती है ?

(ड) ब्रह्मचर्य का अर्थ शरीर की किस धातु की संयम पूर्वक रक्षा करने से होता है ?

4–बहुविकल्पीय प्रश्न –

(क) महर्षि चरक के अनुसार मानव स्वास्थ्य का उपस्तम्भ है –

(a) आहार (b) निन्द्रा

(c) ब्रह्मचर्य (d) सभी ।

(ख) रात्रिकालीन भोजन का सर्वाधिक उपयुक्त समय है –

(a) सांय 5 से 7 बजे (b) रात्रि 7 से 9 बजे

(c) रात्रि 9 से 11 बजे (d) रात्रि 10 से 12 बजे।

(ग) आयुर्वेद में किस द्रव्य का सेवन रात्रिकाल में पूर्ण रुप से वर्जित माना गया है –

(a) दूध (b) दही

(c) फल (d) त्रिफला चूर्ण ।

(घ) मानव स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रभाव पडता है –

(a) रात्रि शयन पूर्व दूध सेवन से (b) प्रातःकाल खाली पेट जल सेवन से

(c) दोपहर भोजन के साथ मठ्ठे सेवन से (d) सभी ।

(ड) वैदिक वर्णाश्रम में ब्रह्मचर्य आश्रम को कौन सा स्थान प्राप्त है –

(a) प्रथम (b) द्वितीय

(c) तृतीय (d) चतुर्थ।

5.6 सारांश–

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत इकाई का प्रारम्भ महर्षि चरक द्वारा वर्णित मानव स्वास्थ्य के उपस्तम्भ आहार, निन्द्रा एवं ब्रह्मचर्य से किया गया है। इकाई में स्पष्ट किया गया है कि इन तीन उपस्तम्भों – आहार, निन्दा एवं ब्रह्मचर्य का रात्रिकाल में विधि पूर्वक पालन करना रात्रिचर्या कहलाता है। रात्रिचर्या के करणीय एवं अकरणीय कर्मों में इन तीनों के विधिपूर्वक पालन पर प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार यहॉ पर रात्रिकालीन भोजन अर्थात आहार, शयन का काल, स्थान, स्थिति अर्थात निन्द्रा एवं रात्रिकाल में ब्रह्मचर्यपालन नामक तीन महत्वपूर्ण बिंदुओं पर विचार किया जाता है। आयुर्वेद के अनुसार विषम परिस्थितियों को छोडकर रात्रिकाल के प्रथम पहर के अंत में रात्रिकालीन भोजन कर लेना चाहिए। रात्रिकाल में निश्चित समय पर प्रसन्न भावों के साथ मंत्रपाठ करते हुए हल्का एवं सुपाच्य आहार करना चाहिए। इकाई में रात्रिकाल में भोजन संबधी प्रमुख नियमों पर प्रकाश डाला गया है।

आगे इकाई में रात्रिचर्या के दूसरे महत्वपूर्ण बिंदु निन्द्रा पर विचार किया गया है। सर्वप्रथम निन्द्रा के स्वरुप को स्पष्ट करने के उपरान्त निन्द्रा के कारण, रात्रिकाल में सोने के स्थान, सोने की दिशा, आस पास के वातावरण की स्थिति एवं मन की स्थिति को स्पष्ट किया गया है। इकाई में रात्रिकाल में साफ स्वच्छ स्थान एवं वस्त्रों के साथ दक्षिण अथवा पूर्व दिशा में सिर करके सोने का निर्देश दिया गया है। रात्रिकाल में सोने से पूर्व यजुर्वेद के छह वैदिक मंत्रों का वाचन, मनन एवं चिन्तन करने का उपदेश किया गया है। यहॉ स्पष्ट किया गया है कि रात्रिकाल में अच्छे चरित्रों (महापुरुषों) का चिन्तन करते हुए शयन करना चाहिए। इकाई में आगे रात्रिचर्या के तृतीय महत्वपूर्ण बिंदु ब्रह्मचर्य को स्पष्ट किया गया है। सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य के अर्थ को विभिन्न दृष्टिकोणों से समझाया गया गया है तत्पश्चात ब्रह्मचर्य के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। इकाई में

ब्रह्मचर्यपालन को मानव जीवन के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण बतलाते हुए कहा गया है कि ब्रह्मचर्य के तप से देवता मृत्यु पर विजय प्राप्त करते हैं। इकाई के अंत में रात्रिकाल में आहार, निन्द्रा एवं ब्रह्मचर्य संबधी अकरणीय कर्मों का वर्णन करते हुए इकाई को पूर्ण किया गया है।

5.7 पारिभाषिक शब्दावली–

क्षीण	कमजोर
व्यवधान	बाधा
उद्धार	कल्याण
कटुम्बियों	परिवार के सदस्यों
हार्मोन्स	शरीर में ग्रन्थियों से स्रावित होने वाले पदार्थ
प्रतिवर्ती	किसी क्रिया का प्रतिउत्तर
आत्ममथंन	स्वयं के विषय में चिन्तन–मनन करना।

5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क.	असत्य	क.	रात्रिचर्या	क.	छह	क.	d
ख.	असत्य	ख.	प्राण तत्व	ख.	वात	ख.	b
ग.	असत्य	ग.	मेलाटॉनिन	ग.	निन्द्रा	ग.	b
घ.	सत्य	घ.	छह	घ.	उत्तर से दक्षिण दिशा	घ.	d
ड.	सत्य	ड.	ब्रह्मचर्य	ड.	शुक्र	ड.	a

5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 प्रो0 रामहर्ष सिंह – स्वस्थवृत्त विज्ञान – चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।

2 कल्याण आरोग्य अंक (जनवरी एवं फरवरी 2001 ई0) – गीता प्रेस, गोरखपुर।

3 आचार्य बालकृष्ण – आयुर्वेद सिद्धान्त रहस्य, दिव्य प्रकाशन, दिव्य योग मन्दिर ट्रस्ट, हरिद्वार। (संस्करण फरवरी 2007)।

4 ब्रह्मवर्चस – आयुर्वेद का दर्शन, क्रिया शारीर एवं स्वस्थ वृत्त, श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट, शांतिकुँज, हरिद्वार। (छटा संस्करण 2010)

5 आचार्य राजवीर शास्त्री – वैदिक सन्ध्या हवन पद्धति – आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली। (संस्करण अक्टूबर 1999)

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न–

1.रात्रिचर्या के अर्थ को समझाते हुए रात्रिचर्या का सविस्तार व्याख्या किजिए।

2.रात्रिचर्या के करणीय एवं अकरणीय कर्मों को सविस्तार लिखिए।

3.रात्रिचर्या पालन का मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव का अवलोकन किजिए।

4.निम्न पर टिप्पणियां लिखिए –

(क) रात्रिकालीन आहार (ख) निन्द्रा

(ग) ब्रह्मचर्य

इकाई 6 : ऋतुविभाजन – षड्ऋतुएँ एवं उनकी चर्या

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 ऋतुविभाजन
6.3.1 ऋतुविभाजन की वैज्ञानिकता
6.3.2 ऋतुविभाजन का काल
6.4 षड्ऋतुओं की चर्या
6.4.1 वसन्त ऋतु की चर्या
6.4.2 गीष्म ऋतु की चर्या
6.4.3 वर्षा ऋतु की चर्या
6.4.4 शरद् ऋतु की चर्या
6.4.5 हेमन्त ऋतु की चर्या
6.4.6 शिशिर ऋतु की चर्या
6.5 सारांश
6.6 पारिभाषिक शब्दावली
6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
6.9 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

भारतवर्ष विभिन्नताओं का देश है। इस संसार में कुछ ऐसे ठंडे देश हैं जहॉ वर्ष भर ठंड का मौसम रहता है जबकि कुछ ऐसे गर्म देश हैं जहॉ वर्ष भर गर्मी ही पडती है किन्तु भारत एक ऐसा देश है जहॉ वर्ष भर दिन की अवधि, तापमान, वर्षा एवं आद्रर्ता आदि प्रतिदिन बदलते रहते हैं। इन परिर्वतनों के आधार पर भारत में वर्षभर मौसम बदलता रहता है। मौसम के इस बदलाव को ऋतु के नाम से जाना जाता है। इस प्रकार भारत वर्ष में गर्मी, सर्दी और बरसात के रुप में अलग अलग ऋतुएँ प्रकृति में देखने को मिलती है। प्रकृति के इस ऋतुपरिर्वतन का मानव शरीर पर सीधा प्रभाव पडता है। मानव शरीर में स्थित त्रिदोषों, धातुओं एवं मलों की स्थिति पर ऋतुओं का परिर्वतन सीधा प्रभाव डालता है। एक ऋतु में कोई दोष वृद्धि को प्राप्त होता है तो वहीं दूसरी ऋतु में उसी दोष का शमन हो जाता है। इसी प्रकार शरीर की धातुओं, अग्नियों एवं मलों के व्यापार को भी ऋतुपरिर्वतन प्रभावित करती है। अलग अलग ऋतुओं में शरीर बलाबल की स्थिति परिवर्तित होती रहती है। मनुष्य को ऋतु परिर्वतन के साथ शरीर में होने वाले परिर्वतनों का अध्ययन अत्यन्त सूक्ष्मता पूर्वक करना चाहिए क्योकि यह परिर्वतन शरीर को स्वस्थ एवं रोगी बनाने में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका वहन करते है। ऋतु परिर्वतनों के अनुसार आहार विहार करने से मनुष्य स्वस्थ बनता है जबकि ऋतु परिर्वतनों के प्रतिकूल आहार विहार शरीर को रोगी बना देता है।

आयुर्वेद जीवन का वह विज्ञान है जिसमें मनुष्य की सुखायु को बढाने एवं दुखायु को कम करने हेतु उपदेश किया गया है। आयुर्वेद शास्त्र में मनुष्य की सुखायु को बढाने हेतु प्रत्येक ऋतु में शरीर में दोषों की स्थिति को स्पष्ट करते हुए इन दोषों को सम बनाये रखने हेतु करणीय कर्मों एवं पथ्य–अपथ्य आहार–विहार पर प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार उपरोक्त तथ्यों को जानने एवं समझने के उपरान्त आपके मन में वर्ष की अलग अलग ऋतुओं अर्थात ऋतुविभाजन के विषय में जानने की जिज्ञासा अवश्य ही उत्पन्न हुई होगी। इसके अतिरिक्त प्रत्येक ऋतु में उत्तम स्वास्थ्य हेतु करणीय व अकरणीय कर्मों अर्थात पथ्य–अपथ्य आहार–विहार को जानने की जिज्ञासा भी आपके

मन में अवश्य ही उत्पन्न हुई होगी। प्रस्तुत इकाई में इस विषय पर सविस्तार विचार किया गया है। इकाई में वर्ष की प्रत्येक ऋतु में मानव शरीर में त्रिदोषों की अवस्था को सम बनाने हेतु उपयुक्त आहार–विहार की व्याख्या की गयी है।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- ऋतुओं के वैज्ञानिक आधार का ज्ञान प्राप्त करोगें।
- वर्ष की षड्ऋतुओं का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेगें।
- ऋतुविभाजन की वैज्ञानिक स्तर पर विवेचना करने में सक्ष्म हो सकेगें।
- वर्ष में षड्ऋतुओं के काल को समझ पाओगें।
- षड्ऋतुओं में शरीर की स्थिति अर्थात शरीर में त्रिदोषों की अवस्था को जान पाओगें।
- षड्ऋतुओं के करणीय एवं अकरणीय कर्मों का विस्तारपूर्वक वर्णन कर सकेंगे।
- ऋतुचर्यापालन से स्वास्थ्य संर्वधन को जान पाओगें।
- प्रस्तुत इकाई के अन्त में प्रश्नों के उत्तर दे सकेंगे।

6.3 ऋतुविभाजन

प्रिय विधार्थियों, इस इकाई का प्रारम्भ ऋतु से होता है अतः सर्वप्रथम ऋतु को समझना ही आवश्यक है। वर्ष के एक छोटे कालखण्ड को ऋतु के नाम से जाना जाता है अर्थात ऋतु वर्ष का मौसम के आधार पर विभाजित समयान्तराल विशेष होता है। हमारे चारों और वायु की स्थिति बदलती रहती है। कभी वायु गर्म हो जाती है तो कभी वायु ठंडी हो जाती है और कभी वायु में नमी अर्थात आर्द्रता कम व अधिक हो जाती है। इसे समान्य भाषा में गर्मी, सर्दी एवं बरसात के नाम से जाना जाता है। वातावरण में वायु की स्थिर स्थिति की अवस्था विशेष को ऋतु कहा जाता है। सरल भाषा में वर्ष की वह समयावधि जिसमें वायु का तापमान एवं आर्द्रता एक निश्चित एवं निर्धारित स्थिति में रहती है, ऋतु कहलाती है। इस अवधि विशेष को मौसम के नाम से भी जाना जाता है। ऋतु के विषय में जानने के उपरान्त अब आपके मन में यह प्रश्न उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है कि वर्ष में अवस्था विशेष कौन कौन सी होती हैं जिन्हे ऋतु के नाम से जाना जाता है। इसके साथ साथ वर्ष में कितनी ऋतुएँ होती है और इन ऋतुओं का विभाजन किस प्रकार किया जाता है ? यह समझना आवश्यक है।

जैसा कि आपने पूर्व में जाना कि प्रकृति में वर्ष भर प्रतिक्षण परिर्वतन की क्रिया रहता है। इस परिर्वतन के परिणाम स्वरुप दिन और रात होते हैं। दिन और रात की अवधि, दिन और रात का तापमान, बारिश आदि की स्थिति भी प्रकृति के परिर्वतन का ही परिणाम होता है। ऋतुविभाजन भी प्रकृति के परिर्वतन का ही परिणाम है लेकिन प्रकृति में यह परिर्वतन क्यों होता है ? इस परिर्वतन का वैज्ञानिक आधार क्या होता है, यह विचारणीय विषय है अतः अब ऋतुविभाजन के वैज्ञानिक आधार पर विचार करते हैं –

6.3.1 ऋतुविभाजन की वैज्ञानिकता

प्रिय विधार्थियों, हमारी पृथ्वी एक गोल अण्डे के समान आकृति वाली रचना है जो अपने अक्ष पर घूर्णन गति करती रहती है। यह पृथ्वी अपने अक्ष पर घूर्णन करने के साथ साथ सौर मण्डल के आधार अर्थात सूर्य के चारों और बहुत तेज गति से परिक्रमा करती रहती है। पृथ्वी के अपने अक्ष पर घूर्णन के परिणाम स्वरुप दिन और रात उत्पन्न होते हैं। पृथ्वी के घूर्णन करने से पृथ्वी का एक उत्तरार्द्ध सूर्य के सामने होता है, इस भाग में सीधा सूर्य का प्रकाश पडता है। सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति के कारण इस उत्तरार्द्ध में दिन रहता है जबकि इसके विपरित इस स्थिति में पृथ्वी का दूसरा भाग अर्थात दक्षिणार्द्ध सूर्य से विपरित दिशा में जाता है। सूर्य से पीछे चले जाने के

कारण इस दक्षिणार्द्ध में सूर्य का प्रकाश अनुपस्थित रहता है। सूर्य के प्रकाश की अनुपस्थिति के कारण इस भाग में अंधकार अर्थात रात्रि काल होता है। पृथ्वी अपने अक्ष पर एक चक्कर चौबीस घटें में पूरा करती है जिसमें दिन और रात्रि दोनों काल सम्मिलित होते हैं। इस प्रकार पृथ्वी के अपने अक्ष पर घूर्णन करने से दिन और रात उत्पन्न होते हैं। दिन और रात के करणीय कर्मों के विषय में अर्थात दिनचर्या और रात्रिचर्या के विषय में आपने पूर्व इकाई में ज्ञान प्राप्त किया है। अब ऋतुओं की उत्पत्ति पर विचार करते हैं।

जिज्ञासु पाठकों, आपके लिए यह जानना आवश्यक है कि जिस पृथ्वी पर हम वास करते हैं वह भले ही देखने में सीधी और समतल प्रतीक होती हो किन्तु वास्तव में यह पृथ्वी अपने अक्ष पर एक और झुकी होती है। वैज्ञानिक गणना के अनुसार पृथ्वी की घूर्णन की धूरी इसके कक्षीय समतल से लम्बवत 23.4 डिग्री पर झुकी है। जिस कारण पृथ्वी का डी घूर्णन अक्ष इसके परिक्रमा पथ से बनने वाले समतल पर लगभग 66.5 अंश का कोण बनाता है। इसके परिणामस्वरुप पृथ्वी के उत्तरी अथवा दक्षिणी गोलार्द्ध में से कोई एक गोलार्द्ध सूर्य की और झुका होता है। सरल भाषा में पृथ्वी एक दिशा में सूर्य की और झुकी होती है। इस कारण पृथ्वी का एक भाग सूर्य के अधिक समीप एवं इसके विपरित पृथ्वी का दूसरा भाग तुलनात्मक रुप से पृथ्वी के अधिक दूर होता है। पृथ्वी का जो भाग सूर्य के अधिक समीप होता है, उस पर सूर्य की किरणों की व्रीवता अधिक होती है और इसके परिणाम स्वरुप वहॉ का तापक्रम अधिक होता है। इस प्रकार सूर्य के समीप आने वाले गोलार्द्ध में गर्मी की ऋतु पायी जाती है। इसके विपरित इस समय पृथ्वी का दूसरा गोलार्द्ध सूर्य से दूर होता है। सूर्य से दूर होने के कारण वहॉ पर सूर्य की किरणों की व्रीवता कम हो जाती है और इस कारण वहॉ का तापक्रम तुलनात्मक रुप से कम होता है। इस प्रकार इस गोलार्द्ध में सर्दी की ऋतु होती है।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि पृथ्वी के एक अंश विशेष पर झुके होने के कारण पृथ्वी की सूर्य से दूरी कम और अधिक होती रहती है। पृथ्वी की सूर्य से दूरी कम एवं अधिक होने के कारण तापमान की विभिन्नता पायी जाती है अर्थात अलग अलग ऋतुएँ बनती हैं। तात्पर्य यह है कि ऋतुविभाजन का मूल कारण पृथ्वी का एक अंश विशेष पर झुका होना होता है। यदि पृथ्वी किसी अंश विशेष पर ना झुककर अपने अक्ष पर बिल्कुल सीधा ही घूर्णन गति करती तब उस अवस्था में पृथ्वी की सूर्य से दूरी एक समान बनी रहती और पृथ्वी का तापमान एक समान बना रहता और पृथ्वी के पूरे भू भाग पर एक स्थिर तापमान पाया जाता और एक ही ऋतु वर्ष भर बनी रहती। पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा करने में एक वर्ष का समय लगता है अर्थात एक वर्ष में पृथ्वी पुनः उस स्थान पर पहॅच जाती है जहॉ से उसने परिक्रमा प्रारम्भ की थी। अब अपके मन में यह प्रश्न भी अवश्य ही उत्पन्न हुआ होगा कि यहॉ पर एक वर्ष से क्या अभिप्राय है अथवा एक वर्ष में कितने समय को माना गया है ? यहॉ पर एक वर्ष का अभिप्राय 365.26 सौर दिवसों से होता है अर्थात पृथ्वी 365.26 सौर दिवसों में सूर्य का एक चक्कर पूरा करती है।

प्रिय विधार्थियों, उपरोक्त अध्ययन से आपको यह तथ्य अवश्य ही स्पष्ट हुआ होगा कि पृथ्वी के अपने अक्ष पर घूर्णन करने से दिन और रात की उत्पत्ति होती है जबकि पृथ्वी के सूर्य के चारों और परिक्रमा करने से अलग अलग ऋतुएँ उत्पन्न होती है। अब अलग अलग ऋतुओं अर्थात ऋतुविभाजन के विषय में जानने के उपरान्त आपके मन में इस विषय को और अधिक गहराई से जानने की जिज्ञासा अवश्य ही बढ गयी होगी, अतः अब आयुर्वेद के अनुसार वर्ष की ऋतुओं के काल पर विचार करते हैं –

6.3.2 ऋतुविभाजन का काल

प्रिय विधार्थियों, वर्तमान समय में प्रचलित अग्रेंजी कलैण्डर से आप सभी भलि भंति परिचित होगें। वर्तमान समय में अग्रेंजी कलैण्डर का प्रयोग अत्यन्त व्यवहारिक रुप से समाज में किया जाता है। आपको अग्रेंजी कलैण्डर में वर्ष के जनवरी, फरवरी नामक

बारह महीनों का ज्ञान तो अवश्य ही होगा। अब आपके मन में आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार वर्ष के महीनों एवं ऋतुओं को जानने की जिज्ञासा भी अवश्य ही उत्पन्न हुई होगी। अग्रेंजी कलैण्डर और आयुर्वेद के ऋतुविभाजन में एक प्रमुख समानता यह है कि इन दोनों स्थानों पर वर्ष को बारह महीनों में बाटॉ गया है अर्थात प्राचीन आयुर्वेद शास्त्र में एक वर्ष को बारह माह और छह ऋतुओं (षढऋतुओं) में विभाजित किया जाता है। आयुर्वेद के महीनों को सामान्य भाषा में हिन्दी महिने कहा जाता है। प्रिय विधार्थियों, आपके अध्ययन में सुविधा के दृष्टिकोण से यहॉ पर आयुर्वेद के बारह हिन्दी माघों के काल का समन्वय अंग्रेजी महिनों के साथ किया जा रहा है। इसके साथ साथ इन महिनों में होने वाली ऋतुओं का वर्णन भी तालिकाबद्ध रुप में किया जा रहा है किन्तु यहॉ पर यह स्पष्ट करना भी अनिवार्य है कि हिन्दी माघों के साथ अग्रेंजी महिनों की तिथियों के काल में कुछ परिर्वतन संभव है यहॉ पर इनका सामान्य समन्वयात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है, जो इस प्रकार हैं –

क्रमांक	हिन्दी माघों के नाम	अग्रेंजी महिनों की तिथि	ऋतु का नाम
1	चैत माघ	16 मार्च से 15 अप्रैल	वसन्त ऋतु
2	वैशाख माघ	16 अप्रैल से 15 मई	वसन्त ऋतु
3	ज्येष्ठ माघ	16 मई से 15 जून	गीष्म ऋतु
4	अषाढ माघ	16 जून से 15 जुलाई	गीष्म ऋतु
5	श्रावण माघ	16 जुलाई से 15 अगस्त	वर्षा ऋतु
6	भाद्रपद माघ	16 अगस्त से 15 सितम्बर	वर्षा ऋतु
7	अश्विन माघ	16 सितम्बर से 15 अक्टूबर	शरद् ऋतु
8	कार्तिक माघ	16 अक्टूबर से 15 नवम्बर	शरद् ऋतु
9	मार्गशीर्ष माघ	16 नवम्बर से 15 दिसम्बर	हेमन्त ऋतु
10	पौष माघ	16 दिसम्बर से 15 जनवरी	हेमन्त ऋतु
11	माघ माघ	16 जनवरी से 15 फरवरी	शिशिर ऋतु
12	फाल्गुन माघ	16 फरवरी से 15 मार्च	शिशिर ऋतु

प्रिय विधार्थियों, हिन्दी नववर्ष का प्रारम्भ चैत माह एवं वसन्त ऋतु से होता है। यह वह काल है जिसमें प्रकृति पतझड की निन्द्रा से जागकर नवजीवन को प्राप्त करती है। इस काल में पेड–पौधे शीतकाल की निन्द्रा से जागकर, नयी ऊर्जा प्राप्त कर प्रस्फुटित होते हैं। इस प्रकार चैत माघ से नव वर्ष का प्रारम्भ होता है। इसके साथ साथ उपरोक्त तालिका के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि एक वर्ष में वसन्त, गीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर नामक छह ऋतुएँ होती है। इस छह ऋतुओं को समिलित रुप से षड्ऋतुओं की संज्ञा दी जाती है तथा ऋतुओं के उपरोक्त विभाजन को ऋतुविभाजन के नाम से जाना जाता है। अब इन ऋतुओं तथा इनमें आने वाले हिन्दी के महिनों पर संक्षेप में विचार करते हैं –

(क) वसन्त ऋतु : यह हिन्दी नववर्ष की प्रथम ऋतु होती है जिसका प्रारम्भ चैत माह से होता है। यह ऋतु चैत और वैशाख माह में होती है। अग्रेंजी कलैण्डर के महिनों की तिथियों के अनुसार इस ऋतु का काल सामान्यतया 16 मार्च से प्रारम्भ होकर 15 मई तक होता है। इस ऋतु का प्रारम्भ सर्दी की अधिकता से होता है, सामान्य रुप से यह काल गर्मी और सर्दी की समतुल्यता का काल है। इस काल में सुहावना मौसम बना रहता है। प्रकृति में पतझड के उपरान्त नवजीवन का प्रारम्भ इसी ऋतु से होता है। इस ऋतु को सभी ऋतुओं में मानते हुए ऋतुराज की संज्ञा से सुशोभित किया जाता है। इस ऋतु में धीरे धीरे सूर्य की रश्मियों की व्रीवता बढने लगती है। वसन्त ऋतु के पूर्ण होने तक गर्मी प्रकृति पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लेती है और मौसम गर्म रहने लगता है।

(ख) गीष्म ऋतु : यह वसन्त ऋतु के बाद की ऋतु होती है जिसका प्रारम्भ ज्येष्ठ माह से होता है। यह ऋतु ज्येष्ठ और अषाढ़ माह में होती है। अग्रेंजी कलैण्डर के महिनों के अनुसार गीष्म ऋतु का काल 16 मई से प्रारम्भ होकर 15 जुलाई तक होता है। वसन्त ऋतु से बढती गर्मी की प्रखरता इस ऋतु में अपने शीर्ष पर पहुॅच जाती है। इस ऋतु में वातावरण का तापमान अपने शिखर स्तर को प्राप्त करता है। इस समयावधि में सूर्य पृथ्वी के सबसे अधिक निकट होता है, सूर्य के अधिक निकट होने के कारण सूर्य की किरणों की प्रखरता अपनी चरम सीमा पर होती है और सूर्य की किरणें बिल्कुल सीधी होकर पृथ्वी पर पडती हैं जिससें इस काल में प्रचण्ड गर्मी पडती है। सूर्य की प्रचण्ड गर्मी से वायुमण्डल की वायु गर्म होकर लू में परिर्वतित हो जाती है। इस ऋतु में वातावरण में लू की प्रबलता होने से तेज गर्मी पडती है। वर्ष का सबसे लम्बी अवधि का दिन इसी ऋतु में पडता है। इस ऋतु में पडने वाला 21 जून का दिन वर्ष का सबसे बडा दिन होता है। इस समय दिन की अवधि सबसे बडी एवं रात्रि की अवधि सबसे छोटी होती है।

(ग) वर्षा ऋतु : यह गीष्म ऋतु के बाद की ऋतु होती है, जिसका प्रारम्भ श्रावण माह से होता है। यह ऋतु श्रावण और भाद्रपद माघ की ऋतु है। अग्रेंजी कलैण्डर के महिनों के अनुसार इस ऋतु का काल 16 जुलाई से प्रारम्भ होकर 15 सितम्बर तक होता है। गीष्म ऋतु में गर्मी की प्रखरता को वर्ष ऋतु के मेघ शान्त करते हैं। ग्रीष्म काल से उत्पन्न भूमि की तपन को वर्षा की ठंडी फुव्हारे शान्त करती है। इस काल में मेघों के बरसने से ठंडी हवाऍ वातावरण के ताप के कम करने का प्रयास करती हैं। इस काल में कभी वातावरण ठंडी तथा कभी उमस से परिपूर्ण हो जाता है। वर्षा ऋतु

के इस काल को चौमासे की संज्ञा भी दी जाती है क्योकि इस समय चार मासों– गर्मी, सर्दी, वर्षा और वसन्त का मौसम देखने को मिलता है। इस ऋतु में आसमान के साफ रहने पर जब सूर्य की सीधे किरणे पृथ्वी पर पडती हैं तब तेज गर्मी पडती है, आसमान जब मेघों से पूर्ण रुप से आच्छादित होकर से घिर जाता है और मेघों के बरसने के उपरान्त ठंडी हवाएँ चलती है तब ठंड के मौसम की अनुभूति होती है, मेघों के बरसने पर वर्षा का मौसम होता है और मेघों के बरसने के उपरान्त कुछ समय के लिए समशीतोष्ण अर्थात सुहावना मौसम बन जाता है। इस प्रकार इस ऋतु में चारों मौसम की अनुभूति होती है इसीलिए वर्षा ऋतु को चौमासा के नाम से भी जाना जाता है।

(घ) शरद् ऋतु : यह वर्षा ऋतु के बाद की ऋतु है जिसका प्रारम्भ अश्विन माह से होता है। यह ऋतु अश्विन और कार्तिक माह में होती है। अग्रेंजी कलैण्डर के महिनों के क्रम से इस ऋतु का काल 16 सितम्बर से प्रारम्भ होकर 15 नवम्बर तक होता है। वर्षा के जल से तृप्त होने के उपरान्त प्रकृति में शीतलता का समावेश हाने लगता है। इस काल में सूर्य की किरणों की व्रीवता कम होने लगती है और चन्द्रमा की शीतल रश्मियों की प्रखरता बढने लगती है परिणामस्वरुप वातावण में ठंड आने लगती है। इस ऋतु में भी वसन्त ऋतु के समान सुहावना मौसम बना रहता है। इस ऋतु के पूर्ण होने तक धीरे धीरे ठंड का आधिपत्य होने लगता है। इस ऋतु में दिन की अवधि कम होने लगती है और रात्रियॉ लम्बी होने लगती है। रात्रि काल में औस अधिक पडती है और रात्रिकाल में ठंड बढने लगती है।

(ड) हेमन्त ऋतु : यह शरद् ऋतु के बाद की ऋतु होती है जिसका प्रारम्भ मार्गशीर्ष माघ से होता है। यह ऋतु मार्गशीर्ष और पौष माघ में होती है। अग्रेंजी कलैण्डर के महिनों के क्रम से इस ऋतु का काल 16 नवम्बर से प्रारम्भ होकर 15 जनवरी तक होता है। यह दक्षिणायन की अन्तिम ऋतु होती है। इस ऋतु में ही सूर्य दक्षिणायन से उत्तरायण में प्रवेश कर जाता है। इस ऋतु में सूर्य पृथ्वी से अधिकतम दूरी पर होता है जिस कारण सूर्य की किरणों की प्रखरता न्यून स्तर पर होती है। सूर्य की किरणों में प्रखरता कम होने के कारण वातावरण में चारों और शीतलता छायी रहती है। इस काल में सूर्य तुषार से आच्छादित रहता है और वातावरण में कोहरा छाया रहता है। इस कारण शीत का प्रकोप और अधिक बढ जाता है तथा वायु मण्डल की वायु शीतल होकर शीतलहर में परिर्वतित हो जाती है। इस काल में वातावरण में शीतलहर का प्रकोप रहता है और पूरी प्रकृति शीतलता की चपेट में आकर सिकुड जाती है। इस काल में पेड पौधें, वनस्पतियॉ एवं अन्य जीव जन्तु शीत से बचने के लिए प्रकृति की गोद में अर्थात सुप्तावस्था में चले जाते हैं। इस ऋतु में कीट पतंगों आदि का प्रकोप न्यूनतम हो जाता है। रात्रिकाल में इस ऋतु में पाला भी पडने लगता है। पहाडों की चोटियों पर इसी ऋतु में हिमपात होता है। अन्य ऋतुओं की तुलना में इस ऋतु में दिन सबसे छोटे और रात्रियॉ सबसे लम्बी होती है।

(ढ) शिशिर ऋतु : यह हिन्दी वर्ष के क्रम में वर्ष की अन्तिम ऋतु होती है जिसका प्रारम्भ माघ माघ से होता है। यह ऋतु माघ और फाल्गुन माघ में होती है। अग्रेंजी कलैण्डर के महिनों के क्रम से इस ऋतु का काल 16 जनवरी से प्रारम्भ होकर 15 मार्च

तक होता है। इस ऋतु में सूर्य उत्तरायण में प्रवेश कर चुका होता है अतः सूर्य किरणों में प्रखरता आना प्रारम्भ हो जाती है। सूर्य किरणों में प्रखरता आने के कारण प्रकृति में शीत का प्रकोप कम होने लगता है। हेमन्त ऋतु में सुप्तावस्था में गये पेड पौधों एवं वनस्पतियों में पतझड प्रारम्भ हो जाता है। इस समयावधि में वातावरण कोहरे का प्रकोप अधिक रहता है।

इस प्रकार आयुर्वेद शास्त्र में सम्पूर्ण वर्ष को उपरोक्त छह ऋतुओं में विभाजित किया गया है। इन छह ऋतुओं में स्थूल रुप से शिशिर, वसन्त तथा गीष्म ऋतु उत्तरायण की ऋतुएँ है जबकि वर्षा, शरद एवं हेमन्त ऋतुएँ दक्षिणायन की ऋतुएँ हैं। इन अलग अलग ऋतुओं में मानव शरीर में त्रिदोषों की स्थिति परिवर्तित होती रहती है जिसका मनुष्य के स्वास्थ्य पर सीधा प्रभाव पडता है। किन्तु ये त्रिदोष क्या होते हैं ? और शरीर में किस रुप में और कहां पर रहते हैं। यह भी आपके लिए विचारणीय विषय है।

जिज्ञासु पाठकों, मानव शरीर में वात–पित्त–कफ नामक तीन दोष रहते हैं। शरीर को दूषित करने के कारण इन्हें दोष एवं संख्या में तीन होने के कारण इन्हे त्रिदोष की संज्ञा दी जाती है। मानव शरीर में इन त्रिदोषों की साम्यावस्था स्वास्थ्य का परिचायक होती है जबकि शरीर में इन दोषों की विषम अवस्था रोग का हेतु बन जाती है। मानव शरीर में त्रिदोष निम्न लिखित रुपों में उपस्थित रहते हैं –

(क) क्षय अवस्था : शरीर में दोष विशेष का स्थान विशेष पर एकत्र हो जाना दोष की क्षय अवस्था है। उदाहरण के लिए जोडों में वात दोष का एकत्र होना।

(ख) प्रकोप अवस्था : शरीर में दोष विशेष का बढ जाना दोष की प्रकुपित अवस्था है। इस अवस्था में शरीर में कोई दोष विशेष वृद्धि को प्राप्त हो जाता है। उदाहरण के लिए पित्त का प्रकुपित होकर त्वचा रोगों को उत्पन्न करना।

(ग) प्रशमन अवस्था : शरीर में दोष विशेष का घट जाना दोष की प्रशमन अवस्था है। इस अवस्था में शरीर में कोई दोष विशेष कमजोर हो जाता है। उदाहरण के लिए कफ दोष का प्रशमन होने पर शरीर बलहीन होना।

(घ) साम्यावस्था अवस्था : शरीर में स्थित तीनों दोषों का सम स्थिति में बने रहना दोषों की साम्यावस्था कहलाती है अर्थात वह अवस्था जिसमें शरीर में वात–पित्त–कफ नामक तीनों दोष सम मात्रा में उपस्थित होते हैं, वह दोषों की साम्यावस्था कहलाती है।

शरीर में दोषों की उपरोक्त प्रथम तीन अवस्थाएँ रोग की अवस्था हैं, इन तीनों अवस्थाओं में शरीर अलग अलग प्रकार के रोगों से ग्रस्त रहता है जबकि तीन अवस्थाओं से भिन्न चौथी साम्यावस्था में शरीर स्वस्थ बना रहता है किन्तु यह कैसे जाने कि शरीर में दोष किस अवस्था में विद्यमान है ? यह एक विचारणीय प्रश्न है।

प्रिय विधार्थियों, यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि मानव शरीर में त्रिदोष सदैव गतिमान बने रहते हैं अर्थात बदलते रहते हैं। शरीर में इन दोषों की गति बहुत जटिल एवं गहन होती है जिसे जानना भी कठिन होता है। आयुर्वेद शास्त्र में स्पष्ट किया गया कि बुद्धिमान पुरुष को सदैव अपने शरीर में दोषों की गति पर ध्यान रखना चाहिए। मनुष्य को अपने शरीर में वात–पित्त–कफ दोषों की अवस्था को जानने का प्रयास सतत करते रहना चाहिए क्योकि ये त्रिदोष मानव के स्वास्थ्य को सीधे सीधे प्रभावित करते हैं। अब यह जानना भी आवश्यक हो जाता है कि इन दोषों की गति को क्या क्या कारक प्रभावित एवं निर्धारित करते हैं। मनुष्य का आहार विहार शरीर के दोषों को प्रभावित करते हैं। प्रत्येक ऋतु शरीर के इन दोषों पर अलग अलग प्रभाव डालती है। शरीर में दोषों को सम अवस्था में बनाए रखने के उद्देश्य से ऋतुचर्या का उल्लेख किया गया है। यहॉ पर अध्ययन का प्रमुख विषय ऋतुएँ एवं उनकी चर्या है। किस ऋतु में कैसा आहार एवं विहार ग्रहण करें जिससे कि शरीर में त्रिदोष साम्यावस्था में बने रहे ? यह अध्ययन का प्रमुख विषय है अतः अब इस विषय पर विचार करते हैं –

6.4 षड् ऋतुओं की चर्या

प्रिय विधार्थियों, इस प्रकार आपने वर्ष की छह ऋतुओं के विषय में जाना। वर्ष की इन छह ऋतुओं को सम्मिलित रुप से षड्ऋतुओं की संज्ञा दी जाती है। चर्या का अर्थ आचरण अथवा व्यवहार से होता है अर्थात इन छह ऋतुओं में किए जाने वाले वाला ऐसा आचरण जिसका मनुष्य के स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रडता है और जिससे मनुष्य का स्वास्थ्य उन्नत अवस्था में बना रहे, षड्ऋतुचर्या कहलाता है। वर्ष की इन षड्ऋतुओं की चर्या इस प्रकार है –

6.4.1 वसन्त ऋतु की चर्या (16 मार्च से 15 मई)

प्रिय विधार्थियों, वसन्त ऋतु शिशिर ऋतु के पश्चात आती है। शिशिर ऋतु में स्निग्ध आहार का अधिक सेवन करने से शरीर में कफ का संचय हो जाता है। वसन्त ऋतु में जब सूर्य रश्मियां व्रीव होने लगती है तब यह संचित कफ इन रश्मियों से तृप्त होकर जल स्वरुप होने लगता है। कफ का यह जल स्वरुप जठराग्नि को मंद कर देती है। इस काल में जठराग्नि के मंद होने से अनेक प्रकार के रोगों की उत्पत्ति होती है। खाँसी, जुकाम, नजला, दमा, टॉसिल्स आदि इस काल के प्रमुख्ख रोग हैं। इस ऋतु में कफ निःसारक औषधियों का सेवन करना चाहिए। इस काल में यौगिक षट्कर्मों के अभ्यास द्वारा शरीर का शोधन करना चाहिए। इस ऋतु में शंखप्रक्षालन क्रिया के द्वारा भी शरीर शोधन करने का उपदेश यौगिक शास्त्रों में किया गया है।

वसन्त ऋतु में प्रातः एवं सायंकाल शीतल एवं सुगंधित वायु बहती है अतः इन दोनों कालों में भ्रमण करने का उपदेश करते हुए कहा गया –

वसन्ते भ्रमणे पथ्ये।

अथार्त वसन्त ऋतु में भ्रमण करना हितकारी होता है।

इस ऋतु में रुखे, कषैले, तिक्त रसों का सेवन करना चाहिए। वसन्त ऋतु में मधु के साथ हरितकी चूर्ण का सेवन करना चाहिए। सोंठ के क्वाथ का सेवन करना चाहिए। मधु मिश्रित जल तथा नागरमोथा से बना क्वाथ हितकारी है। इस ऋतु में सूर्योदय पूर्व भ्रमण करना चाहिए तथा साफ स्वच्छ श्वेत वस्त्रों को धारण करना चाहिए।

वसन्त ऋतु में मधुर, अम्लीय, स्निग्ध तथा गरिष्ठ आहार का सेवन त्याज्य है। शीत वातदोष प्रधान भोज्य पदार्थों जैसे आलू, अरवी, कचालू, उदड, खट्टे खाद्य पदार्थ जैसे इमली, अमचूर एवं गुड–शक्कर, दूध से बने रबडी, मलाई आदि का सेवन नही करना चाहिए। इस ऋतु में भोजन के अंत तथा रात्रिकाल में दही का सेवन नही करना चाहिए। वसन्त ऋतु में दिन में सोना निषिध कर्म है एवं रात्रिकाल में ओस में नही सोना चाहिए।

6.4.2 ग्रीष्म ऋतु की चर्या (16 मई से 15 जुलाई)

प्रिय विधार्थियों, जैसा कि इकाई में पूर्व में स्पष्ट किया गया है कि इस काल में सूर्य पृथ्वी के सबसे अधिक निकट होता है और सूर्य की किरणें बिल्कुल सीधी होकर पृथ्वी पर पडती हैं इस कारण इन किरणों की तीक्ष्णता बहुत अधिक होती है और इस ग्रीष्म ऋतु की ये किरणें प्राणियों के बल एवं प्रकृति की आर्द्रता को शोषित कर लेती हैं। वसन्त ऋतु में जल स्वरुप में परिवर्तित हुआ कफ इस ऋतु में क्षीण पड जाता है और कफ दोष के क्षीण पडने से वात दोष वृद्धि को प्राप्त होता है। गीष्म ऋतु में वात दोष से संबधी रोग जैसे जोडों में दर्द, गठिया आदि वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

गीष्म ऋतु में जौ, गेहूँ, शालि चावल, चौलाई, मटर, अरहर, खीरा, तरबूज, ककडी, पेठा, करेला, बथुआ, घिया तथा परवल आदि मधुर रस युक्त शीतल प्रकृति के खाद्य पदार्थों का सेवन करना चाहिए। ग्रीष्म ऋतु में मिश्रीयुक्त दूध तथा खाँडयुक्त दही या मठ्ठे से बनी लस्सी, नारियल पानी का सेवन हितकारी होता है। इस ऋतु में ताजे भोजन का ही सेवन करना चाहिए। इस ऋतु में पेडों की सघन छॉव में वास करना एवं शीतल जल से स्नान करना चाहिए। ग्रीष्म ऋतु में दोपहर में कुछ समय के लिए शयन करना चाहिए। दिन में शयन करने से कफ दोष वृद्धि को प्राप्त होता है, चूंकि ग्रीष्म ऋतु में

कफ दोष क्षीण हो जाता है अतः दिन में शयन करने से इस दोष को बल मिलता है। इस ऋतु में गुड के साथ हरितकी का सेवन करना चाहिए।

ग्रीष्म ऋतु अधिक लवणयुक्त एवं कटु आहार का सेवन नही करना चाहिए। इस ऋतु में खट्टे अमचूर, इमली आदि, भारी तले मिर्च मसालेदार पदार्थ जैसे सरसों–राई का शाक, तिल आदि का तेल, बैगन तथा उदड आदि, शहद, खोया से बने पदार्थ, लाल मिर्च तथा बर्फ का सेवन वर्जित है। इस काल में प्यास लगने पर फ्रिज के ठंडे जल का सेवन नही करना चाहिए अपितु मिट्टी से बने घडे अथवा सुराही में रखे ठंडे जल का सेवन करना चाहिए। रात्रिकाल में पंखे, कूलर तथा ए0सी0 के स्थान पर हवादार छत पर चन्द्रमा की शीतल चाँदनी में चन्दन आदि शीतल द्रव्यों का लेप करके शयन करना चाहिए। रात में अधिक देर तक जागना, दिन की दोपहर में धूप में अधिक समय रहना, सिर पर धूप लेना, अधिक शारीरिक श्रम, अधिक व्यायाम, गरिष्ठ भोजन एवं स्त्री सहवास गीष्म काल में वर्जित है।

6.4.3 वर्षा ऋतु की चर्या (16 जुलाई से 15 सितम्बर)

प्रिय विधार्थियों, इस ऋतु का प्रारम्भ विसर्ग काल से होता है। चूंकि इस ऋतु में वर्षा होती है और वर्षा के कारण वायु वाष्पयुक्त नम एवं जल दूषित हो जाता है। इस ऋतु में वातावरण में अनेक प्रकार के रोगाणु तेजी से पनपते हैं जो रोगोत्पति का कारण बनते हैं। इस ऋतु में संक्रामक रोग जैसे पेचिश, उल्टी, मलेरिया, दाद, खाज, खुजली तेजी से फैलते हैं, इन रोगों से बचने के लिए इस ऋतु में स्वच्छता का विशेष ध्यान रखना चाहिए। इस ऋतु में शरीर में स्थित पित्त दोष एवं जठराग्नि मंद हो जाती है। वर्षा के जल एवं अन्य कारणों से कफ एवं वायु दोष विकृत अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार इस ऋतु में दो अथवा तीनों दोषों की विकृति से उत्पन्न रोग होने लगते हैं अतः इस काल में त्रिदोषों को साम्यावस्था में बनाए रखना कठिन हो जाता है। इस काल में शरीर में त्रिदोषों की गति को जानकर ही आहार विहार करना चाहिए।

वर्षा ऋतु में पित्त दोषवर्धक एवं वात दोष नाशक आहार का सेवन करना चाहिए। आयुर्वेद शास्त्र में इस काल में पाचक औषधियों द्वारा विरेचन कर्म का निर्देश भी दिया गया है। इस ऋतु में पुराना अनाज जैसे गेहूँ, जौ, शालि चावल आदि, गरम दूध, खीरा, लौकी, तुराई, भिण्डी, टमाटर, पुदीना, करैला, तुराई, नींबू, अंजीर, खजूर, आम, पका जामुन, परवल, गुड, छाछ आदि भोज्य पदार्थों का सेवन करना चाहिए। इस ऋतु में आम तथा दूध का सेवन करना चाहिए। वर्षा ऋतु में जल को उबालकर पीना चाहिए। वर्षा ऋतु में सेंधा नमक के साथ हरड का सेवन करना चाहिए।

इस ऋतु में नदी के जल का सेवन, नदी तट का वास, जलयुक्त सत्तू, धूप एवं रुक्ष द्रव्यों का सेवन वर्जित है। इस ऋतु में धूप का सेवन तथा ओस में बैठना अहितकर होता है। वर्षाकाल में सीलनयुक्त स्थानों में नही रहना चाहिए, नमीयुक्त बिस्तरों एवं कपडों का प्रयोग नही करना चाहिए। इसके साथ साथ स्वच्छता का विशेष ध्यान रखते हुए फलों एवं सब्जियों को प्रयोग करने से पूर्व अच्छी प्रकार धो लेना चाहिए। एक सामाजिक लोकोक्ति के अनुसार श्रावण मास में दूध, भाद्रपद में छाछ, क्वॉर मास में करेला तथा कार्तिक मास में दही का सेवन नही करना चाहिए।

6.4.4 शरद् ऋतु की चर्या (16 सितम्बर से 15 नवम्बर)

जिज्ञासु पाठकों, शरद् ऋतु आकाश साफ स्वच्छ एवं प्रकृति निर्मल हो जाती है। इस ऋतु में तालाब कमल एवं हंसों से युक्त हो जाते हैं। वर्षा की समाप्ति होने पर नदियों का जल स्वच्छ हो जाता है। दिन में सूर्य की रश्मियों से तृप्त एवं रात्रिकाल में चन्द्रमा की रश्मियों से शीतल होकर वातावरण अमृतमय हो जाता है। इस ऋतु में ही अगस्त्य तारा उदय होता है। शरद् ऋतु में सूर्य की उष्ण किरणों के प्रभाव से वर्षा ऋतु में संचित कफ प्रकुपित हो जाता है। इसके साथ साथ चूंकि वर्षा ऋतु में वात विकारों से बचने के लिए उष्ण प्रकृतियुक्त खाद्य पदार्थों का अधिक सेवन पर बल दिया जाता है

किन्तु इसके परिणाम स्वरुप शरीर में पित्त दोष का संचय हो जाता है। इस ऋतु में निम्न चर्या का पालन करना चाहिए।

शरद् ऋतु में तिक्त द्रव्य, घृत सेवन, विरेचन अर्थात दस्तावर औषधियों का सेवन तथा रक्तमोक्षण अर्थात शरीर से दूषित रक्त के निष्कासन की क्रिया हितकारी है। इस ऋतु में मधुर तिक्त, कसाय रस, शीतल तथा लघु आहार जैसे मीठा दूध, मिश्री, मूँग, शालिचावल, धनिया, सैधव नमक, मुनक्का, परवल तथा कमलनाल आदि का सेवन हितकर होता है। इस ऋतु में चौलाई, बथुआ, लौकी, तुराई, मूली, पालक, आँवला, अनार एवं सिंघाडा का सेवन करना चाहिए।

इस ऋतु में उष्ण प्रकृतियुक्त पित्त प्रधान भोज्य पदार्थों का सेवन नही करना चाहिए। शरद् ऋतु में पिप्पिली, काली मिर्च, सौंफ, हींग, लहसुन, सरसों का साग, तक्र (मठ्ठा), दही, बैगन, करैला, खिचडी, सरसों का तेल, गुड आदि पदार्थों का सेवन छोड देना चाहिए। इस ऋतु में अच्छी प्रकार भूख लगने पर ही भोजन करना चाहिए।

6.4.5 हेमन्त ऋतु की चर्या (16 नवम्बर से 15 जनवरी)

हेमन्त ऋतु में वातावरण में धुंध और कोहरे की अधिकता हो जाती है। शीतल वायु चलती है और दिन छोटे व रात्रियाँ लम्बी होने लगती है। वर्ष का सबसे छोटा दिन 21 दिसम्बर इसी ऋतु में पडता है। हेमन्त ऋतु में वात दोष का प्रकोप एवं कफ दोष का संचय होता है अतः इस ऋतु में वात का शमन करने हेतु गुरु आहार का सेवन करना चाहिए। इस ऋतु में मधुर, स्निग्ध, अम्ल एवं लवणयुक्त द्रव्यों का सेवन करना चाहिए। हेमन्त ऋतु में शीतल वायु के स्पर्श से जठराग्नि ग्रीव और गरिष्ठ एवं गुरु आहार को पचाने में सक्ष्म हो जाती है अतः इस ऋतु में गरिष्ठ एवं गुरु आहार द्रव्यों का सेवन करना चाहिए। इसके विपरित यदि इस ऋतु में लघु आहार का सेवन किया जाए तब प्रबल जठराग्नि शरीर के धातु रस का ही पाचन करना प्रारम्भ कर देती है और इसके परिणाम स्वरुप वायु दोष कुपित हो जाता है। इस ऋतु में दूध, दूध से बने पदार्थ, ईख से बनने वाली शर्करा, गुड, खाण्ड, राब व मिश्री आदि, घृत, तेल से बने पदार्थ, नये चावलों का भात, उदड की दाल का सेवन करना चाहिए। हेमन्त ऋतु में गर्म जल का सेवन स्वास्थ्यकर रहता है। इस ऋतु में सोंठ के साथ हरड का सेवन करना चाहिए।

इस ऋतु में प्रातःकाल तेल की मालिश एवं स्निग्ध पदार्थों का शरीर पर उबटन करना चाहिए। यथावश्यक धूप का सेवन शरीर एवं स्वास्थ्य पर लाभकारी प्रभाव रखता है। यह ऋतु श्रेष्ठ शारीरिक बल की ऋतु है जिसमें कठोर श्रम, तेल मालिश, केसर तथा कस्तूरी का लेप हितकारी प्रभाव रखता है। इस ऋतु में रात्रिकाल में ठंड के प्रकोप से बचने के लिए उष्ण गृहों में शयन करना चाहिए एवं शयन में ऊनी गर्म कपडों का प्रयोग करना चाहिए।

इस ऋतु में कषैला, कटु, तिक्त, रुक्ष अन्न से बना भोजन, हल्का आहार जैसे तुराई, आलू, आदि, शीतल जल में स्नान, दिन में निन्द्रा तथा ठंडे स्थान पर वास को त्याग देना चाहिए। इस ऋतु में भूखा रहना अथवा अल्प मात्रा में भोजन करना वर्जित कर्म है जिसके अधिक नकारात्मक परिणाम प्राप्त होते हैं।

6.4.6 शिशिर ऋतु की चर्या (16 जनवरी से 15 मार्च)

शिशिर ऋतु में वातावरण में ठंड के साथ साथ वर्षा एवं कोहरे की अधिकता हो जाती है। इस ऋतु में भूमि पर घास पीतवर्ण हो जाती है। इस काल शीतल वायु चलती है और शीतल वायु के प्रभाव से कफ विकार उत्पन्न होते हैं। स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से यह ऋतु उत्तम स्वास्थ्य वाली मानी जाती है। इस ऋतु में बाह्य शीत के कारण आन्तरिक जठराग्नि वृद्धि को प्राप्त रहती है अतः इस ऋतु में पौष्टिक आहार का सेवन करना चाहिए।

शिशिर ऋतु में सुगन्धित चटनी, जिमीकन्द, पिट्ठी की बनी पकौडी, अदरक का अचार, आवलें का मुरब्बा, तिल, गुड, नारियल, खजूर, हींग, सैन्धव नमक, घृतयुक्त स्निग्ध भोजन, खिचडी, पौषक तत्वों युक्त पौष्टिक आहार का सेवन करना चाहिए। चूंकि इस

काल में जठराग्नि व्रीव रहती है अतः इस समय रात्रिकाल में चने को भिगोकर प्रातःकाल सेवन करना चाहिए। इस ऋतु में शारीरिक बल उन्नत स्थिति में रहता है अतः इस ऋतु में शारीरिक श्रम एवं कठिन आसनों का अभ्यास करना चाहिए। सूर्यनमस्कार आदि योगासनों एवं ऊर्जा प्रदान करने वाले प्राणायामों का अभ्यास इस ऋतु में करना चाहिए इससे स्वास्थ्य उत्तम अवस्था में बना रहता है। इस ऋतु में कठोर शारीरिक श्रम के साथ साथ शरीर को बलवान बनाने हेतु मालिश करनी चाहिए। इस ऋतु में धूप सेवन एवं प्रातःकाल सूर्य स्नान लाभकारी करणीय कर्म हैं।

इस ऋतु में सुबह देर तक सोना, दिन में सोना, ठंडे जल सेवन, ठंडी वायु का सेवन, उपवास, बासी आहार का सेवन, लघु एवं शीत प्रकृति प्रधान आहार का सेवन त्याज्य है।

इस प्रकार उपरोक्त चर्या का पालन करने से शरीर में वात–पित्त–कफ दोष साम्यवस्था में बने रहते हैं और स्वास्थ्य उन्नत अवस्था में बना रहता है। आचार्यो ने विभिन्न ऋतुसंधियों के लिये विशेष आहार–विहार की कल्पना की है, जिसे ऋतुचर्या की संज्ञा दी जाती हैं।

अभ्यास हेतु प्रश्न –

1– **सत्य / असत्य**

(क) ऋतुविभाजन का मूल कारण पृथ्वी का अपने अक्ष पर घूर्णन गति करना होता है।

(ख) ग्रीष्म ऋतु में सूर्य पृथ्वी के सबसे अधिक दूर होता है।

(ग) पृथ्वी के एक अंश विशेष पर झुके होने के कारण पृथ्वी की सूर्य से दूरी कम और अधिक होती रहती है।

(घ) ऋतुचर्या के अनुसार 25 दिसम्बर वर्ष का सबसे बडा दिन होता है।

(ड) शरद् ऋतु में उष्ण प्रकृतियुक्त पित्त प्रधान भोज्य पदार्थों का सेवन नही करना चाहिए।

2– रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

(क) वर्ष के एक छोटे कालखण्ड को ––––– के नाम से जाना जाता है।

(ख) ––––––– ऋतु को ऋतुराज की संज्ञा से सुशोभित किया जाता है।

(ग) पृथ्वी ––––––– सौर दिवसों में सूर्य का एक चक्कर पूरा करती है।

(घ) वर्षा ऋतु में ———— दोषवर्धक एवं ––––––– दोष नाशक आहार का सेवन करना चाहिए।

(ड) ऋतुचर्यानुसार ––––––– ऋतु में दोपहर में शयन करना चाहिए।

3– **एक शब्द में उत्तर दीजिए –**

(क) 16 नवम्बर से 15 जनवरी तक कौन ऋतु होती है ?

(ख) वैज्ञानिक गणना के अनुसार पृथ्वी की घूर्णन की धूरी इसके कक्षीय समतल से लम्बवत कितने डिग्री पर झुकी है ?

(ग) अगस्त्य तारा किस ऋतु में उदय होता है।

(घ) किस ऋतु में यौगिक षट्कर्मों एवं शंख प्रक्षालन क्रिया के अभ्यास द्वारा शरीर का शोधन करना चाहिए?

(ड) शरीर में वात–पित्त–कफ नामक तीनों दोषों की सम मात्रा उपस्थिति क्या अवस्था कहलाती है ?

4–बहुविकल्पीय प्रश्न –

(क) हमारी पृथ्वी किसके समान आकृति वाली है –

(a) गोल गेंद के समान (b) अंडे के समान

(c) पिरामिड के समान (d) समतल प्लेट के समान।

(ख) वर्ष का सबसे छोटा दिन 21 दिसम्बर किस ऋतु में पडता है –

(a) हेमन्त (b) शिशिर

(c) शरद् (d) वसन्त ।

(ग) किस ऋतु में भ्रमण करना हितकारी होता है –

(a) वसन्त (b) वर्षा

(c) गीष्म (d) हेमन्त ।

(घ) हिन्दी नववर्ष का प्रारम्भ किस माघ से होता है –

(a) सावन (b) कार्तिक

(c) चैत (d) ज्येष्ठ ।

(ड) सुगन्धित चटनी, जिमीकन्द, अदरक का अचार, आवलें का मुरब्बा, तिल, गुड, खजूर, घृतयुक्त स्निग्ध भोजन, खिचडी आदि पौषक तत्वों युक्त पौष्टिक आहार का सेवन किस करना चाहिए –

(a) वसन्त (b) वर्षा

(c) गीष्म (d) शिशिर ।

6.5 सारांश–

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत इकाई का प्रारम्भ ऋतु के अर्थ को स्पष्ट करते हुए किया गया है। इकाई में स्पष्ट किया गया है कि प्रकृति में प्रतिक्षण परिर्वतन चलता है जिसमें ऋतु वर्ष का वह विभाजित कालखण्ड विशेष होता है जिसमें वातावरण में वायु का तापमान, आर्द्रता आदि दशाएँ निर्धारित एवं निश्चित अवस्था में रहती हैं। यहॉ पर ऋतुविभाजन की व्याख्या वैज्ञानिक आधार पर की गयी है। इकाई में स्पष्ट किया गया है कि पृथ्वी जो अण्डे के समान आकृति वाली है, अपने अक्ष पर घूर्णन गति करती है तथा साथ ही साथ सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करती रहती है। पृथ्वी के अपने अक्ष पर घूर्णन गति के परिणाम स्वरुप दिन और रात तथा सूर्य की परिक्रमा के परिणाम स्वरुप अलग अलग ऋतुओं की उत्पत्ति होती है। यहॉ पर वर्ष के बारह महिनों एवं छह ऋतुओं का वर्णन किया गया है।

इकाई में वसन्त, गीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर नामक छह ऋतुओं के कालों को समझाया गया है। तत्पश्चात् इन छह ऋतुओं के करणीय एवं अकरणीय कर्मों की सविस्तार व्याख्या की गयी है। इकाई में इन छह ऋतुओं में शरीर में वात–पित्त–कफ नामक त्रिदोषों की अवस्था को समझाते हुए ऋतुनुकूल पथ्य एवं अपथ्य आहार की व्याख्या की गयी है। इकाई में शरीर में त्रिदोषों की साम्यावस्था बनाने हेतु अनुकूल आहार–विहार पर प्रकाश डाला गया है। इसके साथ साथ ऋतुनुसार अकरणीय कर्मों का वर्णन करते हुए इकाई को पूर्ण किया गया है।

6.6 पारिभाषिक शब्दावली–

घूर्णन गति	एक अक्ष के चारों ओर रहकर
परिक्रमा करना	केन्द्र बिन्दु के चारों ओर घूमना
आर्द्रता	वायु में जल की मात्रा
प्रस्फुटित	उत्पन्न होना, बाहर निकलना
आधिपत्य	प्रभाव
शिखर स्तर	उच्चतम् चोटी पर
प्रचण्ड	अधिकतम व्रीव अवस्था
प्रखरता	तेज, चमक
आच्छादित	ढकना
समशीतोष्ण	गर्मी और सर्दी की समान अवस्था
प्रकोप	प्रभाव का भय, डर (नकारात्मक दृष्टिकोण)
निःसारक	प्रभावहीन करना, बाहर निकालना
लघु आहार	जल्दी पचने वाला भोजन

6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क.	असत्य	क.	ऋतु	क.	हेमन्त	क.	b
ख.	असत्य	ख.	वसन्त	ख.	23.4	ख.	a
ग.	सत्य	ग.	365.25	ग.	शरद्	ग.	a
घ.	असत्य	घ.	पित्त, वात	घ.	वसन्त	घ.	c
ड.	सत्य	ड.	गीष्म	ड.	साम्यावस्था	ड.	d

6.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 प्रो0 रामहर्ष सिंह – स्वस्थवृत्त विज्ञान – चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।

2 कल्याण आरोग्य अंक (जनवरी एवं फरवरी 2001 ई0) – गीता प्रेस, गोरखपुर।

3 आचार्य बालकृष्ण – आयुर्वेद सिद्धान्त रहस्य, दिव्य प्रकाशन, दिव्य योग मन्दिर ट्रस्ट, हरिद्वार। (संस्करण फरवरी 2007)।

4 ब्रह्मवर्चस – आयुर्वेद का दर्शन, क्रिया शारीर एवं स्वस्थ वृत्त, श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट, शांतिकुँज, हरिद्वार। (छटा संस्करण 2010)

6.9 निबन्धात्मक प्रश्न–

1. ऋतुचर्या को स्पष्ट करते हुए ऋतुचर्या का सविस्तार व्याख्या किजिए।
2. ऋतुचर्या के करणीय एवं अकरणीय कर्मों को सविस्तार लिखिए।
3. आयुर्वेद के अनुसार ऋतुविभाजन पर प्रकाश डालिए।
4. ऋतुचर्या पर एक निबन्ध लिखिए।

इकाई 7 : आदान एवं विसर्ग काल में शारीरिक बलाबल की स्थिति

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 आदान एवं विसर्ग काल का परिचय
7.4 आदान एवं विसर्ग काल की वैज्ञानिकता
7.5 आदान काल में शारीरिक बलाबल की स्थिति
7.5.1 शिशिर ऋतु में शारीरिक बलाबल की स्थिति
7.5.2 वसन्त ऋतु में शारीरिक बलाबल की स्थिति
7.5.3 ग्रीष्म ऋतु में शारीरिक बलाबल की स्थिति
7.5.4 वर्षा ऋतु में शारीरिक बलाबल की स्थिति
7.5.5 शरद् ऋतु में शारीरिक बलाबल की स्थिति
7.5.6 हेमन्त ऋतु में शारीरिक बलाबल की स्थिति
7.6 सारांश
7.7 पारिभाषिक शब्दावली
7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
7.10 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

प्रिय विधार्थियों, आपने पूर्व की इकाई में आपने वर्ष की छह ऋतुओं एवं उनकी चर्या के विषय में जाना। इसके साथ साथ आपने यह भी ज्ञान प्राप्त किया कि किस ऋतु में किन किन आहार द्रव्यों का सेवन करना चाहिए। पूर्व की इकाई में आपने वर्ष की छह ऋतुओं की चर्याओं अर्थात आहार विहार का अध्ययन किया। ऋतुओं की चर्या के विषय में जानने के उपरान्त अब इन ऋतुओं में शरीर में बलाबल की स्थिति को जानना भी आवश्यक हो जाता है क्योंकि अलग अलग ऋतुओं में शरीर में बलाबल की स्थिति बदलती रहती है। आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार मानव शरीर में वात–पित्त–कफ नामक त्रिदोषों एवं रस–रक्त आदि धातुओं का अन्तिम सार बल अथवा शक्ति है। विभिन्न ऋतुओं में हमारे शरीर में दोषों एवं धातुओं की स्थिति बदलती रहती है। शरीर में दोषों एवं धातुओं की सम अवस्था रहने पर शरीर स्वस्थ, बलवान एवं ऊर्जावान बना रहता है जबकि इसके विपरित इन दोषों एवं धातुओं की विषम अवस्था होने पर शरीर रोगी, बलहीन एवं ऊर्जाहीन हो जाता है। शरीर में इन दोषों, धातुओं आदि की सम और विषम अवस्था कैसे होती है अथवा इनकी अवस्था को सम और विषम बनाने में कौन कौन से कारक भूमिका निभाते हैं, यह विचारणीय प्रश्न है। प्रिय विधार्थियों, हमारा आहार–विहार शरीर के त्रिदोषों, धातुओं, अग्नियों एवं मलों के व्यापार को सम एवं विषम बनाने में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आहार से अर्थ मुख द्वारा ग्रहण किए जाने वाले भोज्य पदार्थों से होता है जिनका शरीर के त्रिदोषों पर सीधा प्रभाव पडता है। वात–पित्त–कफ प्रकृति प्रधान आहार का सेवन करने से शरीर में उस दोष को बल मिलता है एवं वह दोष वृद्धि को प्राप्त हो जाता है।

विहार से तात्पर्य हमारी चर्या एवं आस पास के वातावरण से होता है। प्रायः सुनने में आता है कि सर्दी की ऋतु में कफ दोष से सम्बन्धित रोग अधिक उत्पन्न होते हैं, इसी प्रकार गीष्म ऋतु में वात रोग एवं वर्षा ऋतु में पित्त दोष से सम्बन्धित रोग अधिक उत्पन्न होते हैं, शरीर में दोषों की इन अवस्थाओं से का धातुओं पर भी सीधा प्रभाव पडता है और यहीं से शरीर में बलाबल की स्थिति नियंत्रित होती है। दूसरे शब्दों में अलग अलग ऋतुओं में शरीर में बलाबल की स्थिति बदलती रहती है। यहॉ पर आदान और विसर्ग काल की तीन–तीन ऋतुओं में शरीर में बलाबल की स्थिति पर विचार किया जायेगा। इसके साथ साथ किस काल में शारीरिक बल श्रेष्ठ तथा किस ऋतु में शारीरिक बल हीन रहता है, इन बिंदुओं की सविस्तार व्याख्या की जायेगी। इन बिंदुओं

को जानने एवं समझने के उपरान्त आप आदान एवं विसर्ग काल में शारीरिक बल की स्थिति के अनुसार कार्य करते हुए अपने स्वास्थ्य को उन्नत स्थिति में बनाए रखने में सक्ष्म होगें।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- आदान एवं विसर्ग काल के वैज्ञानिक आधार का ज्ञान प्राप्त करोगें।
- आदान एवं विसर्ग काल की ऋतुओं का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेगें।
- आदान एवं विसर्ग काल की ऋतुओं में शारीरिक बलाबल की स्थिति को जान पाओगें।
- शारीरिक बलाबल के अनुसार आदान एवं विसर्ग काल के करणीय कर्मों एवं पथ्य आहार का वर्णन कर सकेंगे।
- ऋतुनुसार स्वास्थ्य संर्वधन को जान पाओगें।
- प्रस्तुत इकाई के अन्त में प्रश्नों के उत्तर दे सकेंगे।

7.3 आदान एवं विसर्ग काल का परिचय

आदान का सामान्य अर्थ देने से और विसर्ग का अर्थ लेने से होता है। आदान और विसर्ग काल को सूर्य और प्रकृति के सम्बन्ध के आधार पर विभाजित किया गया है। आदान काल में सूर्य की रश्मियों में प्रखरता उत्पन्न हो जाती है और ये व्रीव–तीक्ष्ण रश्मियाँ प्रकृति के बल को हर लेती है अर्थात बल का शोषण कर लेती है। इसके विपरित विसर्ग काल में सूर्य की रश्मिों में तीक्ष्णता कम हो जाती है तथा चन्द्रमा की किरणों की प्रखरता प्रबल होती है इसके परिणाम स्वरुप प्रकृति बल गहण करती है अथवा विसर्ग काल में प्रकृति को बल प्राप्त होता है।

उत्तरायण काल से अभिप्राय सूर्य के उत्तर दिशा में गति करने से होता है। इस काल में सूर्य उत्तर दिशा में गति करता है जबकि दक्षिणायन से अभिप्राय सूर्य के दक्षिण दिशा में गति करने से होता है। वर्ष के 365 दिनों में आधे समय सूर्य उत्तर दिशा में गति करता है जो उत्तरायण काल कहलाता है जबकि शेष आधे समय सूर्य दक्षिण दिशा में गमन करता है, दक्षिण दिशा में सूर्य के गमन का यह काल दक्षिणायन के नाम से जाना जाता है। उत्तर दिशा में गमन करने से सूर्य पृथ्वी के समीप आता रहता है और सूर्य की किरणों की व्रीवता बढती चली जाती है। इस काल में सूर्य किरणें व्रीव एवं वातावरण की वायु गर्म तथा रुक्ष हो जाती है। उत्तरायण काल में सूर्य की रश्मियां पृथ्वी के जलीय अंश का शोषण कर लेती है। इसके साथ साथ मानव शरीर से भी बल का शोषण हो जाता है और इस काल में शरीर का बल क्षीण हो जाता है। उत्तरायण में शिशिर, वसन्त एवं गीष्म ऋतुओं का समावेश होता है।

दक्षिणायन में सूर्य दक्षिण दिशा में गति करता है। इस काल में सूर्य रश्मियों की व्रीवता कम होने लगती है और चन्द्रमा के सौम्य गुणों की प्रधानता प्रकृति में हो जाती है। वातावरण में तापमान कम होने लगता है और वायु में ठंड का समावेश होने लगता है। बादल और बारिश के होने से मौसम ठंडा हो जाता है। इस काल में प्रकृति बल को ग्रहण करती है। जिस प्रकार इस काल में प्रकृति बल को ग्रहण करती है ठीक उसी प्रकार मनुष्य का शरीर भी इस काल में बल को धारण करता है। बल का ग्रहण करने कारण इस काल को विसर्ग काल की संज्ञा दी जाती है। इस काल में प्रकृति में औषधियों एवं खाद्य पदार्थों में स्निग्धता आ जाती है जिसे ग्रहण करने से मानव शरीर को बल की प्राप्ति होती है। विसर्ग काल में शरीर के बल की स्थिति अच्छी रहती है इसीलिए इस काल में अच्छे पौष्टिक आहार के सेवन के साथ साथ कठिन शारीरिक श्रम, एवं यौगिक आसन–प्राणायाम आदि का अभ्यास करने का उपदेश आयुर्वेद के शास्त्रों में किया गया है। वर्षा, हेमन्त और शरद् दक्षिणायन काल की तीन ऋतुएँ हैं।

7.4 आदान एवं विसर्ग काल की वैज्ञानिकता

प्रिय विधार्थियों, जैसा कि आपने पूर्व इकाई में जाना कि हमारी पृथ्वी अपने अक्ष पर बिल्कुल सीधी नही होकर एक ओर झुकी हुई है। हमारी पृथ्वी की घूर्णन की धूरी इसके कक्षीय समतल से लम्बवत 23.4 डिग्री पर झुकी है। जिस कारण पृथ्वी का डी घूर्णन अक्ष इसके परिक्रमा पथ से बनने वाले समतल पर लगभग 66.5 अंश का कोण बनाता है। चूंकि पृथ्वी अण्डे के समान अण्डाकार आकार वाली है इसके यदि दो भाग किए जाए तो एक भाग अथवा गोला उत्तरी गोलार्द्ध तथा इसका दूसरा भाग अथवा गोलार्द्ध दक्षिणी गोलार्द्ध कहलाता है। पृथ्वी के कोण विशेष पर झुके होने के कारण इसके उत्तरी एवं दक्षिणी गोलार्द्ध की सूर्य से दूरी कम एवं अधिक होती रहती है। पृथ्वी का सूर्य की परिक्रमा का काल 365.26 सौर दिवस है, इस काल में सूर्य की पृथ्वी से दूरी कम तथा अधिक होती रहती है। पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा काल में पृथ्वी का जो भाग सूर्य के समीप होता है उस भाग पर सूर्य की सीधी किरणें पडती है जिस कारण पृथ्वी के उस भाग अर्थात गोलार्द्ध का तापमान अधिक होता है जबकि इसके विपरित इस अवस्था में पृथ्वी का दूसरा भाग अर्थात गोलार्द्ध सूर्य से दूर होने के कारण इस भाग पर सूर्य की किरणें क्षीण होकर पडती है इसलिए इस भाग में तापमान निम्न रहता है। इस प्रकार सूर्य और पृथ्वी की स्थिति के आधार पर एक वर्ष दो अयनों में विभक्त होता है। दूसरे शब्दों में दो अयन मिलकर एक वर्ष अथवा संवत्सर बनाते हैं।

प्रिय विधार्थियों, प्रकृति के काल चक्र परिर्वतन का सीधा प्रभाव मनुष्य के शरीर पर पडता है। सूर्य और सोम की स्थिति परिर्वतन से जहॉ प्रकृति में शीत, उष्ण और वर्षा रुपी परिर्वतन आते हैं तो वहीं मानव शरीर में उपस्थित पित्त, कफ और वात नामक दोषों की गति भी इन परिर्वतनों से प्रभावित होती है। मानव शरीर में त्रिदोष अपना अत्यन्त विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। जिस प्रकार वायु, सूर्य और चन्द्रमा विसर्ग, आदान और विक्षेप कर्म करते हुए जगत को धारण करते हैं, ठीक उसी प्रकार वात, पित्त और कफ नामक त्रिदोष शरीर को धारण करते हैं। मानव शरीर इन त्रिदोषों की प्राकृत अवस्था स्वास्थ्य का आधार है जबकि शरीर में इन दोषों की विकृत अवस्था रोग की परिचायक है। मानव शरीर में त्रिदोष शरीरिक बल का आधार होते हैं। आदान और विसर्ग काल की ऋतुओं का त्रिदोषों की अवस्था पर सीधा प्रभाव पडता है। इन त्रिदोषों की अवस्था परिर्वतन से शारीरिक बल की स्थिति परिर्वतित होती रहती है। आयुर्वेद शास्त्र में स्पष्ट किया गया है कि मनुष्य के शरीर में वात–पित्त व कफ दोषों की गति गहन होती है अर्थात गूढ होती है किन्तु बुद्धिमान मनुष्य को सदैव अपने शरीर में दोषों की गति को जानने का प्रयत्न करते रहना चाहिए तथा शरीर में दोषों की अवस्था के अनुसार ही आहार विहार करना चाहिए।

इस प्रकार शरीर में दोषों के महत्व को जानने के उपरान्त आपके मन में यह प्रश्न उपस्थित होना स्वाभाविक ही है कि दोषों पर ऋतुओं का क्या प्रभाव पडता है। उत्तरायण एवं दक्षिणायन की किस ऋतु में किस दोष का क्षय होता है तथा कौन सा दोष वृद्धि को प्राप्त होता है ? इस संदर्भ में आचार्य चरक कहते हैं –

मध्ये मध्यबलं त्वंते श्रेष्ठमग्रे च निर्दिशेत्।
आदावन्ते च दौर्बल्यं विसर्गादानयोर्नृणाम्।।

(च0सू0 6/8)

अर्थात आदान और विसर्ग कालों में से प्रत्येक के मध्य में मध्य बल, विसर्ग के अन्त में तथा आदान के आदि में श्रेष्ठ बल होता है एवं विसर्ग के आदि में तथा आदान के अन्त में दुर्बलता बढती है।

प्रिय शिक्षार्थियों, आदान और विसर्ग काल की ऋतुओं में शरीर में वात–पित्त और कफ दोषों की स्थिति बदलती रहती है। मानव शरीर में वात–पित्त एवं कफ नामक त्रिदोष संचित, प्रशमित एवं प्रकुपित नामक तीन अवस्थाओं में रहते हैं। दोष की संचित अवस्था से अभिप्राय दोष के इकठ्ठे होने से होता है। जब शरीर में कोई दोष किसी स्थान

विशेष में एकत्र होने लगता है तब वह अवस्था दोष के संचय की अवस्था कहलाती है। वह संचित दोष अगली ऋतु में जाकर स्वतः ही शान्त हो जाता है, अथवा अपने स्वाभाविक मार्गों के माध्यम से शरीर से बाहर निकल जाता है, दोष के इस प्रकार शान्त होने की अवस्था को दोष का प्रशमन कहा जाता है किन्तु जब कोई दोष शान्त ना होकर विषम मार्गो से अथवा व्याधि के रुप में शरीर से बाहर निकलने लगता है, तब इस अवस्था को दोष का प्रकोप कहा जाता है। मानव शरीर में वात–पित्त एवं कफ दोषों की संचित, प्रशमन एवं प्रकुपित अवस्था का बलाबल पर सीधा प्रभाव पडता है। इसलिए आदान एवं विसर्ग काल में शारीरिक बलाबल की स्थिति को जानने के लिए दोषों की इन तीन अवस्थाओं को अवश्य समझना चाहिए।

सामान्यतया आदान और विसर्ग काल की ऋतुओं में मानव शरीर में दोष की स्थिति को निम्न तालिका से समझा जा सकता है –

ऋतु (Season)	वात दोष	पित्त दोष	कफ दोष
शिशिर (Winter)	प्रशमन	–––––	संचय
वसन्त (Spring)	प्रशमन	–––––	प्रकोप
ग्रीष्म (Summer)	संचय	–––––	प्रशमन
वर्षा (Rainy)	प्रकोप	संचय	संचय
शरद (Autumn)	प्रशमन	प्रकोप	प्रकोप
हेमन्त (Early Winter)	प्रशमन	प्रशमन	संचय

इस प्रकार उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि अलग अलग ऋतुओं में मानव शरीर के अन्दर दोष अलग अलग अवस्था को प्राप्त होते हैं। दोषों की इन अवस्थाओं का शारीरिक बल पर सीधा प्रभाव पडता है अतः अब शरीर में दोषों की उपरोक्त अवस्थाओं पर सविस्तार विचार करते हुए विभिन्न ऋतुओं में शारीरिक बलाबल का विवेचन करते हैं –

7.5 आदान एवं विसर्ग काल में शारीरिक बलाबल की स्थिति

प्रिय शिक्षार्थियों, जैसा कि आपने पूर्व में जाना कि आदान काल के अन्तर्गत शिशिर, बसन्त एवं ग्रीष्म ऋतु का उल्लेख आता है जबकि विसर्ग काल के अन्तर्गत वर्षा, शरद एवं हेमन्त ऋतु आती है। इन ऋतुओं में शारीरिक बलाबल की स्थिति इस प्रकार है, विषय का प्रारम्भ आरम्भ आदान काल की शिशिर ऋतु से करते हैं –

7.5.1 शिशिर ऋतु में शारीरिक बलाबल की स्थिति

प्रिय पाठकों, शिशिर ऋतु उत्तम स्वास्थ्य की ऋतु है। यद्यपि इस ऋतु में शीत काफी पडता है, कोहरे की अधिकता रहती है तथा शीत पवन चलती है किन्तु इस ऋतु में उदर की जठराग्नि पूर्ण रुप से प्रदिप्त रहती है जिस कारण आहार का पाचन द्रीव गति से होता है। उदर की जठराग्नि प्रदिप्त रहने के कारण शिशिर ऋतु में ऊर्जायुक्त पौष्टिक भोज्य पदार्थों के सेवन का उपदेश आयुर्वेद शास्त्र में किया गया है। शिशिर ऋतु में जठराग्नि पूर्ण रुप से प्रदिप्त रहती है जिसके परिणामस्वरुप गरिष्ठ एवं भारी भोज्य पदार्थों का पाचन शीघ्रता से हो जाता है और शरीर को उनके पाचन से अधिक मात्रा में ऊर्जा प्राप्त होती है। इस कारण इस ऋतु में शरीर ऊर्जावान एवं बलयुक्त बना रहता है। इसके साथ साथ इस ऋतु में शीत अधिक पडने के कारण वातावरण में कीट–पतंगे एवं रोगाणु पनप नही पाते हैं अर्थात वातावरण रोगाणुओं–कीटाणुओं व घरेलू मख्खी–मच्छरों से मुक्त रहता है जिस कारण संक्रामक रोग उत्पन्न नही होते हैं और स्वास्थ्य उन्नत स्थिति में बना रहता है।

शिशिर ऋतु कफ दोष के संचय एवं वात दोष के प्रशमन की ऋतु है। इस ऋतु में कफ दोष के संचय से कफ विकारों की संभावना अधिक हो जाती है, इसके साथ साथ वात का प्रशमन होने के कारण विकृत आहार विहार के परिणाम स्वरुप वात रोगों के

उत्पन्न होने की संभावना भी बढ जाती है, इसीलिए शिशिर ऋतु में वात वर्द्धक पदार्थों का सेवन त्याज्य कहा गया है। शिशिर ऋतु में पिप्पली के साथ हरीतकी सेवन का उपदेश किया जाता है।

7.5.2 वसन्त ऋतु में शारीरिक बलाबल की स्थिति

वसन्त ऋतु में सूर्य किरणों की प्रखरता व्रीव होने लगती है जिस कारण शरीर में संचित कफ पिघलने लगता है। इस कारण इस ऋतु में कफ दोष के कुपित होने की संभावना अधिक हो जाती है और प्रायः इस ऋतु में कफ दोष की विकृति से सम्बन्धी रोग जैसे सर्दी–जुकाम, खाँसी, दमा, नजला, टॉन्सिल्स आदि के होने की संभावना बढ जाती है। वसन्त ऋतु वात दोष के प्रशमन एवं कफ दोष के प्रकोप की ऋतु है। इस ऋतु में कफ दोष के शमन हेतु कटु, तिक्त एवं कसाय रसों के सेवन का उपदेश आचार्य वाग्भट करते हैं।

जिज्ञासु पाठकों, इस प्रकार वसन्त ऋतु मध्यम स्वास्थ्य की ऋतु है जिसमें कफ दोष पर विशेष ध्यान देने की आवश्यक्ता होती है। इस ऋतु में विकृत आहार–विहार करने से कफ दोष तुरन्त कुपित हो जाता है और कफ दोष सम्वन्धित रोग उत्पन्न हो जाते हैं। चूंकि कफ ही मानव शरीर का बल होता है, शरीर में कफ दोष के सम रहने पर शरीर बलवान एवं शक्तिशाली बना रहता है जबकि इसके विपरित शरीर में कफ दोष के विषम अथवा विकृत होने पर शरीर बलहीन, शक्तिहीन एवं तेजहीन हो जाता है। शरीर में कफ दोष को सम बनाए रखने हेतु वसन्त ऋतु में मधु के साथ हरीतकी सेवन का उपदेश आयुर्वेद शास्त्र में किया गया है। वसन्त ऋतु योग साधना के दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण ऋतु है। हठयोग के प्रमुख ग्रन्थ घेरण्ड संहिता में योगाभ्यास प्रारम्भ करने की ऋतु पर प्रकाश डालते हुए महर्षि घेरण्ड कहते हैं –

हेमन्ते शिशिरे ग्रीष्मे वर्षायां च ऋतौ तथा।
योगारम्भं न कुर्तीत कृते योगो हि रोगदः।
वसन्ते शरदि प्रोक्तं योगारम्भं समाचरेत्।
तदा योगी भवेत्सिद्धो रोगान्मुक्तो भवेद्ध्रुवम्र।।

(घेरण्ड संहिता 5/8–9)

अर्थात हेमन्त, शिशिर, ग्रीष्म और वर्षा ऋतु में योगाभ्यास शुरु नही करना चाहिए। इन ऋतुओं में योगाभ्यास प्रारम्भ करने से रोग उत्पन्न होते है। वसन्त और शरद ऋतु में योगाभ्यास प्रारम्भ करना उचित है। इन ऋतुओं में योगाभ्यास प्रारम्भ करने से सिद्धि मिलती है और रोगों से निवृति होती है।

इसके साथ साथ वसन्त ऋतु शरीर शोधन हेतु सर्वाधिक उपयुक्त ऋतु है। इस ऋतु में उपवास, लंघन एवं शंख प्रक्षालन आदि के माध्यम से शरीर शोधन का उपदेश आयुर्वेद के प्रमुख आचार्यों के द्वारा दिया गया है।

7.5.3 गीष्म ऋतु में शारीरिक बलाबल की स्थिति

जिज्ञासु पाठकों, जैसा कि आपको पूर्व की इकाई का अध्ययन करने से ज्ञान हो चुका है कि गीष्म ऋतु ज्येष्ठ और अषाढ माघ की ऋतु है जिसमें सूर्य पृथ्वी की सीधी किरणे पृथ्वी पर पडती है और इन किरणों की तीक्ष्णता सबसे अधिक होती है। सूर्य की ये तीक्ष्ण किरणें पृथ्वी के जलीय अंश का शोषण कर लेती है। जिस प्रकार ये किरणें वातावरण से जलीय अंश को शोषित करती हैं उसी प्रकार इन किरणों का समान प्रभाव मानव शरीर पर पडता है और इन किरणों के प्रभाव से शरीर से कफ दोष का शोषण कर लिया जाता है, चूंकि प्राकृत कफ ही शरीर का बल होता है अतः इसके अवशोषित होने से शारीरिक बल क्षीण हो जाता है इसीलिए गीष्म ऋतु हीन शारीरिक बल की ऋतु है।

गीष्म ऋतु वात दोष के संचय एवं कफ दोष के प्रशमन की ऋतु है। गीष्म ऋतु में वायु उष्णता को प्राप्त होकर लू का रुप ग्रहण कर लेती है। इस लू अर्थात उष्ण वायु के प्रभाव से शरीर में वात दोष का संचय होता है जबकि उष्ण वायु के प्रभाव से शरीर

में स्थित कफ पिघलने लगता है और पिघलने पर इस दोष का प्रशमन होने लगता है। इस प्रकार गीष्म ऋतु में वात दोष का संचय एवं कफ दोष का प्रशमन होता है। इसके साथ साथ उष्णता के प्रभाव से शरीर में पित्त दोष के कुपित होन की संभावना भी प्रबल हो जाती है। शरीर से पसीने के रुप में जल के निकलने के कारण भी पित्त दोष का प्रभाव बढ जाता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि ग्रीष्म ऋतु हीन शारीरिक स्वास्थ्य की ऋतु है जिसमें दोषों के विषम होने की संभावना भी अधिक होती है अतः इस ऋतु में आहार–विहार पर विशेष ध्यान देने की आवश्यक्ता होती है। विशेष रुप से गीष्म ऋतु हल्के–सुपाच्य एवं जलीय अंश से युक्त आहार के सेवन का निर्देश दिया जाता है। इस ऋतु में मधुर रस युक्त एवं शीतल प्रकृति के आहार का सेवन करना चाहिए। ग्रीष्म ऋतु में संन्तरा, अंगूर, तरबूज, खरबूजा, लोकी, तुराई, मीठी दही, बेल का शरबत, नींबू पानी, नारियल पानी आदि का सेवन करने से दोष सम अवस्था में बने रहते हैं और शारीरिक बल बना रहता है। इस ऋतु में मिट्टी के घडे अथवा सुराई में रखे शीतल जल का सेवन करना चाहिए। इस ऋतु में फ्रिज के ठंडे जल अथवा फ्रिज में रखे बासी व ठंडे खाद्य पदार्थों का सेवन करने से शरीर में संचित वात दोष तुरन्त कुपित हो जाता है और जोडों में दर्द, सूजन, गठिया व आर्थाराइटिस आदि रोग जन्म ले लेते हैं। इस ऋतु में सफेद सूती वस्त्रों का अधिकतम प्रयोग करना चाहिए। धूप में नगें सिर व नगें पैर बाहर नही जाना चाहिए।

जिज्ञासु पाठकों, यहाँ तक के अध्ययन से आपको स्पष्ट हो चुका है कि आदान काल के अर्न्तगत शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म नामक तीन ऋतुओं का वर्णन आता है। इनमें से शिशिर ऋतु उत्तम अथवा श्रेष्ठ शारीरिक बल की ऋतु है। वसन्त ऋतु मध्यम शारीरिक बल एवं गीष्म ऋतु हीन शारीरिक बल की ऋतु है। इन ऋतुओं में उपयुक्त आहार विहार करने से शरीर में दोषों की स्थिति सम बनी रहती है जबकि इन ऋतुओं में प्रतिकूल आहार विहार करने से शरीर में दोष विषमता को प्राप्त हो जाते हैं तथा अनेक प्रकार के रोगों की उत्पत्ति होती है। आदान काल में शारीरिक बल की स्थिति को जानने के उपरान्त अब आपके मन में विसर्ग काल की ऋतुओं में शारीरिक बल की स्थिति का जानने की जिज्ञासा भी अवश्य ही उत्पन्न हुई होगी अतः अब विसर्ग काल में शारीरिक बल की स्थिति पर विचार करते हैं। जैसा कि आपको पूर्व ज्ञान है कि विसर्ग काल का प्रारम्भ वर्षा ऋतु से होता है अतः यहाँ पर विषय का प्रारम्भ वर्षा ऋतु के साथ करते हैं–

7.4.4 वर्षा ऋतु में शारीरिक बलाबल की स्थिति

प्रिय शिक्षार्थियों, गीष्म ऋतु के समान वर्षा ऋतु भी हीन स्वास्थ्य की ऋतु है। जैसा कि आपने पूर्व की इकाई में अध्ययन किया है कि वर्षा ऋतु श्रावण और भाद्रपद माघ की ऋतु है जिसमें आकाश एवं दिशाएँ बादलों से युक्त हो जाते हैं और मेघ घिर कर बरसने लगते हैं। इस ऋतु में गर्मी, सर्दी, बरसात और वसन्त चारों मौसम देखने को मिलते हैं, इसी कारण इस ऋतु को चौमासे की संज्ञा भी दी जाती है। यहाँ पर ध्यान देने का विषय यह है कि इस ऋतु में मेघों के बरसने से वातावरण नमी एवं सीलनयुक्त हो जाता है जिस कारण इस ऋतु में वातावरण में अनेक प्रभार के रोगाणु, जीवाणु, कीटाणु एवं विषाणु आदि तेजी से पनपते हुए रोगों को उत्पन्न करते हैं। एक ओर जहॉ इस ऋतु में शारीरिक बल हीन अवस्था में रहता है तो वहीं दूसरी ओर इस ऋतु में सक्रांमक रोग बहुत अधिक फैलते हैं।

आचार्य वाग्भट् के अनुसार वर्षा ऋतु वात दोष के प्रकोप की ऋतु है। ग्रीष्म ऋतु में संचित वात दोष का वर्षा ऋतु में प्रकुपित हो जाता है जिसके परिणाम स्वरुप वात व्याधियॉ इस ऋतु में तेजी से मनुष्य शरीर को घेरती हैं। गीष्म ऋतु में जठराग्नि दुर्बल हो जाती है जबकि वर्षा ऋतु में वात दोष के कुपित होने के कारण पाचन तंत्र और अधिक दुर्बल हो जाता है। इस ऋतु में शरीर में पित्त दोष संचित होने लगता है। इस

ऋतु में पाचन तंत्र की विकृति के अनेक रोग जैसे पेचिश, हैजा, उल्टी, आंतशोथ, अपच आदि तेजी से फैलते हैं, इसके साथ साथ अन्य वात रोग जैसे जोडों के दर्द, गठिया, संधियों में सूजन एवं चर्म रोग भी वर्षा ऋतु में वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

वर्षा ऋतु में वात एवं कफ दोषों को शान्त करने वाले कटु, अम्लीय एवं क्षारीय द्रव्यों का सेवन करना चाहिए। इस ऋतु हरितकी चूर्ण का सेवन सैन्धा नमक के साथ मिलाकर करना चाहिए। इसके अतिरिक्त इस ऋतु में स्वच्छता का विशेष ध्यान रखना चाहिए। जल को उबालकर पीना चाहिए। खाद्य पदार्थों को मख्खी तथा अन्य सुक्ष्म जीवों से बचाकर रखना चाहिए। ताजे एवं सुपाच्य भोजन का सेवन करना चाहिए। इस ऋतु में मच्छरों से बचने के लिए मच्छरदानी का प्रयोग करना चाहिए।

वर्षा ऋतु में पथ्य आहार का सेवन शारीरिक स्वास्थ्य हेतु अत्यन्त अनिवार्य है। इस ऋतु में पुराना अनाज, शाली व साठी चावल, मक्का, मूँग व अरहर की दाल, लौकी, तुराई, भिण्डी, टमाटर की सब्जी, पुदीने की चटनी एवं मक्का (भुट्टा) का सेवन करना चाहिए। इसके साथ साथ वर्षा ऋतु में केला, सेब, अनार एवं पके जामुन का सेवन करना चाहिए। वर्षा आम के पकने की ऋतु है। वर्षा ऋतु में पके आम का दूध के साथ सेवन करने से कफ और पित्त दोष सम बनते हैं और शरीर को पुष्टि मिलती है। इस संदर्भ में आचार्य सुश्रुत लिखते हैं –

आम्रस्य पल्लवोरुच्यः कफपित्त विनाशम्

(सु0सू0 46 / 153)

वर्षा ऋतु में ठण्डे एवं रुखे का सेवन नही करना चाहिए। इस ऋतु में आलू, कटहल, चना, मसूर, बेसन, तेज मिर्च मसालों से युक्त पित्तवर्धक पदार्थों का सेवन नही करना चाहिए। भारी भोजन, बार बार भोजन एवं बिना भूख के भोजन करने से नाना प्रकार के रोगों की उत्पत्ति होती है। इस ऋतु में दूध एवं मठ्ठे का सेवन भी अहितकर होता है। इस संदर्भ में भारतीय समाज की लोकोक्ति है कि श्रावण माघ में दूध, भ्रादपद में छाछ, क्वार में करेला एवं कार्तिक माघ में दही का सेवन नही करना चाहिए।

7.5.5 शरद् ऋतु में शारीरिक बलाबल की स्थिति

शरद ऋतु में सूर्य की उष्ण किरणों के प्रभाव से वर्षा ऋतु में संचित कफ प्रकुपित हो जाता है। वर्षा ऋतु के उपरान्त इस ऋतु में आसमान साफ एवं स्वच्छ हो जाता है। इस ऋतु में चन्द्रमा की शीतल किरणों का प्रभाव बढ जाता है जिससे कफ दोष को बल मिलता है। शरद् विसर्ग काल के मध्य की ऋतु है जिसमें शारीरिक बल भी मध्यम बना रहता है।

जिज्ञासु पाठकों, वर्षा ऋतु में संचित हुए पित्त दोष की इस ऋतु में कुपित होने की संभावना अधिक होती है। प्रायः इस ऋतु में पित्त दोष विकृति को प्राप्त होकर रक्त को दूषित कर देता है जिस कारण इस ऋतु में त्वचा में दाने, चकते, फुँसिया, खुजली आदि रक्त संबधी त्वचा रोग पैदा होते हैं। इसके अतिरिक्त कफ दोष के प्रकुपित होने के कारण सर्दी–जुकाम एवं बुखार आदि रोग भी इस ऋतु में काफी फैल जाते हैं। इन रोगों से बचने के लिए मीठे एवं तिक्त रस वाले खाद्य पदार्थों का सेवन करना चाहिए। शालि चावल, गेहूँ, जौ, मूँग, चौलाई, पालक, बथुआ, लौकी, मूली आदि का सेवन करना चाहिए। इस ऋतु में अनार, सिंघाडा तथा कमलगट्टा का सेवन करना भी हितकारी होता है। इस ऋतु में तिक्त पदार्थों को घृत के साथ पकाकर सेवन करने से पित्त दोष कुपित नही होता है और शारीरिक बल श्रेष्ठ बनता है। शरद् ऋतु में हरीतकी चूर्ण का सेवन शहद, मिश्री अथवा गुड के साथ करना चाहिए। इसके साथ साथ इस ऋतु में आँवले का सेवन शक्कर के साथ करना चाहिए।

आयुर्वेद शास्त्र में शरद् ऋतु को शरीर शोधन हेतु एवं योग शास्त्र में योगाभ्यास प्रारम्भ करने हेतु श्रेष्ठ ऋतु कहा गया है। कुपित पित्त को शान्त करने हेतु विरेचक औषध द्रव्यों के द्वारा विरेचन क्रिया इसी ऋतु में करना लाभप्रद रहता है। इसके अतिरिक्त रक्तमोक्षण क्रिया के द्वारा शरीर से दूषित रक्त का निष्कासन भी इस ऋतु में करने का उपदेश आयुर्वेद शास्त्र में किया गया है। शरद् ऋतु में पित्त दोष को कुपित करने वाले चिकनाईयुक्त खाद्य पदार्थों का सेवन नही करना चाहिए। इस ऋतु में सरसों, लहसुन, बैंगन, करेला, हींग, काली मिर्च, पीपल, उदड की दाल एवं खट्टे पदार्थों का सेवन स्वास्थ्य एवं शारीरिक बल के दृष्टिकोण से अहितकर होता है। शरद् ऋतु में इन पदार्थों का सेवन करने से शारीरिक बल क्षीण पडता है।

7.5.6 हेमन्त ऋतु में शारीरिक बलाबल की स्थिति

हेमन्त ऋतु में सर्दी का प्रारम्भ हो जाता है। यह दक्षिणायन अर्थात विसर्गकाल की अंतिम ऋतु है। इस ऋतु में मार्गशीर्ष और पौष माघ आते है। इस ऋतु में पृथ्वी सूर्य का चक्कर लगाते हुए अधिक दूरी पर चली जाती है और सूर्य किरणें तिरछी होकर पृथ्वी पर पडने लगती है जिस कारण सूर्य किरणों में प्रखरता का अभाव होता है। सूर्य किरणों में प्रखरता कम होने के कारण वातावरण शीतल हो जाता है। हेमन्त ऋतु में वात दोष का प्रकोप एवं कफ दोष का संचय होता है। बाह्य वातावरण की शीतलता के कारण शरीर की अन्तराग्नि अर्थात जठराग्नि में वृद्धि हो जाती है जो वात दोष के प्रकोप का कारण बनती है।

जिज्ञासु पाठकों, हेमन्त ऋतु स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से उत्तम स्वास्थ्य की ऋतु है जिसमें शारीरिक बल श्रेष्ठ अवस्था में रहता है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि आदान काल के अन्त और विसर्गकाल काल के प्रारम्भ में शारीरिक बल श्रेष्ठ अवस्था में रहता है जबकि विसर्ग काल के अन्त और आदान काल के प्रारम्म्भ में शारीरिक बल हीन अवस्था में रहता है। चूंकि इस ऋतु में वायु दोष के प्रकुपित होने की संभावना अधिक रहती है अतः इस ऋतु में वात दोष का शमन करने वाले खाद्य पदार्थों का सेवन करना चाहिए तथा वात दोष की वृद्धि करने वाले खाद्य पदार्थों का त्याग करना चाहिए। इस ऋतु में दूध एवं घी युक्त गुरु खाद्य पदार्थों का सेवन करना चाहिए। इसके अतिरिक्त शीतल प्रकृतियुक्त एवं वातदोष वर्द्धक खाद्य पदार्थ जैसे दही, मठ्ठा,

चावल, आलू, अरवी एवं उदड की दाल आदि का सेवन नही करना चाहिए। इस ऋतु में हरीतकी चूर्ण का सेवन शुण्ठी के साथ करना चाहिए।

प्रिय पाठकों, उपरोक्त अध्ययन से आपको आदान एवं विसर्ग काल में मानव शरीर में बलाबल की स्थिति अवश्य ही स्पष्ट हो गयी होगी। इसके साथ साथ प्रत्येक ऋतु में शारीरिक बल बनाए रखने हेतु एवं शरीर को रोगों से बचने हेतु उपयुक्त आहार विहार का ज्ञान भी अवश्य ही प्राप्त हुआ होगा। आदान एवं विसर्ग काल में ऋतुनुसार शरीर में बलाबल की स्थिति को निम्न तालिका से और अधिक स्पष्ट रुप में समझा जा सकता है –

क्रमांक	ऋतु का नाम	काल	शारीरिक बल की स्थिति
1	शिशिर	आदान काल	उत्तम स्वास्थ्य
2	वसन्त	आदान काल	मध्यम स्वास्थ्य
3	ग्रीष्म	आदान काल	हीन स्वास्थ्य
4	वर्षा	विसर्ग काल	हीन स्वास्थ्य
5	शरद	विसर्ग काल	मध्यम स्वास्थ्य
6	हेमन्त	विसर्ग काल	उत्तम स्वास्थ्य

अभ्यास हेतु प्रश्न –

1– **सत्य / असत्य**

(क) आदान काल में सूर्य रश्मियाँ प्रकृति के बल को हर लेती हैं।

(ख) शिशिर आदान काल की ऋतु है।

(ग) ग्रीष्म ऋतु में जठराग्नि प्रबल हो जाती है।

(घ) हेमन्त ऋतु स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से मध्यम स्वास्थ्य की ऋतु है।

(ड) वर्षा ऋतु में वात दोष का प्रकोप होता है।

2– रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

(क) आदान का सामान्य अर्थ ––––– से और विसर्ग का अर्थ ––––– से होता है।

(ख) शिशिर ऋतु में ––––––––– दोष का संचय होता है।

(ग) गीष्म ऋतु ––––––– शारीरिक स्वास्थ्य की ऋतु है।

(घ) वसन्त ऋतु में ––––––––– के साथ हरीतकी चूर्ण का सेवन करना चाहिए।

(ड) हेमन्त ऋतु में शारीरिक बल ––––––––– अवस्था में रहता है।

3– **एक शब्द में उत्तर दीजिए –**

(क) विसर्ग काल के मध्य की ऋतु का नाम क्या है ?

(ख) संचित दोष का अगली ऋतु में जाकर स्वतः ही शान्त होना अथवा अपने स्वाभाविक मार्गों के माध्यम से शरीर से बाहर निकलना क्या कहलाता है ?

(ग) वसन्त ऋतु में किस दोष का प्रकोप होता है ?

(घ) कौन सा दोष मानव शरीर का बल होता है ?

(ड) वर्षा ऋतु में हरीतकी चूर्ण का सेवन किसके साथ करना चाहिए ?

4–बहुविकल्पीय प्रश्न –

(क) निम्न में से आदान काल की ऋतु नही है

(a) शिशिर (b) शरद

(c) वसन्त (d) ग्रीष्म ।

(ख) दोष का विषम मार्गो से अथवा व्याधि के रुप में शरीर से बाहर निकलना कहलाता है

(a) संचित अवस्था (b) प्रशमित अवस्था

(c) प्रकुपित अवस्था (d) प्रधान अवस्था ।

(ग) योगाभ्यास प्रारम्भ करने की उपयुक्त ऋतु है।

(a) वसन्त (b) शिशिर

(c) वसन्त एवं शिशिर (d) शरद ।

(घ) शिशिर ऋतु में स्वास्थ्य किस अवस्था में रहता है

(a) सामान्य (b) हीन

(c) मध्यम (d) उत्तम ।

(ड) वर्षा ऋतु में किसका सेवन करने से कफ और पित्त दोष सम बनते हैं और शरीर को पुष्टि मिलती है

(a) पके आम का दूध के साथ (b) पके अमरुद का शहद के साथ

(c) पके अँगूर का दूध के साथ (d) पके केले का दही के साथ

7.6 सारांश–

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत इकाई का प्रारम्भ आदान एवं विसर्ग काल के परिचय के साथ किया गया है। इकाई के प्रारम्भ में ही आदान काल का अर्थ देने से और विसर्ग काल का अर्थ लेने से समझाया गया है। तत्पश्चात सूर्य के उत्तर एवं दक्षिण दिशा में गमन करने के अनुसार उत्तरायण एवं दक्षिणायन को स्पष्ट किया गया है। यहीं पर उत्तरायण की तीन ऋतुओं– शिशिर, वसन्त व गीष्म एवं दक्षिणायन की तीन ऋतुओं– वर्षा, हेमन्त एवं शरद् को भी स्पष्ट किया गया गया है। इकाई में आदान एवं विसर्ग काल की वैज्ञानिकता की व्याख्या करते हुए पृथ्वी के घूर्णन अक्ष पर झुके होने को भी समझाया गया है। यही पर यह भी स्पष्ट किया गया है कि अपने घूर्णन अक्ष पर झुके होने के कारण पृथ्वी की सूर्य से दूरी में परिर्वतन होता रहता है। इस कारण पृथ्वी का एक भाग सूर्य के समीप एवं दूसरा भाग सूर्य से दूर हो जाता है। इसी कारण पृथ्वी के एक भाग में गर्मी एवं दूसरे भाग में सर्दी का मौसम होता है तथा वर्ष भर प्रतिक्षण प्रकृति में परिर्वतन होता रहता है। प्रकृति के इस परिर्वतन का प्रभाव मानव शरीर में उपस्थित वात–पित्त एवं कफ नामक त्रिदोषों पर भी पडता है और इसके परिणामस्वरुप शरीर में बलाबल की स्थिति परिर्वतित होती रहती है जो कि इस इकाई के अध्ययन का मुख्य विषय है।

इकाई में आगे आदान एवं विसर्ग काल में श्रेष्ठ, मध्यम एवं हीन बल की अवस्थओं की व्याख्या विभिन्न पक्षों से गयी है। वर्ष की छह प्रमुख ऋतुओं में वात–पित्त एवं कफ दोषों की तीन अवस्थाओं (संचय, प्रशमन एवं प्रकोप) को समझाते हुए इन पर काल परिर्वतन एवं आहार विहार के प्रभावों का अवलोकन इकाई में किया गया है। इकाई में स्पष्ट किया गया है कि उत्तरायण में शिशिर ऋतु श्रेष्ठ बल की ऋतु है। वसन्त ऋतु मध्यम बल एवं गीष्म ऋतु हीन बल की ऋतु है। इसी प्रकार दक्षिणायन में वर्षा ऋतु हीन बल, हेमन्त ऋतु मध्यम एवं शरद् ऋतु श्रेष्ठ बल की ऋतु है। इकाई में प्रत्येक ऋतु में बल के रक्षण एवं त्रिदोषों के सन्तुलन हेतु उपयुक्त आहार–विहार पर प्रकाश डालते हुए समझाया गया है।

7.7 पारिभाषिक शब्दावली–

त्रिदोष– शरीर में उपस्थित वात–पित्त–कफ नामक तीन उपयोगी द्रव्य
जठराग्नि– पाचन तंत्र की सुक्ष्म ऊर्जा जो भोजन का पाचन करती है
सार–उपयोगी अंश
हीन– कमजोर
समावेश– उपस्थिति, प्रभाव
धारण– ग्रहण करना
ळरना– ले लेना
विक्षेप– चंचलता, गतिशीलता
संचित– एकत्र अथवा इकठ्ठा होना
गूढ– जटिल, जिसे जानना कठिन हो
प्रशमित– दोष की बढी किन्तु शान्त अवस्था

प्रकुपित– दोष की उग्र रुप में बढी रोगावस्था

7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क.	सत्य	क.	देने, लेने	क. शरद्	क. b
ख.	सत्य	ख.	कफ	ख. प्रकुपित	ख. c
ग.	असत्य	ग.	हीन	ग. कफ	ग. c
घ.	असत्य	घ.	मधु	घ. कफ	घ. d
ड.	सत्य	ड.	श्रेष्ठ	ड. सैन्धा नमक	ड. a

7.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 प्रो0 रामहर्ष सिंह – स्वस्थवृत्त विज्ञान – चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।

2 कल्याण आरोग्य अंक (जनवरी एवं फरवरी 2001 ई0) – गीता प्रेस, गोरखपुर।

3 आचार्य बालकृष्ण – आयुर्वेद सिद्धान्त रहस्य, दिव्य प्रकाशन, दिव्य योग मन्दिर ट्रस्ट, हरिद्वार। (संस्करण फरवरी 2007)।

4 ब्रह्मवर्चस – आयुर्वेद का दर्शन, क्रिया शारीर एवं स्वस्थ वृत्त, श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट, शांतिकुँज, हरिद्वार। (छटा संस्करण 2010)

5 आचार्य राजवीर शास्त्री – वैदिक सन्ध्या हवन पद्धति – आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली। (संस्करण अक्टूबर 1999)

7.10 निबन्धात्मक प्रश्न–

1.आदान एवं विसर्ग काल की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए इनकी ऋतुओं की सविस्तार व्याख्या किजिए।

2.आदान एवं विसर्ग काल में शारीरिक बलाबल की स्थिति को सविस्तार समझाइये।

3. आदान एवं विसर्ग काल की उपयुक्त ऋतुचर्या पर प्रकाश डालिए।

4. आदान एवं विसर्ग काल में स्वास्थ्य की उत्तम, मध्यम एवं हीन अवस्थाओं को समझाइये।

इकाई 8 : ऋतुसंधि, यम दष्ट्रा, हंसोदक एवं ऋतुहरीतकी

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 ऋतुसंधि का अर्थ एवं परिचय
8.3.1 ऋतुसंधि के करणीय कर्म
8.4 यमदष्ट्रा का अर्थ एवं परिचय
8.4.1 यमदष्ट्रा के करणीय कर्म
8.5 हसोंदक का अर्थ एवं परिचय
8.5 हसोंदक का महत्व, विधि एवं सावधानियाँ
8.5 ऋतुहरीतकी का अर्थ एवं परिचय
8.5 ऋतुहरीतकी का महत्व, विधि एवं सावधानियाँ
8.6 सारांश
8.7 पारिभाषिक शब्दावली
8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
8.10 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

प्रिय विधार्थियों, आपने पूर्व की इकाई में आपने आदान एवं विसर्ग काल के विषय में ज्ञान प्राप्त किया और आदान व विसर्ग काल की छह ऋतुओं में शारीरिक बलाबल की स्थिति के विषय में जाना। आपने पूर्व इकाई में शारीरिक बल के रक्षण हेतु ऋतुनुसार उपयुक्त आहार–विहार के महत्व को भी समझा। आदान एवं विसर्ग काल की छह ऋतुओं के अध्ययन के उपरान्त आपके मन में यह प्रश्न उपस्थित होना स्वाभाविक ही है कि आदान और विसर्ग काल में ऋतुपरिर्वतन काल को क्या संज्ञा दी जाती है ? ऋतुओं के परिर्वतन काल में क्या क्या सावधानियाँ रखनी चाहिए अर्थात इस काल में क्या क्या करणीय और अकरणीय कर्म होते हैं। चूंकि ऋतु परिर्वतन काल स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से विशेष महत्वपूर्ण स्थान रखता है जिसका मनुष्य के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर सीधा प्रभाव रखता है अतः इस संदर्भ में ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य हो जाता है क्योंकि ऋतु परिर्वतन काल के विषय में जानने के उपरान्त करणीय एवं अकरणीय कर्मों पर ध्यान देकर हम अपने स्वास्थ्य को उन्नत अवस्था में बनाए रख सकते हैं।

इसके साथ साथ यमदष्ट्रा एवं हसोंदक दो ऐसे महत्वपूर्ण विषय हैं जिनका ऋतुचर्या में बहुत अधिक महत्व है। यमदष्ट्रा का ऋतुचर्या में महत्व होने के साथ साथ धार्मिक भी है। इस काल में आहार विहार पर विशेष ध्यान रखते हुए धार्मिक कार्य भी किये जाने का विधान है। हंसोदक वर्ष की ऋतुओं का वह काल विशेष है जिसमें सूर्य एवं चन्द्रमा की किरणों में विशेष प्रकार की प्रखरता रहती है। इस प्रखरता के कारण इस ऋतु का महत्व भी अनुपम है। यद्यपि आपने इन विषयों के विषय में पूर्व में सुना अवश्य होगा, जिसे जानने की जिज्ञासा अवश्य ही आपके मन में रही होगी। प्रस्तुत इकाई में स्वस्थवृत्त के अनुसार यमदष्ट्रा एवं हसोंदक नामक विषयों पर गहन विचार मंथन किया गया है।

प्रिय विधार्थियों, आयुर्वेद शास्त्र में स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से हरितकी को बहुत महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इसके लाभकारी दिव्य गुणों से प्रभावित होकर वर्ष के बारह महिनों में हरितकी सेवन का उपदेश किया गया है। हरितकी से भी आप परिचित अवश्य होगें, प्रायः घर के बजुर्ग इसके सेवन नियमित रुप से करते रहते हैं। इसे सामान्य बोलचाल की भाषा में हरड के नाम से जाना जाता है। अब आपके मन में भी इसके विषय में जानने की जिज्ञासा अवश्य ही उत्पन्न हुई होगी। प्रस्तुत इकाई का

अध्ययन करने से आप अलग अलग ऋतुओं में हरितकी सेवन की विधि, लाभ एवं सावधानियों का ज्ञान प्राप्त कर पाओगें।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- ऋतु संधि का अर्थ एवं सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेगें।
- ऋतु संधि में शारीरिक बलाबल की स्थिति को जान पाओगें।
- ऋतु संधि के करणीय कर्मों एवं पथ्य आहार का वर्णन कर सकेंगे।
- यमदष्ट्रा सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेगें।
- यमदष्ट्रा के महत्व को जान पाओगें।
- ऋतुहरीतकी का अर्थ एवं सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेगें।
- ऋतुनुसार हरीतकी सेवन का ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।
- प्रस्तुत इकाई के अन्त में प्रश्नों के उत्तर दे सकेंगे।

8.3 ऋतुसंधि का अर्थ एवं परिचय

प्रिय पाठकों, ऋतु संधि दो शब्दों, ऋतु और संधि से मिलकर बनता है। इस शब्द का संधि विच्छेद करने पर इसके अर्थ का ज्ञान होता है कि ऋतुओं की संधि का काल ऋतु संधि कहलाता है। ऋतु का अर्थ तो आपको स्पष्ट होगा ही कि वर्ष के छोटे कालखण्ड को ऋतु की संज्ञा दी जाती है। अर्थात ऋतु वर्ष का वह निर्धारित एवं निश्चित काल (समय) है जिसमें वातावरण का तापमान, आर्द्रता एवं दिन–रात की अवधि लगभग एक समान बनी रहती है। इस संदर्भ में आपको पूर्व ज्ञान है कि आयुर्वेद शास्त्र में एक वर्ष को छह ऋतुओं में विभाजित किया जाता है जिनका विस्तृत अध्ययन आपने पूर्व इकाई में कर लिया है। इन छह ऋतुओं के आपस में मिलनकाल के आधार पर छह ऋतु संधिकाल की उत्पत्ति होती है। अर्थात वर्ष में छह ऋतु संधिकाल होते हैं। इस प्रकार ऋतुसंधि का अर्थ स्पष्ट होता है–वह काल जब दो ऋतुएं आपस मे मिलती है, ऋतुसंधि कहलाती है।

ऋतु संधि के अर्थ को और अधिक स्पष्ट रुप में समझें तो व्यतीत हो रही ऋतु के अन्तिम सप्ताह एवं प्रारम्भ हो रही ऋतु के प्रथम सप्ताह को **ऋतुसंधि** की संज्ञा से सुशोभित किया जाता है। इस प्रकार वर्ष में ऋतुओं की संख्या छह होने के कारण छह ऋतुसंधि होती है। ऋतुसंधि काल में व्यतीत हो रही ऋतु की चर्या का त्याग करते हुए नवीन ऋतु की चर्या का पालन करना चाहिए। चूंकि दो ऋतुओं की चर्याएँ अलग अलग होती है एवं दो अलग अलग ऋतुओं में शरीर में वात–पित्त एवं कफ नामक त्रिदोषों की स्थिति भी भिन्न भिन्न होती है अतः स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से यह काल विशेष महत्वपूर्ण हो जाता है। प्रायः इस काल में शरीर में त्रिदोषों का असन्तुलन हो जाता है और शरीर व्याधि से ग्रस्त हो जाता है। हम व्यवहारिक रुप में देखते है कि ऋतुसंधि काल, जिसे सामान्य बोलचाल की भाषा में मौसम बदलने का काल कहा जाता है, इस काल में शरीर अनेक प्रकार के रोगों से ग्रस्त हो जाता है। विशेष रुप से वात, पित्त एवं कफ दोषों का असंतुलन इस काल में बहुत अधिक देखा जाता है। इस विषय को जानने एवं समझने के लिए सर्वप्रथम हमें ऋतुसंधि को स्पष्ट करना अनिवार्य होगा। ऋतुसंधि को स्पष्ट करते हुए आयुर्वेद शास्त्र के सुप्रसिद्ध विद्वान आचार्य वाग्भट् कहते हैं –

ऋत्वोरत्यादिसप्ताहाबृतुसंधिरिति स्मृतः।
तत्र पूर्वो विधिस्त्याज्यः सेवनीयोऽपरः क्रमातः।।
असात्म्यजा हि रोगाः स्युः सहसा त्यागशीलनात्।(वा0 सू0 3)

व्यतीत हो रही ऋतु के अन्तिम तथा प्रारम्भ हो रही ऋतु का प्रथम सप्ताह ऋतुसंधि कहलाता है। इस काल में जाने वाली ऋतु की विधि का त्याग और नवीव ऋतु का आचरण क्रमपूर्वक पादांशिक विधि से करना चाहिए ताकि सहसा त्याग या प्रयोग से असात्म्य जन्य रोग न हो पाए।

इस प्रकार आचार्य वाग्भट् के अनुसार व्यतीत हो रही ऋतु के अन्तिम तथा प्रारम्भ हो रही ऋतु का प्रथम सप्ताह ऋतुसंधि कहलाता है। ऋतुसंधि के अन्तर्गत दो सप्ताहों के काल

को रखा जाता है। दिनों की संख्या के अनुसार ऋतुसंधि का काल प्रन्द्रह दिनों का होता है जिसमें व्यतीत हो रही ऋतु का अन्तिम सप्ताह एवं प्रारम्भ हो रही ऋतु का प्रथम सप्ताह आता है। जिस प्रकार हमने पूर्व में ही यह स्पष्ट कर दिया है कि ऋतुसंधि का काल स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से विशेष महत्वपूर्ण काल होता है जिसमें स्वास्थ्य के विकृत होने की सम्भावना बहुत अधिक होती है अतः इस काल में आहार विहार पर विशेष ध्यान देने की आवश्यक्ता होती है। इसके साथ साथ करणीय कर्मों को जानकर अपने स्वास्थ्य को उन्नत अवस्था में बबनाए रख जा सकता है। अतः अब ऋतु संधि के करणीय कर्मों पर विचार करते हैं –

8.3.1 ऋतुसंधि के कारणीय कर्म–

जिज्ञासु पाठकों, ऋतु संधि वातावरण का वह परिर्वतन काल होता है जिसमें वातावरण ऋतु परिवर्तन की अवस्थाओं से गुजरता है। ऋतुपरिवर्तन काल का सीधा प्रभाव मनुष्य के शरीर एवं मन पर पडता है। जैसा कि आपको विदित ही होगा कि सूर्य, चन्द्रमा एवं वायु देवता क्रमशः प्रकृति में आदान, प्रदान एवं विक्षेप नामक महत्वपूर्ण कर्मों को करते हैं। इन तीन देवों के प्रतिनिधि के रुप में मानव शरीर में पित्त, कफ एवं वात नामक दोष उपरोक्त कर्मों को सम्पादित करने का कार्य करते हैं। मानव शरीर में पित्त दोष ऊर्जा प्रदान करने का, कफ दोष शरीर को सौम्यता एवं बल प्रदान करने का एवं वात दोष शरीर को गतिशील एवं चंचल बनाने का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। ऋतुपरिवर्तन काल का आधार सूर्य एवं पृथ्वी की स्थितियों में परिवर्तन होना होता है, इस परिवर्तन के फलस्वरुप शरीर में वात, पित्त एवं कफ नामक त्रिदोषों की स्थितियां भी परिवर्तित होती है। चूंकि वात, पित्त एवं कफ दोष शरीर के स्वास्थ्य का आधार होते हैं अतः इन दोषों में परिवर्तन का प्रभाव मनुष्य के स्वास्थ्य पर पडता है। ऋतुपरिवर्तन काल जिसे आयुर्वेद शास्त्र में ऋतुसंधिकाल की संज्ञा से सुशोभित किया गया है, इस काल में त्रिदोषों की स्थितियां तेजी से परिवर्तित होती है। इन त्रिदोषों के परिवर्तनों पर नियंत्रण रखने के लिए ऋतुसंधिकाल के करणीय कर्मों का उपदेश आयुर्वेद के आचार्यों एवं विद्धानों द्वारा किया गया है। उपरोक्त तथ्यों को जानने एवं समझने के उपरान्त अब आपके मन में ऋतुसंधि के करणीय कर्मों को जानने की जिज्ञासा भी अवश्य ही बढ गयी होगी, अतः अब ऋतु संधि के करणीय कर्मों पर विचार करते हैं –

(1) ऋतुसंधि काल में मनुष्य को अपने शरीर में वात, पित्त एवं कफ दोषों की संचित, प्रशमित अथवा कुपित अवस्था पर ध्यान रखना चाहिए। इन त्रिदोषों को विकृत होने से बचाने हेतु उपयुक्त आहार एवं विहार करना चाहिए। त्रिदोषों को सम बनाने हेतु ऋतुनुसार उपयुक्त आहार का सेवन करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि ऋतुसंधि काल का सबसे प्रथम करणीय कर्म शरीर में त्रिदोषों पर ध्यान देकर इन्हे प्राकृत अवस्था में बनाए रखना है।

(2) ऋतु संधि काल में मनुष्य को व्यतीय हो रही ऋतु की चर्या का त्याग करते हुए आने वाली ऋतु की चर्या का पालन करना चाहिए। इस संदर्भ में मनुष्य को चर्याओं का ज्ञान करते हुए अनुकूल चर्या का पालन करना चाहिए। यहाँ पर ध्यान देने वाला तथ्य यह है कि मनुष्य को ऋतु संधि काल में एकदम से एक चर्या का त्याग एवं अगली चर्या को अपनाना नही चाहिए अपितु इसमें तेजी नही करते हुए धीरे धीरे एक चर्या का त्याग एवं दूसरी चर्या का पालन करना चाहिए।

(3) ऋतु संधि काल में वातावरण के तापक्रम, वायु की आर्द्रता, गति, दिशा आदि में परिवर्तन होते हैं, जिनका सीधा प्रभाव मनुष्य के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर पडता है। ऋतु संधिकाल में इन वातावरणीय परिवर्तनों से शरीर को बचाने हेतु उपयुक्त वस्त्र, सोने का स्थान, खाने–पीने के खाद्य पदार्थों आदि का समुचित प्रबन्ध करना चाहिए।

(4) ऋतु संधि काल में श्रम एवं विश्राम में संतुलन बनाए रखना अत्यन्त आवश्यक होता है। इस काल में शरीर से प्रर्याप्त श्रम एवं उचित विश्राम करना चाहिए। क्षमता से अधिक श्रम करने अथवा पूर्ण रुप से श्रमहीन व विलासितापूर्ण जीवन यापन करने से शरीर के दोषों, धातुओं एवं मलों में विषमता उत्पन्न हो जाती है और शरीर के स्थास्थ्य का स्तर हीन हो जाता है।

(5) ऋतु संधि काल में यौगिक क्रियाओं का अभ्यास अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य होता है। इस काल में त्रिदोषों को सम बनाए रखने में यौगिक क्रियाओं जैसे षट्कर्म, आसन, प्राणायाम एवं ध्यान आदि का अभ्यास अपनी क्षमतानुसार नियमित रुप से करना चाहिए।
(6) ऋतु संधि काल में दिनचर्या, रात्रिचर्या एवं ऋतुचर्या का पालन पूर्ण अनुशासन के साथ करना चाहिए। यद्यपि दिनचर्या, रात्रिचर्या एवं ऋतुचर्या का पालन मनुष्य को अपने दैनिक जीवन में करना चाहिए किन्तु ऋतु संधि काल में पूर्ण अनुशासन के साथ इनका पालन करने से स्वास्थ्य उन्नत अवस्था में बना रहता है।
(7) ऋतु संधि काल में स्वच्छता पर विशेष ध्यान रखना चाहिए। चूंकि स्वच्छता में ईश्वर का वास होता है और गंदगी से नकारात्मक ऊर्जा की उत्पत्ति होती है अतः ऋतु संधिकाल में स्वयं की व्यक्तिगत एवं आसपास के वातावरण की अर्थात सामाजिक स्वच्छता पर विशेष ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। इस काल में प्रतिदिन स्वच्छ जल से स्नान करते हुए साफ स्वच्छ वस्त्रों को धारण करना चाहिए। इसके साथ साथ अपने घर, कार्यालय एवं आस पास की भी सफाई करनी चाहिए।
(8) कुछ विद्धानों एवं मनोवैज्ञानिको की मान्यता है कि चन्द्रमा मन के रुप में हमारे हृदय में प्रतिष्ठित है। इसीलिए चन्द्रमा की कलाओं का सीध प्रभाव मनुष्य के मन पर पडता है। प्रायः यह देखा भी जाता है कि अमावस्या एवं पूर्णिमा के दिन मनोरोग विशेष रुप से वृद्धि को प्राप्त होते हैं। इस संदर्भ में ऋतु संधि का महत्व बढ जाता है क्योंकि नयी ऋतु का प्रारम्भ कृष्ण पक्ष की पूर्णता अर्थात अमावस्था से आगे शुक्ल पक्ष की प्रथम तिथि से होता है। इस काल में मनुष्य के मन में अनेक प्रकार के विक्षेपों की उत्पत्ति होती है। इन विक्षेपों से मन को बचाए रखने हेतु ऋतु संधिकाल में भय, ईष्या, क्रोध एवं द्वेष आदि नकारात्मक एवं मानसिक ऊर्जा को असंतुलित करने वाले कारकों का पूर्ण रुप से त्याग कर देना चाहिए। बल्कि इनके स्थान पर मानसिक ऊर्जा को प्रबल बनाने हेतु प्रसन्नता एवं सन्तोष का अनुभव करते हुए सत्कार्य करने चाहिए।
(9) ऋतु संधि काल बाह्य वातावरण के साथ साथ मनुष्य की शारीरिक एवं मानसिक ऊर्जा के परिवर्तन का काल होता है। परिवर्तन के इस दौर में इन ऊजाओं का क्षय एवं वृद्धि होनी स्वाभाविक ही होती है। इससे इन ऊर्जाओं में असंतुलन की भी संभावना रहती है। अतः ऋतु संधि काल में शारीरिक ऊर्जा को सम बनाने हेतु उपयुक्त आहार विहार एवं र्यागिक क्रियाओं का अभ्यास महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है तो वहीं दूसरी और मानसिक ऊर्जा के संचय हेतु ऋतु संधि काल में यज्ञ, हवन, दान, तप, जप, सेवा, स्वाध्याय, परोपकार, उपवास, प्रार्थना आदि धार्मिक कर्मकाण्डों को करना चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य की शारीरिक एवं मानसिक ऊर्जा में संतुलन बना रहता है और स्वास्थ्य उन्नत अवस्था को प्राप्त होता है।
(10) ऋतु संधि काल शारीरिक एवं मानसिक ऊर्जा के संचय हेतु मौन साधना करनी चाहिए। मनुष्य की शारीरिक एवं मानसिक ऊर्जा एक बडा भाग बोलने के रुप में उपयोग में होता रहता है। बोलने की क्रिया में शरीर के साथ साथ मन की ऊर्जा का भी उपयोग होता है। योग शास्त्रों में अधिक बोलने को प्रजल्प की संज्ञा देकर योग साधना के बाधक तत्व के रुप में इसे वर्णित किया गया है। ऋतु संधिकाल में शारीरिक–मानसिक ऊर्जा के संचय एवं आत्मोत्थान हेतु मौन साधना करनी चाहिए।
प्रिय पाठकों, इस प्रकार आपने ऋतु संधिकाल के महत्वपूर्ण करणीय कर्मों का ज्ञान प्राप्त किया। इस विषय को जानने एवं समझाने के उपरान्त अब आपके मन में इकाई के दूसरे महत्वपूर्ण विषय यमदृष्टा के विषय में जानने की जिज्ञासा भी अवश्य ही बढ गयी होगी। इस विषय का प्रारम्भ करने से पूर्व आपको यह भी जान लेना चाहिए कि यमदष्ट्रा भी ऋतु संधिकाल का ही एक विशेष भाग है जो अपनी कुछ विशिष्टताओं से युक्त होता है। इसका सविस्तार वर्णन इस प्रकार है –

8.4 यमदष्ट्रा का अर्थ एवं परिचय

प्रिय पाठकों, भारतीय संस्कृति, सभ्यता एवं आयुर्वेद शास्त्र में यमदष्ट्रा का अपना एक विशिष्ट स्थान है। जैसा कि आपको पूर्व में ही स्पष्ट किया गया है कि यमदष्ट्रा भी ऋतु संधिकाल का ही एक काल विशेष है जो अपनी कुछ विशिष्टताओं से युक्त होता

है। इस काल की विशिष्टताएं ही इसके अर्थ एवं परिचय को स्पष्ट करती है। यमदष्ट्रा काल की प्रमुख विशिष्ठताएँ इस प्रकार हैं –

हिन्दु धर्म में मान्यता है कि इस काल से यम अर्थात देव और दष्ट्रा अर्थात देखना प्रारम्भ कर देते हैं अतः इस काल को यमदष्ट्रा की संज्ञा से सुशोभित किया जाता है। इस विषय को अलग शब्दों में इस प्रकार वर्णित किया गया है कि वर्ष का वह काल जब जीवों के शुभ और अशुभ कर्मों का निर्णय करने वाले यमराज जाग्रत अवस्था में आकर अपने कार्य में लीन हो जाते हैं, यमदष्ट्रा के नाम से जाना जाता है। इस विषय में सामाजिक मान्यता यह है कि यह है कि इस समय से देव जाग्रत हो जाते है और इसी कारण सहीं से शुभ कार्य जैसे लगन, शादी एवं विवाह आदि का प्रारम्भ हो जाता है।

इस काल के संदर्भ में दूसरी मान्यता यह है कि कार्तिक माघ में संसार के पालक भगवान विष्णु अपनी चार माह की योगनिन्द्रा से जागते हैं। भगवान विष्णु को योगनिन्द्रा से जगाने हेतु इस काल में दीपदान करने की प्रथा प्राचीन काल से चली आ रही है। इस काल में दीपदान द्वारा देवोत्थान किया जाता है जिसके फलस्वरुप कार्तिक एकादशी के दिन भगवान विष्णु योगनिन्द्रा से जागकर अपने कार्यों में लीन हो जाते हैं। इस काल के विषय में लोक कथा यह है कि 18 दिनों के विनाशकारी महाभारत युद्ध में अनेक योद्धाओं और अपने सगे सम्बन्धियों के विनाश से आहत होकर जब पाण्डव मानसिक रुप से विचलित हो गये तब योगीराज श्रीकृष्ण पाण्डवों के साथ गंगा नदी के तट पर गढखादर के विशाल रेतीले मैदान पर आए। कार्तिक माघ की शुक्ल अष्टमी को पाण्डवों ने गंगा नही पर स्नान किया तथा कार्तिक शुक्ल चतुदर्शी तक पाण्डवों ने गंगा नदी के तट पर यज्ञ किया। तत्पश्चात दीपदान करते हुए दिवंगत आत्माओं की शान्ति के लिए दीपदान करते हुए श्रृद्धाँजलि अर्पित की। यह यमदष्ट्रा का ही काल था जिसका महत्व प्राचीन काल से चला आ रहा है।

जिज्ञासु पाठकों, इस प्रकार यमदष्ट्रा के विषय में जानने के उपरान्त आपके मन में इसके समय के विषय में जानने का प्रश्न अवश्य ही उत्पन्न हुआ होगा। अतः आपको यह स्पष्ट कर लेना चाहिए कि यमदष्ट्रा के अन्तर्गत कार्तिक माघ के अन्तिम आठ दिन एवं अहगन (मार्गशीर्ष) माघ के शुरु के आठ दिन अर्थात कुल सोलह दिनों का वर्णन आता है। इस काल को यमराज की दाढ भी कहा जाता है। इस काल विशेष में अल्पाहार सेवन पर प्रकाश डालते हुए आचार्य शाडर्गधर कहते हैं –

कार्तिकस्य दिनान्यष्टावष्टाग्रहणस्य च।
यमदष्ट्रा समाख्याता स्वल्पभुक्तो हि जीवति।। (आचार्य शाडर्गधर)

जिज्ञासु पाठकों, इस प्रकार स्पष्ट होता है कि यमदष्ट्रा का प्रारम्भ कार्तिक मास से होता है। जैसा कि आपको ज्ञान होगा कि दशाहरा एवं दीपावली नामक प्रमुख उत्सवों का काल भी कार्तिक मास ही होता है। इस कारण कार्तिक मास को उत्सवों का मास भी कहा जाता है। शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से भी यह काल उत्तम होता है क्योंकि इस काल में सूर्य और चन्द्रमा की किरणों में समरसता की प्रबलता होती है जिसका सकारात्मक प्रभाव मनुष्य के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर पडता है।इस काल की श्रेष्ठता पर प्रकाश डालते हुए स्कंदपुराण में कहा गया है –

रोगापहं पातकनाशकृत्परं समबुद्धिदं पुत्रधनादि साधकम्।

अर्थात कार्तिक मास आरोग्य प्रदान करने वाला, रोगविनाशक, पुत्र व धन–धान्य आदि की साधना हेतु सर्वोत्तम काल है। चूंकि कार्तिक मास यमदष्ट्रा का भी काल है। अतः इस काल में उपरोक्त साधना करनी चाहिए। यह काल पापों के शमन एवं शुभ कर्मों के फलों की प्राप्ति का उत्तम काल है। इस काल में मनुष्य को निम्न लिखित करणीय कर्मों को करना चाहिए।

8.4.1 यमदष्ट्रा के करणीय कर्म

प्रिय पाठकों, यमदष्ट्रा काल के प्रमुख करणीय कर्म इस प्रकार है –

(1) इस काल में विधिपूर्वक श्रृद्धाभाव से दीपदान करना चाहिए। दीपदान के अन्तर्गत रात्रिकाल में खुले आसमान के नीचे दीपक जलाया जाता है। यह दीपक नदी, पोखर, तालाब अथवा जलाशय के निकट जलाना और भी अधिक शुभ माना जाता है। इस संदर्भ में सामाजिक मान्यता है कि यमदृष्ट्रा काल में दीपदान करने से यमलोक गये पितृों की आत्मा को शान्ति प्रापत होती है तथा साथ ही साथ ऐसा करने से मनुष्य के जीवन में छाया अंधकार दूर होता है एवं भाग्य लक्ष्मी जाग्रत होती है।

(2) इस काल में तुलसी का सेवन एवं पूजन करना चाहिए। यद्यपि तुलसी का मनुष्य के जीवन में विशेष महत्व होता है तथा इसका सेवन प्रत्येक काल में हितकारी होता है। किन्तु यमदृष्ट्रा काल में इस कृत्य का अपना अलग ही महत्व होता है। यमदृष्ट्रा के समय कार्तिक मास में तुलसी का सेवन एवं पूजन इस काल का करणीय कर्म है।

(3) इस काल में प्रातःकाल ब्रह्म मुर्हत में उठकर स्नान, पूजा अर्चना एवं योगाभ्यास करना चाहिए। इसका वर्णन यौगिक ग्रन्थों में करते हुए स्पष्ट किया गया है कि नये योग साधकों को अपनी साधना का प्रारम्भ शरद् ऋतु (यमदष्ट्रा काल) में करना चाहिए। इस काल में की गयी साधना रोग मुक्त एवं शेघ्र फल प्रदान करने वाली होती है।

(4) इस काल में दान का विशेष महत्व होता है। यद्यपि दान ऐसा श्रेष्ठ धार्मिक कार्य है जिसका फल मनुष्य को इस लोक के साथ साथ परलोक में भी प्राप्त होता है। यमदष्ट्रा काल में दान करने से मनुष्य को उच्च कोटि के फलभोगों की प्राप्ति होती है।

(5) इस काल में मनुष्य को भूमि पर शयन करना चाहिए। भूमि पर शयन करने से मनुष्य के मन से अहंकार भाव नष्ट होता है तथा मन में सात्विक वृत्ति का विस्तार होता है। भूमि पर शयन करने से मनुष्य स्वयं को प्रकृति एवं परमात्मा के अत्यन्त निकट अनुभव करता हुआ शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक ऊर्जा को ग्रहण करता है।

(6) इस काल में मन तथा इन्द्रियों पर संयम का अत्यन्त महत्व है। यमदष्ट्रा काल में रसना पर संयम करते हुए अल्पाहार का सेवन एवं व्रत–उपवास करना चाहिए। व्रत के काल में उदड, मूँग, चना, मटर, राई, हींग और मूली का सेवन नही करना चाहिए। इसके साथ साथ इस काल में ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।

(7) इस काल में मनुष्य को अपनी वाणी पर संयम करना चाहिए। वाणी पर संयम और नियंत्रण करते हुए कम बोलना चाहिए। किसी की निन्दा अथवा अन्य विवाद में नही पडना चाहिए। पराई धन सम्पत्ति को पाने की इच्छा का पूर्ण परित्याग करते हुए अस्तेय तथा अपरिग्रह में स्थित करना चाहिए। इसके साथ साथ इस काल में ब्रह्मचर्यपालन करना चाहिए।

(8) इस काल में अपने मन को सकारात्मक भावों तथा विचारों के साथ जोडकर ईश्वर स्तुति, प्रार्थना व उपासना में लगाना चाहिए। यह काल ईश्वर के निकट जाने एवं आत्मबोध के साथ आत्मज्ञान करने का एक श्रेष्ठ काल होता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि यमदष्ट्रा काल में मनुष्य को अपने आहार विहार पर संयम करते हुए धार्मिक कार्य व्रत, जप, तप एवं स्वाध्याय आदि करने चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य का शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं बौद्धिक विकास होता है तथा वह आत्मज्ञान प्राप्त करते हुए मुक्ति के पथ पर अग्रसर होता है।

जिज्ञासु पाठकों, ऋतुसंधि एवं यमदष्ट्रा के विषय में ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त अब आपके मन में इकाई के अन्य महत्वपूर्ण बिंदु हंसोदक के विषय में जानने की जिज्ञासा भी अवश्य ही बलवती हो गयी होगी। अतः अब हंसोदक पर विचार करते हैं –

8.5 हंसोदक का अर्थ एवं परिचय

प्रिय पाठकों, वर्ष की छह ऋतुओं में शरद् ऋतु का अपना विशिष्ट स्थान है। इस ऋतु का गुणगान ऋषि मुनियों एवं योगियों से लेकर आधुनिक कवियों ने अपने अपने ढंग से

किया है। गोस्वामी तुलसीदास रामचरित मानस नामक महाकाव्य में इस ऋतु का गुणगान करते हुए कहते हैं –

वर्षा बिगत सरद् ऋतु आई, लछिमण देखहु परम सुहाई।।
फूलें कास सकल महि छाई, जनु बरसाँ कृत प्रगट बुढाई।।

(रामचरित मानस)

अर्थात् हे लक्ष्मण ! देखो वर्षा ऋतु बीत गयी और परम सुन्दर शरद ऋतु आ गयी। फूले हुए कास से सारी पृथ्वी छा गयी मानों वर्षा ऋतु ने कासरुपी सफेद बालों के रुप में अपना वृद्घापकाल प्रकट किया है।

इसी प्रकार महाकवि तुलसीदास ऋतुसंहार में शरद् ऋतु का उल्लेख वर्षा की ओट में आती नायिका के रुप में करते हैं। महाकवि कालिदास कहते हैं कि फूलों के कास के वस्त्र पहने, मस्त हंसों के के स्वर के विछुए पीने, पके धान से मनोहर शरीर वाली और खिले कमल के समान सुन्दर मुख वाली शरद् ऋतु नववधू की तरह आ गयी है। बॉस की झाडियों ने वसुंधरा को, चन्द्रमा ने रात्रि को, हंसों ने नदियों को, कमलों ने तालाबों को, पुष्पों से आच्छादित वृक्षों ने जंगल को और मालती के फूलों ने वाटिकाओं को उज्जवल और धवल बना दिया है। शरद् ऋतु में वृष्टि थम जाती है और मौसम सुहावना हो जाता है। दिन के समय सामान्य एवं रात्रिकाल में वातावरण में ठंड से युक्त हो जाता है। यह काल अत्यन्त मनोहरी होता है जिसमें दिन में सूर्य की किरणों से तप्त एवं रात्रिकाल में चन्द्रमा की सौम्य किरणों से शीतल होकर नदी, सरोवर एवं जलाशयों का जल निर्मल और पवित्र हो जाता है। यह जल स्नान, अवगाहन और पान के लिए अमृत के समान हितकारी होता है। इस काल में सरोवर कमल और हंसों से युक्त हो जाते हैं। जलाशयों से हंसों एवं कमल से युक्त होने के कारण इस काल को हंसोदक की संज्ञा से सुशोभित किया जाता है। यह अत्यन्त सुहावना एवं मनोहरी काल है जिसमें प्रकृति एक नववधू के रुप में श्रृगांरवान हो जाती है। आयुर्वेद शास्त्र में शरद् ऋतु के इस मनोहरी काल को हंसोदक की संज्ञा से सुशोभित किया जाता है। चूंकि इस काल में अगस्त्य नक्षत्र उदय होकर प्रभावकारी हो जाता है अतः इस काल का महत्व और भी अधिक बढ जाता है।

8.5.1 हंसोदक का महत्व

प्रिय पाठकों, वर्ष के इस महत्वपूर्ण एवं मनोहर काल के विषय में जानने के उपरान्त अब आपके मन में इसके महत्व एवं करणीय कर्मों के विषय में जानने की जिज्ञासा भी अवश्य ही उत्पन्न हुई होगी। अतः अब हंसोदक के महत्व एवं करणीय कर्मों पर विचार करते हैं –जिज्ञासु पाठकों, शरद् ऋतु में हंसोदक काल का अपना विशिष्ट स्थान होता है। जैसा कि आपने पूर्व में अध्ययन किया कि इस काल में सूर्य किरणों की उष्णता एवं चन्द्रमा की सौम्य किरणों की शीतलता के प्रभाव से सरोवरों, जलाशयों, नदियों एवं सागरों का जल विशेष प्रकार के गुणों से युक्त हो जाता है। इस जल में स्नान, अवगाहन अर्थात डूबकी लगाना एवं पान अर्थात सेवन करना अमृत के समान गुणकारी एवं हितकारी प्रभाव रखता है। अतः इस काल में सरोवरों, जलाशयों, नदियों एवं सागरों में स्नान करने की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। उत्तरी भारत में इसी काल में नाहन पर्व मनाया जाता है जिसके अन्तर्गत पवित्र गंगा नदी में स्नान (गंगा स्नान) किया जाता है।

इसी समय शरद् पूर्णिमा पडती है जिसमें चन्द्रमा की किरणें अपनी विशेष प्रखरता से पृथ्वी पर पडती है। इस शरद् पूर्णिमा के संदर्भ में सामाजिक मान्यता है कि इस रात्रि में चन्द्रमा से किरणों के रुप में अमृत की वर्षा होती है। इस अमृतवर्षा के ग्रहण करने हेतु इस दिन गाय के दूध में खीर बनाने की प्रथा भारतीय समाज में प्राचीन काल से पारम्परिक रुप से चली आ रही है। शरद् पूर्णिमा के दिन गाय के दूध में खीर बनाई जाती है और इस खीर को खुले बर्तन में चन्द्रमा की चॉंदनी में रात भर के लिए रखा

जाता है। चन्द्रमा की किरणों से आवेशित होकर यह खीर अमृत के अतुल्य गुणों से युक्त हो जाती है जिसके अगले दिन प्रातःकाल सेवन किया जाता है।

प्रिय पाठकों, इस प्रकार आपने इस इकाई के अन्तर्गत ऋतुसंधि के साथ साथ समदष्ट्रा एवं हंसोदक के विषय में ज्ञान प्राप्त किया। अब इकाई के अगले बिंदु ऋतुहरीतकी के विषय में विचार करते हैं। वास्तव में हरीतकी अनेक प्रकार के औषध गुणों से युक्त दिव्य रसायन है जिसका प्रयोग वर्ष के बारह महिनों में किया जा सकता है। किन्तु वर्ष की अलग अलग ऋतुओं में हरीतकी का सेवन अलग अलग द्रव्यों के साथ किया जाता है। अलग अलग ऋतुओं में अलग अलग द्रव्यों के साथ हरीतकी सेवन को ऋतुहरीतकी की संज्ञा दी जाती है जिसका सविस्तार वर्णन इस प्रकार है –

8.6 ऋतुहरीतकी का अर्थ एवं परिचय

जिज्ञासु पाठकों, ऋतुनुसार अलग अलग द्रव्यों के साथ हरीतकी का सेवन करना ऋतुहरीतकी कहलाता है। आयुर्वेद शास्त्र में हरीतकी को शरीर के लिए मातृवत स्नेह प्रदान करने वाली एवं अमृत के समान गुणकारी औषधि कहा गया है।

आयुर्वेद के महत्वपूर्ण ग्रन्थ राज बल्लभ निघुण्टु के अनुसार –

यस्य माता गृहे नास्ति, तस्य माता हरितकी।
कदाचिद् कुप्यते माता, नादोरस्था हरीतकी।।

अर्थात हरीतकी मनुष्यों की माता के समान हित करने वाली है। माता तो कभी कभी कुपित भी हो जाती है परन्तु उदर स्थित अर्थात खायी हुई हरड कभी भी अपकारी नही होती।

8.6.1 ऋतुहरीतकी का महत्व एवं विधि– जिज्ञासु पाठकों, हरीतकी को सामान्य बोलचाल की भाषा में हरड के नाम से जाना जाता है। इसके साथ साथ हर्रे, पथ्या, अभया, पूतना, अमृता, हेमवती, चेतकी, जीवन्ती, विजया एवं रोहणी भी हरीतकी के प्रर्यायवाची शब्द हैं। सभी रोगों का हरण करने के कारण इसे हरड का नाम, रोगों से उत्पन्न होने वाले भय को मिटाने के कारण अभया, सभी रोगों पर विजय प्राप्त करने में सक्ष्म होने के कारण विजया और जीवनी शक्ति में वृद्धि करने के कारण इसे जीवन्ती नामक नामों से सम्बोधित किया जाता है। हरड शरीर से मलों का शोधन करती है, कफ दोष की विकृति दूर करती है अतः इसका सेवन करने से इन्द्रियों का जडत्व देर होकर इन्द्रियों की प्रखरता का विकास होता है। इसका सेवन करने से इन्द्रियों एवं बुद्धि की कुशलता बढती है, इसी कारण हरीतकी को मेध्या भी कहा जाता है।

हरीतकी सेवन करने से कब्ज, उल्टी, पेटदर्द, सिरदर्द, सर्दी–जुकाम, आँखों के रोग, त्वचा के रोग, घाव, मानसिक तनाव तथा अनिन्द्रा आदि रोगों में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है। हरीतकी सेवन से भूख अच्छी लगती है और शौच क्रिया अर्थात पेट की सफाई अच्छी प्रकार होती है। रोगी एवं स्वस्थ सभी प्रकार के मनुष्यों द्वारा विधिपूर्वक किया जा सकता है। ऋतुहरीतकी के अन्तर्गत निम्न प्रकार से हरीतकी सेवन करना चाहिए –

क्रमांक	ऋतु का नाम	अनुपान द्रव्य का नाम
1	वसन्त ऋतु	मधु के साथ
2	गीष्म ऋतु	गुड के साथ
3	वर्षा ऋतु	सैन्धव नमक के साथ
4	शरद् ऋतु	शर्करा के साथ
5	हेमन्त ऋतु	शुण्ठी के साथ

6	शिशिर ऋतु	पिप्पली के साथ

अभ्यास हेतु प्रश्न –

1– **सत्य / असत्य**

(क) ऋतुसंधि काल का सबसे प्रथम करणीय कर्म शरीर में त्रिदोषों को प्राकृत अवस्था में बनाए रखना है।

(ख) ऋतुसंधि काल में मनुष्य को व्यतीय हो रही ऋतु की चर्या का त्याग नही करना चाहिए।

(ग) यमदष्ट्रा काल में व्रत–उपवास नही करना चाहिए।

(घ) हरीतकी सेवन रोगी एवं स्वस्थ सभी प्रकार के मनुष्यों द्वारा विधिपूर्वक किया जा सकता है।

(ड) हरीतकी मनुष्यों की माता के समान हित करने वाली है।

2– रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

(क) ––––– काल में दान करने से मनुष्य को उच्च कोटि के फलभोगों की प्राप्ति होती है।

(ख) ऋतुसंधि के अन्तर्गत –––––––– सप्ताहों के काल को रखा जाता है।

(ग) चन्द्रमा मन के रुप में हमारे ––––––– में प्रतिष्ठित है।

(घ) महाकवि तुलसीदास ऋतुसंहार में ––––––––– ऋतु का उल्लेख वर्षा की ओट में आती नायिका के रुप में करते हैं।

(ड) शरद् ऋतु में ––––––– काल का अपना विशिष्ट स्थान होता है।

3– **एक शब्द में उत्तर दीजिए –**

(क) किस काल में विधिपूर्वक श्रृद्धाभाव से दीपदान करना चाहिए ?

(ख) आयुर्वेद शास्त्र में एक वर्ष को कितनी ऋतुओं में विभाजित किया जाता है ?

(ग) संसार के पालक भगवान विष्णु किस माह में अपनी योगनिन्द्रा से जागते हैं ?

(घ) भूमि पर शयन करने से मनुष्य की किस वर्ग की वृत्ति का विस्तार होता है। है ?

(ड) शरद् ऋतु में हरीतकी का सेवन किस द्रव्य साथ करना चाहिए ?

4–बहुविकल्पीय प्रश्न –

(क) किस मास को उत्सवों का मास भी कहा जाता है –

(a) चैत (b) कार्तिक

(c) अश्विन (d) श्रावन ।

(ख) यमदष्ट्रा काल का करणीय कर्म है –

(a) दीपदान (b) तुलसी पूजन

(c) दान देना (d) सभी ।

(ग) वर्ष के किस दिन अमृतवर्षा होती है –

(a) शरद् पूर्णिमा (b) वर्षा पूर्णिमा

(c) शरद् अमावस्या (d) वर्षा अमावस्या।

(घ) वसन्त ऋतु में हरीतकी का सेवन किस द्रव्य के साथ करना चाहिए –

(a) सैन्धव नमक (b) सुण्ठी

(c) मधु (d) पिप्पली ।

(ड) इन्द्रियों एवं बुद्धि की कुशलता बढाने के कारण हरीतकी को क्या कहा जाता है

(a) मेध्या (b) अभया

(c) जीवन्ती (d) विजया।

8.6 सारांश–

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत इकाई का प्रारम्भ ऋतुसंधि के अर्थ एवं परिचय के साथ किया गया है। इकाई के प्रारम्भ में ऋतुसंधि के अर्थ को समझाते हुए स्पष्ट किया गया है कि

व्यतीत हो रही ऋतु के अन्तिम सप्ताह एवं प्रारम्भ हो रही ऋतु के प्रथम सप्ताह को **ऋतुसंधि** कहा जाता है। चूंकि ऋतुपरिवर्तन काल का सीधा प्रभाव मनुष्य के शरीर एवं मन पर पडता है अतः इकाई में आगे ऋतुसंधि के करणीय कर्मों पर विचार किया गया है। आगे इकाई के अगले बिंदु यमदष्ट्रा को समझाया गया है। यमदष्ट्रा वर्ष का एक ऐसा काल विशेष है जो अपनी कुछ विशिष्ठताओं से युक्त होता है। इकाई में यमदष्ट्रा की इन्ही विशिष्ठताओं को वर्णित करते हुए यमदष्ट्रा काल के प्रमुख करणीय कर्मों को समझाया गया है।

इकाई में आगे ऋतुहरीतकी को स्पष्ट किया गया है। हरीतकी के प्रमुख नामों एवं विशेषताओं को समझाते हुए वर्ष की छह प्रमुख ऋतुओं में अलग अलग द्रव्यों के साथ हरीतकी सेवन को स्पष्ट करते हुए इकाई को पूर्ण किया गया है।

8.7 पारिभाषिक शब्दावली–

त्रिदोष– शरीर में उपस्थित वात–पित्त–कफ नामक तीन उपयोगी द्रव्य
पादांशिक–एक निश्चित एवं सुव्यवस्थित क्रम
सौम्य–शान्त
आदान– लेना, ग्रहण करना
प्रदान– देना
विक्षेप– विचलन, हलचल उत्पन्न करना
आहत– परेशान

8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क.	सत्य	क.	यमदष्ट्रा	क.	यमदष्ट्रा	क.	B
ख.	असत्य	ख.	दो	ख.	छह	ख.	D
ग.	असत्य	ग.	हृदय	ग.	कार्तिक	ग.	A
घ.	सत्य	घ.	शरद्	घ.	सात्विक	घ.	C
ड.	सत्य	ड.	हंसोदक	ड.	शर्करा	ड.	A

8.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 प्रो0 रामहर्ष सिंह – स्वस्थवृत्त विज्ञान – चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली। (पुनःमुद्रित संस्करण 2014)

3 कल्याण आरोग्य अंक (जनवरी एवं फरवरी 2001 ई0) – गीता प्रेस, गोरखपुर।

3 आचार्य बालकृष्ण – आयुर्वेद सिद्धान्त रहस्य, दिव्य प्रकाशन, दिव्य योग मन्दिर ट्रस्ट, हरिद्वार। (संस्करण फरवरी 2007)।

4 ब्रह्मवर्चस – आयुर्वेद का दर्शन, क्रिया शारीर एवं स्वस्थ वृत्त, श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट, शांतिकुँज, हरिद्वार। (छटा संस्करण 2010)

5 आचार्य राजवीर शास्त्री – वैदिक सन्ध्या हवन पद्धति – आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली। (संस्करण अक्टूबर 1999)

8.10 निबन्धात्मक प्रश्न–

1.ऋतुसंधि की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए इसकी सविस्तार व्याख्या किजिए।
2.यमदष्ट्रा से आप क्या समझते हो, यमदष्ट्रा को सविस्तार समझाइये।
3.ऋतुहरीतकी पर सविस्तार निबन्ध लिखिए।

इकाई 9 : सद्वृत्त की अवधारणा एवं महत्व

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 सद्वृत्त का अर्थ
9.4 सद्वृत्त की अवधारणा
9.4.1 वैयक्तिक सद्वृत्त
9.4.2 मानसिक सद्वृत्त
9.4.3 चारित्रिक सद्वृत्त
9.4.4 सामाजिक सद्वृत्त
9.4.5 धार्मिक सद्वृत्त
9.4.6 सामान्य त्याज्य वृत्त
9.5 सद्वृत्त का महत्व
9.6 सारांश
9.7 पारिभाषिक शब्दावली
9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
9.10 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

मानव जीवन अत्यन्त दुलर्भ एवं महत्वपूर्ण है जिसे स्पष्ट करते हुए गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं बडे भाग्य मानव तन पाया, किन्तु यह दुलर्भ मानव तन पाकर भी यदि मनुष्य का स्वास्थ्य सही नही है अर्थात् वह रोग ग्रस्त हो जाए तब यह श्रेष्ठ मानव जीवन भी अर्थहीन बन जाता है, ऐसी अवस्था में जीवन के सुख भी दुख में परिवर्तित हो जाते हैं और नकारात्मकता के अंधकार में मनुष्य अपने जीवन के लक्ष्य से विचलित हो जाता है, तात्पर्य यह है कि मानव जीवन में स्वास्थ्य का महत्व बहुत अधिक है। इस स्वास्थ के परिरक्षण हेतु एवं आतुर अर्थात रोगी मनुष्य के रोग को दूर करने हेतु आयुर्वेद शास्त्र का उपदेश मानव जाति को किया गया है। आयुर्वेद शास्त्र में मनुष्य के स्वास्थ्य को उन्नत बनाने हेतु महत्वपूर्ण बिंदुओं अर्थात मनुष्य द्वारा करणीय एवं अकरणीय कर्मों की सविस्तार व्याख्या की गयी है। आयुर्वेद शास्त्र में इस विषय को सद्वृत्त की संज्ञा दी गयी है तथा इस सद्वृत्त का उद्देश्य स्वस्थ मनुष्य के स्वास्थ्य को उन्नत बनाए रखना अर्थात आरोग्य प्राप्ति एवं इन्द्रियजय (इन्द्रियों पर संयम) कहा गया है।

प्रिय पाठकों, सद्वृत्त के विषय में आपने पूर्व में भी अवश्य ही सुना होगा। घर में माता पिता एवं अन्य वृद्धजनों की सलाह से लेकर ऋषि–मुनियों एवं संत–महापुरुषों के प्रवचनों व उपदेशों का आधार सद्वृत्त ही होता है। इसके साथ साथ पूर्व इकाईयों में आपने दिनचर्या, संधाचर्या, रात्रिचर्या एवं ऋतुचर्या के विषय में जाना और ज्ञान प्राप्त किया कि इन चर्याओं का हमारे स्वास्थ्य के साथ सीधा सम्बन्ध है। ये चर्याएँ सद्वृत्त का महत्वपूर्ण पक्ष हैं। इन चर्याओं के साथ साथ कुछ अन्य महत्वपूर्ण बिंदु भी सद्वृत्त के भाग होते है जिनका हमारे शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य पर अनुकूल तथा सकारात्मक प्रभाव पडता है। इस प्रकार उपरोक्त तथ्यों को जानने एवं समझने के उपरान्त आपके मन में सद्वृत्त के स्वरुप को विस्तार से जानने की जिज्ञासा अवश्य ही उत्पन्न हुई होगी। प्रस्तुत इकाई में आप सद्वृत्त के महत्वपूर्ण बिंदुओं का ज्ञान प्राप्त करोंगे तथा इसके साथ साथ मानव जीवन में सद्वृत्त के महत्व को समझ पाओंगे।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- सद्वृत्त के अर्थ की विवेचना कर सकेंगे।
- सद्वृत्त का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेगें।
- सद्वृत्त को परिभाषित करने एवं समझाने में सक्षम हो सकेंगे।
- सद्वृत्त के महत्व को जान पाओगें।
- प्रस्तुत इकाई के अन्त में दिए गये प्रश्नों के उत्तर दे सकेंगे।

9.3 सद्वृत्त का अर्थ

सद्वृत्त की उत्पत्ति दो शब्दों के मिलने से होती है। प्रथम शब्द सद् एवं द्वितीय शब्द वृत्त। सद् एक सत्य वाचक शब्द है जिसका प्रयोग सही, उपयुक्त, अनुकूल एवं धनात्मक रुप में होता है जबकि वृत्त से तात्पर्य घेरे से होता है अर्थात सद्वृत्त ऐसे सकारात्मक एवं सही नियमों का घेरा है जिनका पालन करने से मनुष्य का स्वास्थ्य उन्नत अवस्था में बना रहता है। वास्तव में सद्वृत्त मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण कारकों का समूह है जिनका पालन करने मनुष्य का स्वास्थ्य उन्नत अवस्था में बना रहता है जबकि इनका अपालन करने से मनुष्य का शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य का स्तर कमजोर हो जाता है एवं वह मनुष्य नाना प्रकार की व्याधियों से ग्रस्त हो जाता है।

सरल भाषा में सद्वृत्त को मानसचर्या की संज्ञा भी दी जाती है क्योकि इसके अर्न्तगत मनुष्य द्वारा किए जाने वाले करणीय कर्मों का समावेश होता है। सद्वृत्त मनुष्य द्वारा किए जाने वाले ऐसे करणीय कर्मों का समूह है जिससे उसका शारीरिक,मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य का स्तर उन्नत अवस्था में बना रहता है।

आधुनिक काल में चिकित्सा विज्ञान के अन्तर्गत स्वस्थवृत्त को हाइजीन (Hygine) के नाम से जाना जाता है। आधुनिक काल में स्वास्थ्य संर्वधन में हाइजीन के महत्व को विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा भी स्वीकार किया गया है, इसीलिए विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O.) स्वास्थ्य के शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक पक्ष को ध्यान में रखते हुए स्वास्थ्य को इस प्रकार परिभाषित करता है –

Health is a state of complete Physical, Mental, Spiritual and Social well being and not merely the absence of disease or infirmity.

अर्थात केवल रोगों की अनुपस्थिति मात्र को ही स्वास्थ्य नही कहा जा सकता है अपितु स्वास्थ्य तो वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक स्तर पूर्ण रुप से स्वस्थ हो।

इस प्रकार है विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O.) द्वारा स्वास्थ्य की व्याख्या शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक पक्ष के आधार पर की गयी है जिसमें शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक पक्ष को स्वास्थ्य का प्रमुख घटक माना गया है। स्वास्थ्य के उपरोक्त चारों पक्षों को उन्नत बनाने वाले नियमों का वृत्त ही स्वस्थवृत्त कहलाता है। दूसरे शब्दों में स्वस्थवृत्त स्वास्थ्य का वह विज्ञान है जिसमें मनुष्य के स्वास्थ्य के उपरोक्त चारों महत्वपूर्ण पक्षों को उन्नत बनाने हेतु करणीय एवं अकरणीय कर्मों की सविस्तार व्याख्या की जाती है। मनुष्य के स्वास्थ्य को उन्नत बनाए रखने में स्वस्थवृत्त का बहुत महत्वपूर्ण स्थान होता है।

प्रिय पाठकों, स्वस्थवृत्त के अर्थ को समझने के उपरान्त अब आपके मन में इस विषय को गहराई से जानने की जिज्ञासा भी बढ गयी होगी, इसीलिए अब स्वस्थवृत्त की अवधारणा पर विभिन्न पक्षों के आधार पर विचार करते हैं।

9.4 सद्वृत्त की अवधारणा

सद्वृत्त आयुर्वेद शास्त्र का एक महत्वपूर्ण विषय है। इस विषय पर आयुर्वेद के विभिन्न आचार्यों ने विचार मंथन किया है। आचार्यों द्वारा शरीर में त्रिदोषों को सम बनाने (आरोग्य प्राप्ति) के साथ साथ ज्ञानेन्द्रियों–कर्मेन्द्रियों एवं मन को स्वस्थ एवं ऊर्जावान बनाए रखने (इन्द्रियजय) के उद्देश्य से सद्वृत्त का उपदेश किया गया है। इस संदर्भ में वैयक्तिक एवं सामाजिक सद्वृत्त का उपदेश किया गया है। वैयक्तिक सद्वृत्त के अन्तर्गत मनुष्य के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाए रखने हेतु स्वच्छता, आहार, अध्ययन व व्यायाम आदि स्वास्थ्य संर्वधन के महत्वपूर्ण बिंदुओं का वर्णन किया गया है जबकि सामाजिक सद्वृत्त के अन्तर्गत नैतिक, चारित्रिक एवं सामाजिक नियमों के पालन का उपदेश किया जाता है। इन नियमों का प्रभाव मनुष्य के सम्पूर्ण स्वास्थ्य (Holistic Health) पर पडता है और इसके फलस्वरुप मनुष्य का स्वास्थ्य के साथ साथ व्यक्तित्व का भी सर्वांगीण विकास होता है। उपरोक्त बिंदुओं को जानने एवं समझने के अपरान्त अब आपके मन में सद्वृत्त के स्वरुप का गहराई से अध्ययन करने की जिज्ञासा ओर भी बढ गयी होगी। यहाँ पर विषय का प्रारम्भ स्वंय अपने द्वारा पालन किए जाने वाले नियमों अर्थात वैयक्तिक सद्वृत्त से करते हैं –

9.4.1 वैयक्तिक सद्वृत्त – इसे पर्सनल हाइजीन के नाम से जाना जाता है जिसमें स्वंय अपने द्वारा पालन किए जाने वाले नियमों का उल्लेख आता है। यद्यपि सामान्य रुप से पर्सनल हाइजीन से तात्पर्य केवल व्यक्तिगत स्वच्छता से ही लिया जाता है किन्तु वास्तव में व्यक्तिगत स्वच्छता जैसे बाल, नाखून, कपडे आदि की स्वच्छता के साथ साथ इसमें आहार, अध्ययन एवं व्यायाम आदि महत्वपूर्ण बिंदु भी इसके प्रमुख भाग होते हैं जिन पर यहाँ विचार किया जाएगा। विषय का प्रारम्भ स्वच्छता सम्बन्धी सद्वृत्त से करते हैं –

(क) स्वच्छता सम्बन्धी सद्वृत्त :

वैयक्तिक सद्वृत्त का सबसे प्रथम एवं महत्वपूर्ण बिंदु स्वच्छता है। स्वच्छता मनुष्य द्वारा अपने शरीर, मन, मस्तिष्क, घर एवं आस–पास के वातावरण को शुद्ध, सुव्यवस्थित एवं अनुशासित करने की क्रिया है। भारतीय समाज में मान्यता है कि स्वच्छता में सकारात्मक ऊर्जा (ईश्वर) का वास एवं गंदगी में नकारात्मक ऊर्जा (भूतों) का वास होता है, इसीलिए स्वच्छता को मनुष्य का धर्म कहा जाता है। स्वच्छता रखने से मनुष्य का शरीर एवं मन स्वस्थ बनता है जबकि अस्वच्छता के परिणाम स्वरुप मनुष्य की शारीरिक एवं मानसिक ऊर्जा क्षीण पड जाती है और नाना प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं। प्रातःकाल उठते ही सबसे पहले स्वच्छतारुपी नित्य कर्मो का उपदेश शास्त्रों में किया गया है। इस संदर्भ में कहा गया है कि जिनके कपडे मैले रहते हैं, दाँतों पर मैल जमा रहता है, मुँह से दुर्गन्ध आती है और जो सदैव कडवे वचन बोलते हैं उनको लक्ष्मी सदैव के लिए छोडकर चली जाती है। इस संदर्भ में देववाणी में सूक्ति है –

कुचैलिनं दन्तमलोपधारिणं बह्वशिनं निष्ठुरभाषिणं च।
सूर्योदये चास्तमिते शयानं विमुञ्चति श्रीर्यदि चक्रपाणिः।।

अर्थात जिनके शरीर और वस्त्र मैले रहते हैं, जिनके दाँतों पर मैल जमा रहता है, बहुत अधिक भोजन करते हैं, सदा कठोर बचन बोलते हैं तथा सूर्योदय व सूर्यास्त के समय सोते हैं, वे महादरिद्र होते हैं। यहाँ तक कि चाहे चक्रपाणि विष्णु भगवान ही क्यों ना हो, परन्तु उनको भी लक्ष्मी छोड देती है।

सद्वृत्त के अर्न्तगत शारीरिक की स्वच्छता का वर्णन किया जाता है। शारीरिक स्वच्छता में साफ स्वच्छ जल से प्रतिदिन स्नान करना, हाथों को अच्छी प्रकार धोने के उपरान्त स्वच्छ हाथों से भोजन करना, हाथों एवं पैरों के नाखून तथा शरीर के बालों आदि को स्वच्छ–सवांर कर रखना एवं साफ स्वच्छ वस्त्रों को धारण करने का वर्णन आता है। इसके साथ साथ आहार बनाने एवं ग्रहण करने में स्वच्छता को भी वैयक्तिक सद्वृत्त के अर्न्तगत रख गया है। मनुष्य को अपने आस पास के वातावरण में

औषधियुक्त धूएँ का प्रयोग करना चाहिए तथा मनुष्य को अपने स्वास्थ्य को उन्नत बनाने हेतु औषध द्रव्यों का धूआँ करने के उपरान्त उसका सेवन भी करना चाहिए, इससे एक ओर जहाँ वातावरण साफ स्वच्छ एवं रोगाणुरहित बनता है वहीं दूसरी ओर शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढती है।

(ख) आहार सम्बन्धी सद्वृत्त :

मनुष्य के जीवन में आहार का विशिष्ट महत्व है। मनुष्य को स्वस्थ एवं रोगी बनाने में आहार की भूमिका भी बहुत महत्वपूर्ण होती है। आहार सम्बंधी ऐसे नियम जिनका पालन करने से मनुष्य स्वस्थ रहता है एवं जिनका अपालन करने से मनुष्य रोगी बन जाता है, आहार सम्बन्धी सद्वृत्त कहलाते हैं। यहाँ पर स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि मनुष्य को अपनी प्रकृति के अनुरुप गुरु अथवा लघु का विचार करने के उपरान्त ही आहार ग्रहण करना चाहिए अर्थात ऐसे आहार का सेवन करना चाहिए जो शरीर की प्रकृति के अनुकूल हो तथा शरीर की प्रकृति के प्रतिकूल आहार का सेवन नही करना चाहिए।

इसके साथ साथ भोजन की मात्रा, देश एवं काल का विचार करने के उपरान्त ही आहार का सेवन करना चाहिए। ताजे भोज्य पदार्थों को ग्रहण करना चाहिए एवं भोजन करते समय बीच–बीच में थोडा थोडा जल भी पीना चाहिए, ऐसा करने से भोजन की अच्छी लुगदी बनती है एवं ग्रहण किए हुए भोजन के पाचन एवं अवशोषण की क्रिया अच्छी प्रकार होती है। भोजन में मोटे अनाज जैसे सत्तू के सेवन का उपदेश भी वैयक्तिक सद्वृत्त के अर्न्तगत किया जाता है। इसके अतिरिक्त मैदे से बने पदार्थों का सेवन नही करना चाहिए। जीभ के स्वाद के वशीभूत होकर त्याज्य एवं स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से हानिकारक पदार्थों का सेवन कदापि नही करना चाहिए।

जिज्ञासु पाठकों, वैयक्तिक सद्वृत्त मनुष्य के व्यक्तिक जीवन से सम्बन्धित ऐसे नियमों का वृत्त है जिनके पालन से वह उन्नत स्वास्थ्य के साथ अपने जीवन को व्यतीत करता है। इस संदर्भ में स्वच्छता एवं आहार सम्बन्धित नियमों का अध्ययन करने के उपरान्त आपके मन में अन्य नियमों को जानने की जिज्ञासा भी अवश्य ही बढ गयी होगी। प्रिय विधार्थियों, मनुष्य का अध्ययन के साथ गहरा सम्बन्ध है और अध्ययन के संदर्भ में भी सद्वृत्त पर विचार किया गया है अतः अब अध्ययन सम्बन्धी सद्वृत्त पर विचार करते हैं –

(ग) अध्ययन सम्बन्धी सद्वृत्त :

प्रिय पाठकों, ज्ञान का मानव जीवन में बहुत अधिक महत्व है। शास्त्रों का कथन है कि ज्ञान के अभाव में मनुष्य का जीवन पशु के समान है। ज्ञान प्राप्त करने का प्रमुख साधन उत्तम ग्रन्थों का अध्ययन है। अच्छे शास्त्रों का अध्ययन करने से मनुष्य ज्ञान की प्राप्ति करता है एवं ज्ञान से ही मनुष्य मुक्ति के समीप जाता है। सद्वृत्त के अर्न्तगत अध्ययन के नियमों पर सविस्तार विचार किया गया है। चूंकि अध्ययन में प्रकाश की आवश्यक्ता होती है अतः उचित मात्रा में प्रकाश की उपस्थित में अध्ययन करना चाहिए। इसके साथ साथ देश एवं काल में भी अध्ययन के नियमों का पालन करना चाहिए। आकाशीय विधुत चमकते समय अध्ययन नही करना चाहिए।

जिज्ञासु पाठकों, आपने संध्याचर्या के अर्न्तगत भी आपने ज्ञान प्राप्त किया है कि संध्याकाल में जब प्रकाश कम अथवा अधिक हो रहा होता है तब उस काल में पठन–पाठन अर्थात अध्ययन कार्य नही करना चाहिए, यह अध्ययन सम्बन्धी सद्वृत्त है। इसके अतिरिक्त अग्नि के उपद्रव के समय, महोत्सव के समय, उल्कापात के समय, महाग्रहों के संयोग के समय एवं चन्द्रमाहीन तिथियों में अध्ययन नही करना चाहिए। यहाँ पर स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि बिना शिक्षक पढाए अध्ययन नही करना चाहिए। हीन अक्षर वाले एवं लम्बे वाक्यों का अध्ययन नही करना चाहिए। अति शीघ्रता अथवा अधिक धीमी गति से अध्ययन नही करना चाहिए तथा अधिक जोर से अथवा अधिक धीमे स्वर में अध्ययन नही करना चाहिए। इस प्रकार अध्ययन में भी सद्वृत्त के

नियमों का पालन करने से मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, अध्यात्मिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य में उन्नति होती है।

(घ) व्यायाम सम्बन्धी सद्वृत्त :

जिज्ञासु पाठकों, व्यायाम का अर्थ शरीर की माँसपेशियों को सक्रिय, स्वस्थ एवं सबल बनाने वाी क्रिया से है। व्यायाम के द्वारा शरीर स्वस्थ एवं सुन्दर बनता है। इसके साथ साथ व्यायाम करने से मनुष्य के मन एवं बुद्धि का भी विकास होता है। नियमित व्यायाम करने से हृदय को बल मिलता है एवं हृदय स्वस्थ, सक्रिय एवं रोगरहित बनता है। इसके अतिरिक्त व्यायाम करने से मनुष्य के शरीर में रक्त परिसंचरण की क्रिया त्रीव होती है और शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता तेजी से बढती है। व्यायाम मनुष्य को शारीरिक एवं मानसिक रुप से स्वस्थ बनाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका का वहन करते हैं किन्तु एक ओर जहाँ व्यायाम शरीर और मन पर लाभकारी प्रभाव रखते हैं तो वही दूसरी ओर यदि गलत विधि से अथवा नियमों के विपरित व्यायाम किया जाए तब उसका दुष्प्रभाव भी मनुष्य के शरीर एवं मन पर पडता है अतः व्यायाम सम्बन्धी सद्वृत्त के पालन का उपदेश आयुर्वेद शास्त्र में किया गया है। व्यायाम सम्बन्धी सद्वृत्त का पालन करने से दुष्प्रभाव से मुक्त लाभ मनुष्य को प्राप्त होते हैं। मनुष्य के देश, काल की परिस्थिति तथा अपने शरीर की क्षमता को ध्यान में रखकर व्यायाम करने चाहिए।

(ड) मैथुन सम्बन्धी सद्वृत्त :

जिज्ञासु पाठकों, मैथुन सृष्टि के जीवों की एक स्वाभाविक क्रिया है। इसके फलस्वरुप संसार के जीव अपनी वंशवृद्धि करते हैं। संसार के अधिकांश जीव जन्तु प्रकृति के नियमों का पालन करते हुए मैथुन क्रिया करते हैं जबकि मनुष्य प्रकृति के नियमों से अनभिज्ञय होकर इस क्रिया को करता है जिसके परिणाम स्वरुप उसकी शारीरिक एवं मानसिक ऊर्जा क्षीण पड जाती है और वह शारीरिक एवं मानसिक व्याधियों से ग्रस्त हो जाता है। आयुर्वेद शास्त्र में इस विषय पर बहुत गंभीरतापूर्वक चिन्तन मनन किया गया है एवं इस संदर्भ में नियम पालन का उपदेश किया गया है। मैथुन क्रिया के संदर्भ में उपदेशित नियमों को सद्वृत्त की संज्ञा से सुशोभित किया जाता है। इन नियमों का मनुष्य के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रभाव पडता है।

जिज्ञासु पाठकों, अभी तक आपने वैयक्तिक सद्वृत्त का अध्ययन किया। इन वैयक्तिक सद्वृत्त का पालन करने मनुष्य का स्वास्थ्य उन्नत अवस्था को प्राप्त होता है एवं मनुष्य रोगरहित व ऊर्जावान रहता है। वैयक्तिक सद्वृत्त का सम्बन्ध प्रमुख रुप से शरीर के साथ होता है अर्थात वैयक्तिक सद्वृत्त का प्रभाव प्रमुख रुप से मनुष्य के शारीरिक स्तर पर पडता है किन्तु जैसा कि विश्व स्वास्थ्य संगठन ने स्वास्थ्य की परिभाषा में स्पष्ट किया है कि केवल शारीरिक स्वास्थ्य को ही पूर्ण स्वास्थ्य नही कहा जा सकता अपितु शरीर के साथ साथ मनुष्य का मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक स्तर पर भी स्वस्थ होना पूर्ण स्वास्थ्य कहलाता है अतः अब मानसिक एवं सामाजिक सद्वृत्त पर विचार करते हैं –

9.4.2 मानसिक सद्वृत्त :

जिज्ञासु पाठकों, मन मनुष्य के लिए शरीर से भी अधिक महत्वपूर्ण तत्व है। वास्तव में शरीर मन की कार्यस्थली होती है अर्थात मन में जो भाव एवं विचार उत्पन्न होते हैं, उन विचारों एवं भावों की अभिव्यक्ति अथवा मूर्तरुप शरीर के माध्यम से दिया जाता है। सरल शब्दों में शरीर एवं मन का अटूट सम्बन्ध होता है। इस सम्बन्ध में लोकोक्ति भी है कि मन के हारे हार है, मन के जीते जीत। अर्थात मन में नकारात्मक भाव आने पर शरीर में भी नकारात्मक परिवर्तन आने लगते हैं जबकि मन के सकारात्मक रहने से शरीर सकारात्मक ऊर्जा से परिपूर्ण रहता है। शरीर के साथ साथ मन का स्वस्थ रहना अत्यन्त आवश्यक होता है। मन में सकारात्मक ऊर्जा की प्रबलता रहने पर ही मनुष्य अच्छे कार्यों में लीन रहता है। किन्तु मन में सकारात्मक ऊर्जा की प्रबलता किस प्रकार

हो ? यह एक विचारणीय प्रश्न है। जिसका उत्तर मानसिक सद्वृत्त के अर्न्तगत दिया जाता है।

मानसिक सद्वृत्त का सीधा सम्बन्ध मानसिक स्वास्थ्य के साथ है। मानसिक स्वास्थ्य वह धनात्मक अवस्था है जिसमें किसी व्यक्ति को अपनी क्षमताओं का ज्ञान रहता है तथा वह जीवन के सामान्य तनावों का सामना करने में सक्ष्म रहता है। इसके साथ साथ वह लाभकारी एवं उपयोगी रुप में कार्य करते हुए समाज के प्रति अपना योगदान देता है। इस वर्ग का मनुष्य मानसिक स्वस्थ पुरुष कहलाता है।

यहाँ पर यदि हम वर्तमान काल पर दृष्टिपात करें तो आधुनिक समाज में नकारात्मक दृष्टिकोण का स्तर बढने के कारण झूट, चोरी, झगडे एवं हिसांत्मक घटनाओं की संख्या बढती जा रही है। आपसी सामंजस्य के अभाव में परिवार एवं समाज बिखरते जा रहें हैं। व्यक्ति की सोच विचार एवं भाव संवेददनाओं में नकारात्मक ऊर्जा की प्रबलता अधिक होती जा रही है जिसके परिणाम स्वरुप मानसिक स्वास्थ्य का स्तर दिन प्रतिदिन हीन अवस्था को प्राप्त होता जा रहा है। ऐसी अवस्था में मानसिक सद्वृत्त का जानना, समझना एवं व्यवहार में लाना अति आवश्य है क्योंकि मानसिक सद्वृत्त के पालन से हम उपरोक्त सभी समस्याओं से बडी आसानी एवं सहजतापूर्वक छूटकारा पा सकते हैं।

मानसिक सद्वृत्त मन का वह ज्ञान–विज्ञान है जिसके द्वारा मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा करता हुआ उसे उन्नत अवस्था में बनाए रखता है। इसके साथ साथ मानसिक सद्वृत्त के द्वारा मनुष्य मानसिक क्षमताओं का विकास करता हुआ सांवेगिक स्थिरता को प्राप्त करता है। मानसिक सद्वृत्त के पालन करने से मनुष्य मानसिक रोगों व विकारों से मुक्त स्वस्थ जीवन व्यतीत करता है। मानसिक सद्वृत्त से तात्पर्य मानसिक स्तर पर अनुशासन एवं नियम पालन करने से होता है जिनका मनुष्य के मानसिक स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रभाव पडता है एवं जिसके फलस्वरुप मानसिक ऊर्जा सकारात्मक एवं धनात्मक अवस्था में बनी रहती है।

मानसिक सद्वृत्त के विषय में जानने के उपरान्त अब आपके मन में इस विषय को ओर अधिक गहराई से जानने की जिज्ञासा भी बढ गयी होगी। जैसा कि आपको ज्ञान है कि मन के विचारों से कर्म बनते है। कर्मों से आदत बनती है और आदतों से मनुष्य के चरित्र का निमार्ण होता है। इसीलिए अच्छे विचारों के परिणाम स्वरुप अच्छे चरित्र का निमार्ण एवं बुरे विचारों के परिणाम स्वरुप बुरे चरित्र का निमार्ण होता है। मन में अच्छे विचारों को धारण करने के संदर्भ में आपने मानसिक सद्वृत्त के अन्तर्गत अध्ययन किया अब चरित्र सम्बन्धी सद्वृत्त का अध्ययन करते हैं –

9.4.3 चारित्रिक सद्वृत्त :

जिज्ञासु पाठकों, भारतीय समाज में मनुष्य के चरित्र को सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। भारतीय समाज में किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व का मूल्यांकन उसके चरित्र के आधार पर किया जाता है। चरित्र का सामान्य अर्थ उसकी सोच विचार, बुद्धि एवं व्यवहार कुशलता से लिया जाता है। मनुष्य का चरित्र एक ओर जहां सामाजिक उन्नति का प्रतीक है तो वहीं दूसरी और स्वास्थ्य को उन्नत एवं हीन बनाने में भी चरित्र महत्वपूर्ण भूमिका का वहन करता है। आयुर्वेद शास्त्र में चरित्र को उन्नत एवं महान बनाने हेतु चारित्रिक सद्वृत्त का उपदेश मानव जाति को किया गया है।

चरित्र सम्बन्धी सद्वृत्त विचारों एवं व्यवहार का वह अनुशासनात्मक एवं नियमात्मक ढाँचा है जिसे अपनाने से मनुष्य में अच्छी आदतों एवं सोच–विचार का विस्तार होता है। चरित्र सम्बन्धी सद्वृत्त का पालन करने से मनुष्य की सोच विचार में सकारात्मक परिवर्तन आते हैं। मनुष्य स्वार्थ एवं संर्कीणता के तुच्छ भावों से ऊपर उठकर विस्तृत सोच के साथ वैशुधैवकुटुम्बकम के भावों को अपने मन में स्थान देता है। वह अपने पूर्वजों के प्रति श्रृद्धा एवं निष्ठाभाव रखकर उनके द्वारा बतलाए गये सन्मार्ग का पथिक बनता है। चरित्र सम्बन्धी सद्वृत्त का पालन करने से मनुष्य अपनी इन्द्रियों पर संयम

करता हुए इन्द्रियजय को प्राप्त करता है। इसके फलस्वरुप एक अच्छे एवं महान व्यक्तित्व का निमार्ण होता है।

9.4.4 सामाजिक सद्वृत्त :

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य का समाज के साथ गहरा सम्बन्ध है। वह समाज में दूसरों में रहकर दूसरों का सहयोग करता है एवं साथ ही साथ दूसरों का सहयोग लंता भी है। इसी कारण मनुष्य के सामाजिक स्वास्थ्य को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। सामाजिक स्वास्थ्य का उन्नत होना एक स्वस्थ मनुष्य का प्रमुख लक्षण है जबकि किसी मनुष्य का सामाजिक स्वास्थ्य सही नही होना रोगावस्था का परिचायक है। मनुष्य के सामाजिक स्वास्थ को उन्नत बनाने हेतु सामाजिक सद्वृत्त का उपदेश आयुर्वेद शास्त्र में किया गया है जिसके माध्यम से मनुष्य समाज के दूसरे मनुष्यों तथा दूसरे जीवों के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए अपने जीवन को सुख एवं शान्तिपूर्वक ढंग से व्यतीत कर सके।

सामाजिक सद्वृत्त के अन्तर्गत मनुष्य अपने माता–पिता, घर के वृद्धजन, आचार्य, अतिथि एवं श्रेष्ठजनों को सम्मान देने का विषय आता है। अपने आस पास के समाज में सकारात्मक वातावरण का निमार्ण करना एवं सामाजिक कार्यों में उत्साह से भाग लेना सामाजिक सद्वृत्त का भाग है जिसका पालन करने से मनुष्य का सामाजिक स्वास्थ्य उन्नत होता है एवं समाज में अच्छे संस्कारों की उत्पत्ति होती है।

प्रिय पाठकों, आपको ज्ञान होगा कि इस भूमण्डल पर मनुष्य ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति है। मनुष्य का दायित्व केवल अपना जीवन यापन करने तक ही सीमित नही होता अपितु संसार के अन्य जीवों पर भी पर भी मनुष्य का नियंत्रण होता है अतः मनुष्य को अपने साथ साथ अन्य जीवों के विषय में भी चिन्तन करना चाहिए। विशेष रुप से मूकहीन अपने आश्रित जीवों के प्रति हृदय में सदैव दया एवं करुणा के भाव रखने चाहिए। इसके साथ अपने से कमजोर दीन–हीन, विपत्ति से ग्रस्त रोगी एवं दुखी मनुष्यों के साथ सकारात्मक व्यवहार करना चाहिए। विपत्ति से पिडित मनुष्य की रक्षा करनी चाहिए। इन्ही नियमों का पालन करने एवं इस प्रकार के भाव अपनाने को सामाजिक सद्वृत्त की संज्ञा दी जाती है। इनका पालन करने से मानसिक एवं आध्यात्मिक बल की प्राप्ति होती है एवं मनुष्य को मानसिक शान्ति मिलती है।

9.4.5 धार्मिक सद्वृत्ति :

मनुष्य का धर्म के साथ अटूट सम्बन्ध है। मनुष्य को धार्मिक सद्वृत्ति रखनी चाहिए अर्थात धर्म में अपनी रुचि रखनी चाहिए। प्रश्न उपस्थित होता है कि धर्म क्या है ?

जिज्ञासु पाठकों, धर्म के स्वरुप को स्पष्ट करते हुए महर्षि मनु कहते हैं –

धृतिः क्षमादमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो, दशकं धर्मलक्षणम्।।(मनु स्मृति)

अर्थात धैर्य, क्षमा, दम (अपनी वासनाओं पर नियंत्रण रखना), अस्तेय (चोरी नही करना), शौच (बाह्य एवं आन्तरिक स्वच्छता), इन्द्रिय निग्रह (अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण), विद्या (ज्ञान की पिपासा), सत्य (मन, वचन एवं कर्म से एक व्यवहार करना), अक्रोध (क्रोध नही करना) ये दस धर्म के लक्षण है।

इसके साथ साथ मनुष्य को जो व्यवहार अपने अनुकूल नही लगता हो, ऐसा व्यवहार दूसरों के साथ नही करना चाहिए। यह भी मनुष्य का धर्म है।

धार्मिक सद्वृत्त का मनुष्य के शरीर, मन एवं आत्मा के साथ सीधा सम्बन्ध होता है। धर्म का पालन करने से शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक बल की प्राप्ति होती है जबकि धर्म को धारण नही करने से मनुष्य की आन्तरिक शक्ति असन्तुलित हो जाती है जिसके परिणाम स्वरुप मनुष्य नाना प्रकार की व्याधियों से मनुष्य ग्रस्त हो जाता है।

उपरोक्त नियमों के साथ साथ मनुष्य को पूर्ण रुप से स्वस्थ बने रहने के लिए अनुपयुक्त एवं अयोग्य क्रियाओं का त्याग करना चाहिए। इस प्रकार कुछ सामान्य त्याज्य नियमों के वृत्त को भी वर्णित किया जाता है जो इस प्रकार है –

9.4.6 सामान्य त्याज्य वृत्त –

प्रिय पाठकों, मनुष्य एक मननशील एवं चिंतनशील प्राणी है जिसे अपनी प्रत्येक क्रिया उचित एवं अनुचित का निर्णय करने के उपरान्त ही करनी चाहिए। मनुष्य को अपने जीवन में कभी अनुचित आहार विहार एवं सोच विचार नही करनी चाहिए। सदैव उपयुक्त आहार विहार का सेवन करते हुए सकारात्मक सोच विचार में लीन रहना चाहिए। इस संदर्भ में स्वस्थ मनुष्य के विषय में कहा जाता है कि मनुष्य को शरीर गर्म, दिमाक ठंडा एवं ह्रदय नरम रखना चाहिए। यहाँ इस लोकोक्ति का तात्पर्य यह है कि मनुष्य को शरीर से कठिन परिश्रम करते हुए शरीर को गर्म रखना चाहिए, जबकि मस्तिष्क में कभी क्रोध नही लाना चाहिए अपितु क्रोध के स्थान पर मस्तिष्क को शान्त (ठंडा) रखना चाहिए, इसके साथ साथ मनुष्य को अपने ह्रदय में सदैव दया एवं उदारता के भाव रखने चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य का शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक स्वास्थ्य उन्नत अवस्था में बना रहता है, जबकि इसके विपरित आचरण करने से नाना प्रकार की व्याधियों से मनुष्य ग्रस्त हो जाता है।

सामान्य त्याज्य वृत्त के अन्तर्गत ऐसे कार्यों, क्रियाओं एवं नियमों का वर्णन आता है जिन्हे करने से स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है एवं मनुष्य की शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक ऊर्जा क्षीण हो जाती है। ऐसे सामान्य त्याज्य वृत्त के अन्तर्गत बहुत अधिक बोलना, समय का सदुपयोग नही करते हुए समय नष्ट करना, अपनी ऊर्जा को निर्रथक कार्यों में नष्ट करना एवं अधारणीय वेगों को धारण करने संबधी कार्यों का उल्लेख किया जाता है।

प्रिय पाठकों, इस प्रकार उपरोक्त अध्ययन से आपको सद्वृत्त की अवधारण अवश्य ही स्पष्ट हो गयी होगी। इसके साथ साथ सद्वृत्त के सामान्य कार्यों एवं नियमों का ज्ञान भी आपको अवश्य ही हो गया होगा किन्तु इतना सब कुछ जानने के उपरान्त अब आपके मन में यह प्रश्न उपस्थित होना स्वाभाविक ही है कि सद्वृत्त पालन से मनुष्य को क्या लाभ प्राप्त होता है अथवा सद्वृत्त का मानव जीवन में क्या महत्व है ? यह प्रश्न अवश्य ही आपके सम्मुख उपस्थित हुआ होगा अतः अब सद्वृत्त पालन के महत्व पर विचार करते हैं –

9.5 सद्वृत्त का महत्व

जिज्ञासु पाठकों, वर्तमान समय में जहाँ चारों रोग और व्याधियों का बोलबाला है, समाज में चारों ओर भिन्न भिन्न प्रकार के शारीरिक और मानसिक रोगों से ग्रस्त रोगियों की संख्या में दिन प्रतिदिन वृद्धि होती जा रही है और इन रोगों से छूटकारा पाने के लिए अलग अलग प्रकार की अग्रेंजी दवाईयों एवं अन्य हानिकारक पदार्थों का सेवन बढता जा रहा है, ऐसे समय में सद्वृत्त पालन का महत्व ओर भी अधिक बढ जाता है क्योंकि सद्वृत्त पालन से मनुष्य बिना किसी दुष्प्रभाव एवं रासायनिक पदार्थों का सेवन किए बिना उन्नत स्वास्थ्य को प्राप्त करने में सक्ष्म बनता है। सद्वृत्त पालन से मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक चारों पक्षों सकारात्मक एवं अनुकूल प्रभाव पडता है। सद्वृत्त पालन के अर्न्तगत उपयुक्त आहार विहार का सेवन करने से मनुष्य का शरीर बलवान, ऊर्जावान एवं रोगमुक्त बनता है जो वहीं दूसरी ओर मानसिक सद्वृत्त का पालन से मन की नकारात्मक ऊर्जा दूर होती है एवं मनुष्य को उन्नत मानसिक स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार चरित्र संबंधी सद्वृत्त एवं धार्मिक सद्वृत्त का पालन करने से आत्मबल की प्राप्ति होती है एवं इसके फलस्वरुप आध्यात्मिक विकास होता है एवं सामाजिक सद्वृत्त का पालन करने से मनुष्य का सामाजिक स्तर उच्च श्रेणी का होता है अर्थात मनुष्य का सामाजिक स्वास्थ्य अच्छा बनता है। इस प्रकार आधुनिक परिपेक्ष्य में यह कहना उचित सा प्रतीक होता है कि सद्वृत्त पालन से मनुष्य का सर्वागींण विकास होता है।

सद्वृत्त पालन का महत्व को आयुर्वेद शास्त्र में निम्न लिखित बिंदुओं के द्वारा समझाया गया है –

(1) सद्वृत्त पालन से आरोग्य एवं स्वस्थ जीवन की प्राप्ति होती है। सद्वृत्त पालन से मनुष्य सभी प्रकार के रोगों से मुक्त शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य के साथ स्वस्थ जीवन व्यतीत करता है।

(2) सद्वृत्त पालन से मनुष्य को सौ वर्षों की स्वस्थ आयु प्राप्त होती है जिसके विषय में वर्णन करते हुए वेद में ईश्वर से प्रार्थना की गयी है –

ओ३म तस्यचक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुञ्चरत्। पश्चेम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं श्रृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयच्श्र शरदः शतात् ।। (यजुर्वेद)

अर्थात हे प्रभो, हम आपको सौ वर्ष देखें, आपकी आज्ञा में सौ वर्ष जीवें, आपके नाम का सौ वर्ष व्याख्यान करें, सौ वर्ष की आयु भर पराधीन न हों और योगाभ्यास से सौ वर्ष से भी अधिक आयु हो तो इसी प्रकार विचरें अर्थात इसी प्रकार आचरण और व्यवहार करें।

(3) सद्वृत्त पालन से मनुष्य को साधु पुरुषों में पूजनीय स्थान की प्राप्ति होती है अर्थात मनुष्य में अच्छे गुण एवं उत्तम संस्कारों का उदय होता है जिसके फलस्वरुप मनुष्य का सामाजिक उत्थान होता है एवं समाज के सत्पुरुषों में सम्मान की प्राप्ति होती है।

(4) सद्वृत्त पालन से मनुष्य को इस लोक में यश एवं ख्याति की प्राप्ति होती है अर्थात मनुष्य की यश एवं किर्ति की सुगन्धी चारों दिशाओं में फैलती है।

(5) सद्वृत्त पालन से मनुष्य में मानवीय गुणों जैसे प्रेम, करुणा, दया, सहानुभूति एवं परोपकार का विकास होता है। मनुष्य स्वार्थ एवं सर्कीणता के तुच्छ भावों से ऊपर उठकर उच्च मानसिक क्षमता एवं श्रेष्ठ आत्मबल का धनी बनता है।

(6) सद्वृत्त पालन से मनुष्य इस लोक में सौ वर्षों की स्वस्थ आयु के का भोग करने के उपरान्त सद्गति को प्राप्त होता हुआ परलोक भी अच्छे फलों को प्राप्त करता है अर्थात सद्वृत्त पालन से मनुष्य का यह लोक एवं परलोक दोनों ही सुधरते हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि सद्वृत्त पालन से मनुष्य का समग्र विकास होता है। आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध विद्वान आचार्य चरक सद्वृत्त पालन के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं–

तस्मादात्महितं चिकिर्षता सर्वेण सर्व सर्वदा स्मृतिसास्थाय सद्वृत्मनुष्ठेयम्।
तद्यनुष्ठानं युगपत्सम्पाद्यत्यर्थद्वयमारोग्यमिन्द्रियविजयं चेति।।
(च0 सू0 8/17)

अर्थात सद्वृत्त का अनुष्ठान करने से आरोग्य की प्राप्ति एवं इन्द्रियों पर विजय प्राप्त होती है।

अभ्यास हेतु प्रश्न –

1– **सत्य/ असत्य**

(क) सद्वृत्त पालन से मनुष्य का यह लोक एवं परलोक दोनों ही सुधरते हैं।

(ख) मनुष्य को स्वस्थ एवं रोगी बनाने में आहार की विशेष भूमिका नही होती है।

(ग) भारतीय समाज में मनुष्य के चरित्र को सर्वाधिक निम्न स्थान दिया जाता है।

(घ) स्वच्छता में सकारात्मक ऊर्जा (ईश्वर) का वास एवं गंदगी में नकारात्मक ऊर्जा (भूतों) का वास होता है।

(ड) सद्वृत्त पालन से मनुष्य को सौ वर्षों की स्वस्थ आयु प्राप्त होती है।

2– रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

(क) सद् एक ——————— वाचक शब्द है।

(ख) वैयक्तिक सद्वृत्त का सबसे प्रथम एवं महत्वपूर्ण बिंदु ——————— है।

(ग) धार्मिक सद्वृत्त का मनुष्य के शरीर, मन एवं आत्मा के साथ ——————— सम्बन्ध होता है

(घ) आधुनिक काल में चिकित्सा विज्ञान के अन्तर्गत स्वस्थवृत्त को ——————— के नाम से जाना जाता है।

(ड) ज्ञान के अभाव में मनुष्य का जीवन ——————— के समान है।

3– **बहुविकल्पीय प्रश्न –**

(क) आहार सम्बन्धी सद्वृत्त के अनुसार भोजन करते समय जल का सेवन कब करना चहिए –

(a) भोजन से पूर्व में (b)भोजन के बीच में थोडा थोडा

(c) भोजन के अन्त में (d)अपनी इच्छानुसार।

(ख) व्यायाम से शरीर पर क्या प्रभाव पडता है –

(a) रक्त संचार में त्रीवता (b) रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास

(c) हृदय को बल (d) सभी ।

(ग) सद्वृत्त के अर्न्तगत किस परिस्थिति में अध्ययन नही करना चाहिए –

(a) आकाशीय विधुत चमकते समय (b) संध्याकाल के समय

(c) उल्कापात के समय (d) सभी ।

(घ) महर्षि मनु द्वारा धर्म के कितने लक्षण बतलाए गये हैं –

(a) दस (b) पाँच

(c) आठ (d) अनेक ।

(ड) आचार्य चरक के अनुसार सद्वृत्त पालन से क्या प्राप्त होता है –

(a) आरोग्य (b) इन्द्रियजय

(c) दोनों (d) इनमे से कोई नही।

9.6 सारांश–

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत इकाई का प्रारम्भ सद्वृत्त के अर्थ की व्याख्या साथ किया गया है। यहाँ स्पष्ट किया गया कि सद्वृत्त ऐसे सकारात्मक एवं सही नियमों का घेरा है जिनका पालन करने से मनुष्य का स्वास्थ्य उन्नत अवस्था में बना रहता है। यहाँ विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा प्रस्तुत की गयी स्वास्थ्य की परिभाषा का उल्लेख करते हुए मनुष्य के स्वास्थ्य के शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक पक्षों पर प्रकाश डाला गया है एवं स्वास्थ्य के इन चारों पक्षों पर सद्वृत्त के लाभकारी प्रभाव का उल्लेख किया गया है। इकाई में आगे सद्वृत्त की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए वैयक्तिक, मानसिक, चारित्रिक, सामाजिक एवं धार्मिक सद्वृत्त को समझाया गया है।

इकाई में आगे वैयक्तिक सद्वृत्त अर्थात पर्सनल हाइजीन को समझाया गया है। वैयक्तिक सद्वृत्त के अर्न्तगत सर्वप्रथम स्वच्छता को वर्णित किया गया है। स्वच्छता के साथ साथ आहार, अध्ययन, व्यायाम एवं मैथुन सम्बन्धी सद्वृत्त को भी वैयक्तिक सद्वृत्त के रुप में वर्णित किया गया है। तत्पश्चात मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने हेतु मानसिक सद्वृत्त का वर्णन किया गया है। मानसिक सद्वृत्त का पालन करने से मन में अच्छे विचारों को एवं उन्नत मानसिक स्वास्थ्य के उपरान्त चरित्र सम्बन्धी सद्वृत्त का उल्लेख इकाई में किया गया है। तत्पश्चात क्रमशः धार्मिक एवं सामाजिक सद्वृत्त को समझाया गया है। यहाँ पर महर्षि मनु के अनुसार धर्म के स्वरुप को समझाते हुए धार्मिक सद्वृत्त पर प्रकाश डाला गया है। इसके साथ साथ मनुष्य द्वारा अकरणीय अर्थात सामान्य त्याज्य वृत्त को समझाया गया है। इकाई के अंत में सद्वृत्त के महत्व का सविस्तार वर्णन करते हुए इकाई को पूर्ण किया गया है।

9.7 पारिभाषिक शब्दावली –

संर्वधन	विकास करना, उन्नत अवस्था
त्याज्य	त्याग करने अर्थात छोडने योग्य
सर्वागीण	सभी ओर से, बहुमुखी

गुरु आहार	अधिक ऊर्जायुक्त भारी आहार
लघु आहार	कम ऊर्जायुक्त हल्का आहार
श्रेष्ठ कृति	उत्तम रचना
अनभिज्ञय	अनजान

9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क.	सत्य	क.	सत्य	क.	b
ख.	असत्य	ख.	स्वच्छता	ख.	d
ग.	असत्य	ग.	सीधा	ग.	d
घ.	सत्य	घ.	हाइजीन	घ.	a
ड.	सत्य	ड.	पशु	ड.	c

9.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रो0 रामहर्ष सिंह – स्वस्थवृत्त विज्ञान – चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली। (पुनःमुद्रित संस्करण 2014)
2. कल्याण आरोग्य अंक (जनवरी एवं फरवरी 2001 ई0) – गीता प्रेस, गोरखपुर।
3. आचार्य बालकृष्ण – आयुर्वेद सिद्धान्त रहस्य, दिव्य प्रकाशन, दिव्य योग मन्दिर ट्रस्ट, हरिद्वार। (संस्करण फरवरी 2007)
4. ब्रह्मवर्चस – आयुर्वेद का दर्शन, क्रिया शारीर एवं स्वस्थ वृत्त, श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट, शांतिकुँज, हरिद्वार। (छटा संस्करण 2010)
5. आचार्य राजवीर शास्त्री – वैदिक सन्ध्या हवन पद्धति – आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली। (संस्करण अक्टूबर 1999)

9.10 निबन्धात्मक प्रश्न–

1.सद्वृत्त के अर्थ को समझाते हुए इसकी सविस्तार व्याख्या किजिए।
2.सद्वृत्त की अवधारणा स्पष्ट करते हुए इसके प्रमुख भेदों को सविस्तार लिखिए।
3. सद्वृत्त के स्वरुप एवं महत्व पर प्रकाश डालिए।
4. सद्वृत्त पर एक विस्तृत निबन्ध लिखिए।

इकाई 10 : विभिन्न करणीय एवं अकरणीय कर्म

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 सद्वृत्त के करणीय कर्मों का अर्थ
10.4 सद्वृत्त के करणीय कर्म
10.4.1 वैयक्तिक सद्वृत्त के करणीय कर्म
10.4.2 मानसिक सद्वृत्त के करणीय कर्म
10.4.3 चारित्रिक सद्वृत्त के करणीय कर्म
10.4.4 सामाजिक सद्वृत्त के करणीय कर्म
10.4.5 धार्मिक सद्वृत्त के करणीय कर्म
10.5 सद्वृत्त के अकरणीय कर्म
10.6 सारांश
10.7 पारिभाषिक शब्दावली
10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
10.10 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

सद्वृत्त का मानव जीवन में विशेष महत्व है। सद्वृत्त मनुष्य को स्वस्थ बनाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका वहन करता है। सद्वृत्त का पालन करने से मनुष्य शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक रुप से स्वस्थ बनता है जबकि सद्वृत्त का अपालन करने से मनुष्य नाना प्रकार के रोगों से ग्रस्त हो जाता है। सद्वृत्त की अवधारणा को आपने पूर्व की इकाई में समझा और इसके महत्व के विषय में भी ज्ञान प्राप्त किया। आपने पूर्व की इकाई में जाना कि सद्वृत्त पालन करने से मनुष्य को आरोग्य की प्राप्ति होती है एवं मनुष्य अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करता है। इसके फलस्वरुप मनुष्य का शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक स्तर भी उन्नत बनता है एवं मनुष्य उच्च कोटि के व्यक्तित्व को प्राप्त करता है। सद्वृत्त के अर्थ, स्वरुप एवं महत्व को जानने के उपरान्त अब आपके मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न होनी स्वाभाविक ही है कि सद्वृत्त में ऐसे क्या क्या कार्य होते हैं जिन्हे मनुष्य को करना चाहिए अर्थात सद्वृत्त के करणीय कर्म क्या हैं एवं इसके विपरित सद्वृत्त के अर्न्तगत किन–किन कार्यों को मनुष्य को नही करना चाहिए अर्थात सद्वृत्त के अकरणीय कर्म क्या है ?

प्रिय विधार्थियों, चूंकि सद्वृत्त एक व्यवहारिक विषय है जिसका सम्बन्ध संसार के प्रत्येक मनुष्य के साथ है। आपको अवश्य ही ज्ञान होगा कि अनेकों संक्रामक रोगों का मूल कारण स्वच्छता का अभाव होता है। इस संदर्भ में आपको ज्ञान होगा कि साफ स्वच्छता के अभाव में मनुष्य के शरीर एवं मन में विषाक्त विजातीय द्रव्यों की गंदगियां एकत्र होने लगती है जिसके परिणाम स्वरुप मनुष्य शारीरिक एवं मानसिक रोगों से ग्रस्त हो जाता है। सद्वृत्त मनुष्य को साफ स्वच्छता के समान अन्य अनुशासनात्मक नियमों के साथ जोडता है। इस उपयोगी व्यवहारिक विषय को जानकर मनुष्य स्वयं का शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक उत्थान करता हुआ अपने जीवन को सुख, शान्ति एवं आरोग्यता के साथ यापन करने में सक्ष्म बनाता है। सद्वृत्त के करणीय एवं अकरणीय कर्मों का ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त इनको व्यवहार में लाने से मनुष्य का स्वास्थ्य उन्नत बनता है तथा इसके साथ साथ इन्द्रियों पर भी विजय प्राप्त होतीहै। प्रस्तुत इकाई में आप सद्वृत्त के करणीय एवं अकरणीय कर्मों पर विचार किया गया है। इसका अध्ययन करने से आप सद्वृत्त के करणीय एवं अकरणीय कर्मों का ज्ञान प्राप्त कर पाओगें।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- सद्वृत्त के करणीय कर्मों का ज्ञान प्राप्त करोगें।
- सद्वृत्त का अकरणीय कर्मों को जान पाओगें।
- सद्वृत्त के करणीय कर्मों से प्राप्त लाभों से अवगत होगें।
- सद्वृत्त के अकरणीय कर्मों से होने वाली हानियों को समझ पाओगें।
- सद्वृत्त पालन से स्वास्थ्य संर्वधन को जान पाओगें।
- प्रस्तुत इकाई के अन्त में दिए गये प्रश्नों के उत्तर दे सकेंगे।

10.3 सद्वृत्त के करणीय कर्मों का अर्थ

प्रिय पाठकों, पूर्व की इकाई में आपने सद्वृत्त के विषय में ज्ञान प्राप्त किया और जाना कि सद्वृत्त ऐसे सकारात्मक एवं सही नियमों का घेरा है जिनका पालन करने से मनुष्य का स्वास्थ्य उन्नत अवस्था में बना रहता है। अब सद्वृत्त के अर्थ को जानने के उपरान्त यह प्रश्न उपस्थित होता है कि सद्वृत्त के सकारात्मक एवं सही नियम कौन कौन से है ? सद्वृत्त के इन नियमों को ही सद्वृत्त के करणीय कर्मों की संज्ञा दी जाती है। करणीय कर्म का यदि हम शाब्दिक अर्थ करें तो यह करणीय एवं कर्म शब्दों के मिलने से बनता है। करणीय अर्थात करने योग्य एवं कर्म अर्थात शरीर, मन एवं इन्द्रियों द्वारा की जाने वाली चेष्ठा विशेष। इस प्रकार सद्वृत्त के करणीय कर्म का अर्थ स्पष्ट होता है–

मानव शरीर में उपस्थित जीवात्मा द्वारा शरीर, मन एवं इन्द्रियों के माध्यम से की जाने वाली ऐसी चेष्ठा विशेष, जिनका उसके शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रभाव पडता है, सद्वृत्त के करणीय कर्म कहलाते हैं जबकि इसके विपरित ऐसी अकरणीय चेष्ठाएँ जिनका मनुष्य के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पडे एवं जिनके परिणाम स्वरुप नाना प्रकार के रोगों की उत्पत्ति हो, सद्वृत्त के अकरणीय कर्म कहलाते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि सद्वृत्त के करणीय कर्मों का मनुष्य के स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रभाव जबकि सद्वृत्त के अकरणीय कर्मों का मनुष्य के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है। सद्वृत्त के करणीय एवं अकरणीय कर्मों का अर्थ जानने के उपरान्त इनका अध्ययन करने की जिज्ञासा आपके मन में अवश्य ही उत्पन्न हुई होगी अतः अब सद्वृत्त के करणीय एवं अकरणीय कर्मों पर सविस्तार विचार करते हैं।

10.4 सद्वृत्त के करणीय कर्म–

जिज्ञासु पाठकों, जैसा कि आपने पूर्व में जाना कि सद्वृत्त का प्रथम बिंदु वैयक्तिक सद्वृत्त होता है जिसके अर्न्तगत स्वयं अर्थात अपने द्वारा पालन किए जाने वाले नियमों का उल्लेख आता है अतः सर्वप्रथम वैयक्तिक सद्वृत्त के करणीय कर्मों पर विचार करते हैं –

10.4.1 वैयक्तिक सद्वृत्त के करणीय कर्म –

प्रिय विधार्थियों, जैसा कि आपने पूर्व इकाई में जाना कि व्यक्तिगत स्वच्छता में शारीरिक स्वच्छता जैसे बाल, नाखून, कपडे आदि की स्वच्छता, आहार, अध्ययन एवं व्यायाम से सम्बन्धित नियमों आदि महत्वपूर्ण बिंदुओं का समावेश होता है। यहाँ पर भी इसी क्रम में वैयक्तिक सद्वृत्त के करणीय एवं अकरणीय कर्मों पर विचार करते हैं। सर्वप्रथम स्वच्छता सम्बन्धी सद्वृत्त से विषय का प्रारम्भ करते हैं –

(क) स्वच्छता सम्बन्धी सद्वृत्त के करणीय कर्म :

मनुष्य द्वारा अपने शरीर, मन, मस्तिष्क, आत्मा, घर एवं आस–पास के सामाजिक वातावरण को शुद्ध, स्वच्छ, सुव्यवस्थित एवं अनुशासित बनाए रखने हेतु निम्न लिखित करणीय कर्मों को करना चाहिए –

(1) ऋतुनुसार स्वच्छ एवं ताजे जल से प्रतिदिन स्नान करना चाहिए।
(2) शौच के उपरान्त अच्छी प्रकार इन्द्रियों एवं हाथों को साफ करना चाहिए।
(3) भोजन करने से पूर्व सदैव हाथों को अच्छी प्रकार धोकर ही भोजन करना चाहिए। भोजन के उपरान्त अच्छी प्रकार मुँह एवं दाँतों की सफाई करनी चाहिए। भोजन बनाने में स्वच्छता को विशेष महत्वपूर्ण स्थान देना चाहिए।
(4) शरीर की व्यक्तिगत स्वच्छता पर विशेष ध्यान रखना चाहिए। पक्ष में एक बार सिर के बालों का प्रसाद्यन तथा तीन बार क्षौरकर्म करना चाहिए।
(5) रात्रिकाल में सोने से पूर्व एवं प्रातःकाल सोकर उठने पर अच्छी प्रकार मुँह एवं दॉतों की सफाई करनी चाहिए।
(6) ऋतुनुसार साफ–स्वच्छ वस्त्रों को धारण करना चाहिए। रहने का स्थान, सोने का स्थान, कार्य करने का स्थान एवं सोने का बिस्तर–चादर आदि साफ स्वच्छ रखने चाहिए। घर में एक दूसरे के वस्त्रों एवं नहाने के तौलिए का प्रयोग नही करना चाहिए विशेष रुप से रोगी मनुष्य के कपडों का प्रयोग कदापि नही करना चाहिए।
(7) बालों एवं नाखूनों को साफ स्वच्छ रखते हुए समय समय पर नाखूनों को काटते रहना चाहिए।
(8) रसोईघर, स्नानघर, शौचालय एवं कार्यालय को साफ स्वच्छ रखना चाहिए।
(9) आस पास के वातावरण साफ, स्वच्छ एवं रोगाणुरहित बनाने के लिए औषधियों का धुऑ करना चाहिए। इस संदर्भ में हवन सामग्री के द्वारा प्रतिदिन प्रातः एवं सांय दोनों सन्धाकालों में यज्ञ करने का उपदेश वैदिक शास्त्रों में किया गया है।
इस प्रकार स्वच्छता के द्वारा मनुष्य शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक स्तर पर सकारात्मक ऊर्जा को ग्रहण करता है। मनुष्य को स्वस्थ बनाने में स्वच्छता एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कारक है जिसका महत्व उपरोक्त तथ्य सिद्ध करते हैं। अब वैयक्तिक सद्वृत्त के दूसरे महत्वपूर्ण बिंदु आहार पर विचार करते हैं।

(ख) आहार सम्बन्धी सद्वृत्त के करणीय कर्म :

मनुष्य आहार द्वारा ऊर्जा प्राप्त करता है। आहार सम्बन्धी सद्वृत्त का पालन करने से मनुष्य का शरीर, मन, मस्तिष्क ऊर्जावान बने रहते हैं जबकि आहार सम्बन्धी सद्वृत्त का अपालन करने से मनुष्य का शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक स्तर पर ऊर्जाहीन एवं रोगी बन जाता है। उपनिषद् साहित्य में समझाया गया है कि आहार के स्थूल भाग से मलों की उत्पत्ति होती है, मध्यम भाग से शरीर के कोशों एवं धातुओं को पोषण प्राप्त होता है तथा आहार के सुक्ष्म भाग से मन का निमार्ण होता है अतः मनुष्य जिस प्रकार का आहार ग्रहण करता है वैसा ही उसका मन बन जाता है। इस प्रकार यह तथ्य स्पष्ट होता है कि आहार केवल शारीरिक स्तर पर ही महत्वपूर्ण नही होता है अपितु मानसिक एवं आध्यात्मिक स्तर पर भी आहार का सीधा प्रभाव पडता है। अब आपके सम्मुख यह प्रश्न उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है कि हमें आहार ग्रहण करने में किन किन नियमों का पालन करना चाहिए अर्थात आहार सम्बन्धी सद्वृत्त कौन कौन से हैं ? प्रिय विधार्थियों, मनुष्य को आहार के सम्बन्ध में निम्न लिखित करणीय कर्मों को करना चाहिए –
(1) सदैव ऋतुनुसार शुद्ध, सात्विक, पौष्टिक एवं ताजे आहार का सेवन करना चाहिए।
(2) निश्चित समय पर ही आहार ग्रहण करना चाहिए। ऐसा करने से शरीर के अन्दर पाचक रसों का स्रावण भली भांति होता है एवं भोजन का पाचन अच्छी प्रकार होता है।
(3) सदैव भूख लगने पर ही आहार का सेवन करना चाहिए।
(4) अपने शरीर की प्रकृति अर्थात शरीर में वात–पित्त व कफ दोष की अवस्था को जान समझकर अपने लिए हितकारी आहार का सेवन करना चाहिए।
(5) हितभुक–ऋतुभुक एवं मितभुक का पालन करते हुए आहार ग्रहण करना चाहिए। हितभुक का तात्पर्य शरीर के लिए हितकारी, ऋतभुक का अर्थ ऋतु के अनुसार एवं मितभुक अर्थात अल्प मात्रा में आहार का सेवन करना चाहिए।

(6) साफ स्वच्छ स्थान पर बैठकर, ध्यान की अवस्था में दोनों आँखों को बंद करते हुए दोनों हाथों को जोडकर सर्मपण भाव से ईश्वर को स्मरण करते हुए निम्न मंत्र का वाचन करने के उपरान्त भोजन ग्रहण करना चाहिए –

ओ३म अन्नपत्तेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुंष्मिणः।
प्र प्र दातारं तारिष ऊर्जा नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे।।

(यजुर्वेद 11/73)

अर्थात अन्न के स्वामी ईश, आप हमें रोग रहित एवं पुष्टिकारक अन्न प्रदान करें। आप दानी का उद्धार करते हैं, आप हमारे कटुम्बियों और पशुओं को ऊर्जा अर्थात बल प्रदान करें।

(7) आहार ग्रहण करते समय पूर्ण रुप से मौन का पालन करना चाहिए।

(8) सदैव अच्छी प्रकार चबा चबा कर भोजन ग्रहण करना चाहिए एवं भोजन के मध्य में थोडी थोडी मात्रा में जल का सेवन करते रहना चाहिए। ऐसा करने से भोजन का पाचन भलि भांति होता है।

(9) शान्तिपूर्वक आहार ग्रहण के उपरान्त पाँच से दस मिनट वज्रासन में बैठना चाहिए।

(10) आहार ग्रहण करने के तुरन्त बाद यात्रा एवं कठिन श्रम निषेध है अपितु कुछ समय विश्राम करने के उपरान्त ही शरीरिक कार्य करने चाहिए।

इस प्रकार मनुष्य को आहार सम्बन्धी उपरोक्त सद्वृत्त का पालन करना चाहिए। जिज्ञासु पाठकों, यह अत्यन्त व्यवहारिक एवं प्रतिदिन प्रयोग होने वाला ऐसा विषय है जिसका सीधा सम्बन्ध समाज के प्रत्येक मनुष्य के साथ है अर्थात यह प्रत्येक मनुष्य के जीवन से जुडा विषय है। इस विषय के सम्बन्ध में उपरोक्त बिंदुओं को जानने एवं समझने के उपरान्त आपके मन में इस विषय को ओर अधिक गहराई से जानने एवं समझने की जिज्ञासा अवश्व ही बलवती हो गयी होगी अतः अब सद्वृत्त के तीसरे महत्वपूर्ण बिंदु अध्ययन सम्बन्धी सद्वृत्त पर विचार करते हैं –

(ग) अध्ययन सम्बन्धी सद्वृत्त के करणीय कर्म :

अध्ययन के सम्बन्ध में निम्न लिखित करणीय कर्मों को करना चाहिए –

(1) सदैव अच्छी प्रेरणा प्रदान करने वाले, शुद्ध ज्ञान देने वाले मोक्ष प्रदत्त ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिए।

(2) सूर्योदय एवं सूर्यास्त काल में अर्थात बढते एवं घटते प्रकाश में अध्ययन नही करना चाहिए, अपितु सदैव स्थिर प्रकाश में ही अध्ययन कार्य करना चाहिए।

(3) अध्ययन सदैव उपयुक्त मुद्रा में ही करना चाहिए, अर्थात कमर, गर्दन एवं रीढ को सीधा रखते हुए ही अध्ययन कार्य करना चाहिए।

(4) यदि अधिक समय तक अध्ययन कार्य करना हो तो अध्ययन के बीच बीच में कुछ समय के अन्तराल पर शरीर को विश्राम अथवा चलायमान करना चाहिए, तात्पर्य यह है कि एक ही मुद्रा में अधिक लम्बे समय तक नही रहना चाहिए।

(5) अध्ययन करते समय पुस्तक को आँखों से उपयुक्त दूरी पर रखकर ही अध्ययन कार्य करना चाहिए।

(6) अध्ययान कार्य सदैव स्थिर एवं एकाग्र मन से ही करना चाहिए।

जिज्ञासु पाठकों, सांख्य दर्शनकार आचार्य कपिल मुनि ज्ञान से मुक्ति का उपदेश मानव जाति को करते हैं। ज्ञान प्राप्त करने का एक प्रमुख साधन अध्ययन कार्य है। अध्ययन सम्बन्धी सद्वृत्त का पालन करने से मनुष्य को शुद्ध एवं पवित्र ज्ञान की प्राप्ति होती है एवं वह मुक्ति के पथ पर अग्रसर होता है। अध्ययन सम्बन्धी सद्वृत्त का पालन करने से मनुष्य के शरीर, मन एवं आत्मा में सकारात्मक ऊर्जा का विस्तार होता है एवं मनुष्य को शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक बल की प्राप्ति होती है।

वैयक्तिक सद्वृत्त के अन्तर्गत अध्ययन सम्बन्धी सद्वृत्त से अगला बिंदु व्यायाम सम्बन्धित आता है। जैसा कि आपके पूर्व ज्ञान है कि व्यायाम (यौगिक आसन, प्राणायाम आदि) मनुष्य की दिनचर्या का महत्वपूर्ण अंग है जिसका पालन करने से शरीर के सभी

अंग–प्रत्यंग स्वस्थ एवं सक्रिय बनते हैं। इसके साथ साथ व्यायाम का अभ्यास शरीर में प्राण तत्व का विस्तार करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका वहन करता है। अतः अब यहाँ पर यह जानना आवश्यक हो जाता है कि व्यायाम सम्बन्धित सद्वृत्त कौन कौन से है जिनका पालन करने से व्यायाम का पूरा लाभ प्राप्त होता है एवं जिनका अपालन करने से व्यायाम से हानि भी होती है –

(घ) व्यायाम सम्बन्धी सद्वृत्त के करणीय कर्म :

व्यायाम के सम्बन्ध में निम्न लिखित करणीय कर्मों को करना चाहिए –

(1) व्यायाम सदैव साफ, स्वच्छ हवादार स्थान पर करने चाहिए। घुटनयुक्त, शीलनयुक्त, अप्राकृतिक वातावरण में अथवा रासायनिक पदार्थ जैसे मच्छर भगाने की कायॅल अथवा धूऑ, रासायनिक परफयूम से युक्त धूप व अगरबत्ती जलाकर व्यायाम नही करने चाहिए।

(2) व्यायाम सदैव खाली पेट ही करने चाहिए। सांय काल में भी दोपहर के भोजन के चार से छह घंटे बाद शौचादि से निवृत्त होकर ही व्यायाम करने चाहिए।

(3) व्यायाम करते समय हल्के एवं ढीले वस्त्रों को पहनना चाहिए। व्यायाम करते समय वस्त्र किसी भी प्रकार से व्यायाम में बाधक नही होने चाहिए।

(4) व्यायाम में कभी भी जल्दबाजी नही करनी चाहिए अपितु धीरे धीरे क्रमबद्धता के साथ ही व्यायाम करने चाहिए। व्यायाम से पूर्व शरीर को तैयार करने के लिए पहले सुक्ष्म अभ्यास अथवा वार्मअप एक्सरसाईज के द्वारा शरीर को तैयार करने के उपरान्त व्यायाम करने चाहिए। व्यायाम झटके से नही करने चाहिए एवं विशेष रुप से रीढ को झटके से बचाना चाहिए।

(5) व्यायाम में निरन्तरता अत्यन्त अनिवार्य होती है। कम समय में किसी अभ्यास को पूर्ण बनाने की अपेक्षा धीरे धीरे निरन्तर लम्बे समय तक अभ्यास करते हुए अभ्यास में पूर्णता लानी चाहिए।

(6) व्यायाम का अभ्यास देश, काल एवं अपनी शरीर की स्थिति एवं क्षमता के अनुरुप करना चाहिए। व्यायाम में अपनी क्षमता का विशेष ध्यान रखते हुए क्षमतानुसार ही अभ्यास करने चाहिए।

(7) व्यायाम के तुरन्त बाद भारी व गरिष्ठ भोजन एवं ठंडे जल का सेवन नही करना चाहिए।

(8) व्यायाम सदैव प्रसन्न एवं स्थिर मन के साथ करना चाहिए। कभी भी दुखः, निराशा, अवसाद, हताशा एवं निराशा में व्यायाम का अभ्यास नही करना चाहिए अपितु व्यायाम सदैव प्रसन्नता एवं हर्षोल्लास के साथ करने चाहिए।

इस प्रकार उपरोक्त नियमों का पालन करते हुए व्यायाम करने से व्यायाम करने से मनुष्य किसी भी प्रकार की हानि नही होती है एवं व्यायाम के अभ्यास से अधिकतम लाभ की प्राप्ति होती है। अब वैयक्तिक सद्वृत्त के अगले महत्वपूर्ण बिंदु मैथुन सम्बन्धी सद्वृत्त पर विचार करते हैं –

(ड) मैथुन सम्बन्धी सद्वृत्त के करणीय कर्म :

प्रिय विधार्थियों, मनुष्य एक मननशील एवं चिन्तनशील प्राणी है। मनुष्य को अपनी प्रत्येक क्रिया अच्छे और बुरे परिणाम का चिन्तन करने के उपरान्त ही करनी चाहिए। मनुष्य को मैथुन क्रिया भी शास्त्रोक्त विधिपूर्वक एवं अच्छे और बुरे परिणाम का चिन्तन करने के उपरान्त ही करनी चाहिए। आयुर्वेद शास्त्र व अन्य प्राचीन ग्रन्थों में इस संदर्भ में अनेक नियमों का उल्लेख किया गया है जिन्हे मैथुन सम्बन्धी सद्वृत्त की संज्ञा दी जाती है। मानव को स्वस्थ एवं ऊर्जावान बनाने में इन मैथुन सम्बन्धी सद्वृत्त का अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान है।

मैथुन सम्बन्धी सद्वृत्त का महत्वपूर्ण एवं मूलभूत नियम है कि मनुष्य को धार्मिक विधिविधान से सन्तानोत्पत्ति के उद्देश्य से मैथुन क्रिया करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त मनुष्य को इन्द्रियों पर संयम रखते हुए ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।

ऐसा करने से मनुष्य का ओज, तेज, बुद्धि, यश और बल बढता है तथा मनुष्य स्वस्थ, सुखी, बलवान एवं दीर्घायु बनता है। इसके विपरित अथवा प्रतिकूल आचरण करने से मनुष्य दीन–हीन रोगों से ग्रस्त एवं अल्पायु को प्राप्त होता है। मैथुन सम्बन्धी सद्वृत्त का पालन करने से अच्छे संस्कारों वाली एवं उत्तम गुणों से युक्त सन्तानों की प्राप्ति होती है।

जिज्ञासु पाठकों, अभी तक आपने वैयक्तिक सद्वृत्त के करणीय का अध्ययन किया। इन वैयक्तिक सद्वृत्त का पालन करने मनुष्य का स्वास्थ्य उन्नत अवस्था को प्राप्त होता है एवं मनुष्य रोगरहित व ऊर्जावान रहता है। अब वैयक्तिक सद्वृत्त से अगला बिंदु मानसिक सद्वृत्त आता है जिसके करणीय कर्मों का शरीर एवं मन दोनों पर प्रभाव पडता है। मानसिक सद्वृत्त के करणीय कर्म इस प्रकार है –

10.4.2 मानसिक सद्वृत्त के करणीय कर्म –

प्रिय विधार्थियों, मनुष्य के जीवन में मन के महत्व से आप अवश्य ही परिचित होगें। मन के जीते जीत और मन के हारे हार जैसी लोकोक्तियाँ मन के महत्व पर प्रकाश डालती है। आपके अध्ययन के मूल विषय योग दर्शन के प्रारम्भ में ही चित्तवृत्तियों के निरोध अर्थात मन को स्थिर एवं शान्त बनाने पर प्रकाश डाला गया है। मन के स्वस्थ, सक्रिय एवं ऊर्जावान रहने पर सर्वत्र सुख शान्ति दिखलाई पडती है जबकि मन के रोगी पडने पर निराशा का अन्धकार मनुष्य को घेर लेता है एवं मनुष्य पतन के गर्त की ओर जाना प्रारम्भ हो जाती है। मन को स्वस्थ, सक्रिय एवं ऊर्जावान बनाए रखने के लिए मानसिक सद्वृत्त का उपदेश किया गया है। मानसिक सद्वृत्त के करणीय कर्मों को करने से मन पर अनुकूल एवं सकारात्मक प्रभाव पडता है जिसके फलस्वरुप मानसिक स्वास्थ की प्राप्ति होती है एवं मनुष्य का मन एवं शरीर दोनों ही ऊर्जावान बने रहते है। इससे मनुष्य के अन्दर उत्साह, उमंग एवं उल्लास के भावों की प्रबलता बनी रहती है। इस प्रकार उपरोक्त तथ्यों को जानने एवं समझने के उपरान्त आपके मन में मानसिक सद्वृत्त को के महत्वपूर्ण करणीय कर्मों को जानने की जिज्ञासा अवश्य ही बढ गयी होगी। मानसिक सद्वृत्त के महत्वपूर्ण करणीय कर्म इस प्रकार हैं –

(1) मनुष्य को अपने मन में सदैव सकारात्मक विचार रखने चाहिए। विपरित परिस्थितियों जैसे हार जीत, सुख दुखः, लाभ हानि आदि का सामना विवेकपूर्ण ढंग से धैर्यपूर्वक करते हुए मानसिक सन्तुलन को बनाए रखना चाहिए। जीवन की कठिन एवं चुनौतिपूर्ण समस्याओं का सामना विवेक, धैर्य और मन के सकारात्मक भावों के साथ करना चाहिए।

(2) मनुष्य को मानसिक स्तर पर नकारात्मक विषयों जैसे झूठ, चोरी, हिंसा आदि का मनन चिन्तन नही करना चाहिए। अपितु इनके स्थान पर मन में अच्छे महापुरुषों के जीवन दर्शन एवं प्रेरणाप्रद घटनाओं का चिन्तन करना चाहिए, अर्थात मन को सदैव सकारात्मक भावों से युक्त रखना चाहिए।

(3) मनुष्य को मानसिक स्तर पर स्वयं को ईश्वर के अत्यन्त निकट समझना चाहिए। मानसिक स्तर पर धारण रखनी चाहिए कि ईश्वर मेरी समस्त स्थूल एवं सुक्षम कियाओं को देख–सुन जान एवं समझ रहा है। स्वंय को ईश्वर के समीप जान एवं समझ कर उच्च स्तरीय मानसिक बल की अनुभूति करनी चाहिए।

(4) मनुष्य को मन को स्वस्थ एवं ऊर्जावान बनाए रखने हेतु नित्य प्रति प्रातः और सांयकाल सन्धा, हवन, यज्ञ एवं भजन किर्तन करने चाहिए। ऐसा करने से मन को सकारात्मक ऊर्जा की प्राप्ति होती है।

(5) मन में संतोष के भावों को अपनाना चाहिए। परिवार एवं समाज के दूसरे मनुष्यों के साथ मित्रता एवं विश्वास का व्यवहार करना चाहिए। छोटी छोटी बातों में गुस्सा, तनाव एवं झगडे के स्थान पर विनोदशील प्रवृत्ति को अपनाते हुए समस्याओं को जटिल नही बनानी चाहिए बल्कि समस्याओं को सहजतापूर्वक सुलझाने की वृत्ति बनानी चाहिए।

(6) मनुष्य को अपनी समस्त शारीरिक एवं मानसिक कार्यों को चिन्तन मनन करके करना चाहिए। मनुष्य को कार्य करने से पूर्व मानसिक स्तर सम्बन्धित विषय के परिणाम के विभिन्न पक्षों का चिन्तन करना चाहिए परन्तु कार्य करने के उपरान्त उस कार्य के परिणाम को समत्वं के भावों के साथ स्वीकार करना चाहिए।

(7) अपने प्रत्येक कार्य को मन की एकाग्रता एवं स्थिरता के साथ करने चाहिए। मन को चचँल बनने से रोकने का प्रयास करना चाहिए तथा सदैव अपने मन की इच्छाओं को वश में रखना चाहिए।

(8) मनुष्य को अपने मन को सदैव प्रसन्न रखना चाहिए। स्वयं प्रसन्न रहते हुए अपने आस पास के मनुष्यों को प्रसन्न रखना चाहिए।

(9) मनुष्य के मन का उसके व्यवहार के साथ सीधा सम्बन्ध होता है। मनुष्य को विवेकशील, प्रसन्न एवं सकारात्मक रहते हुए अपने व्यवहार को आर्दश एवं अनुकरणीय बनाना चाहिए। दूसरों के प्राति सदैव उस व्यवहार को करना चाहिए जिसे हम स्वंम के लिए चाहते हैं।

(10) मनुष्य को अपनी समस्याओं के कारणों अर्थात राग–द्वेष को कम करते रहना चाहिए एवं अपने जीवन को राग द्वेष से मुक्त करते हुए सुख, शान्ति एवं ईश्वरीय आनन्द की अनुभूति करते हुए जीना चाहिए। वैदिक सिद्धान्तों का अनुकरण करते हुए यदि कोई व्यक्ति हमारे प्रति र्दुव्यवहार अथवा हमसे द्वेष करता है उसे परमात्मा की न्यायरुपी व्यवस्था पर छोड देना चाहिए।

जिज्ञासु पाठकों, वर्तमान काल में मनुष्य की मानसिकता पर नकारात्मकता का प्रभाव बढता जा रहा है। इसी कारण मानसिक रोगों से ग्रस्त रोगियों की संख्या दिन प्रतिदिन बहुत तेजी से बढती जा रही है। ऐसी अवस्था में मानसिक सद्वृत्त का महत्व और भी अधिक बढ जाता है। मानसिक सद्वृत्त का पालन करने से केवल मानसिक रोग ही दूर होते हैं अपितु मनुष्य के सोच विचार एवं व्यवहार का स्तर भी उन्नत एवं विकसित होता है। इसका पालन करने से मनुष्य का सर्वांगीण विकास होता है जिसके फलस्वरुप वह मनुष्य उच्च व्यक्तित्व का धनी बनता है।

प्रिय विधार्थियों, मन में उत्पन्न विचारों का मनुष्य के जीवन में बहुत महत्व है क्योंकि विचार ही आगे कर्म का रुप लेते है अर्थात मनुष्य जैसा सोचता है वैसे ही कर्म करता है। कर्मों से ही मनुष्य की आदत बनती है। आदतों का समूह चरित्र का निमार्ण करता है और चरित्र से ही मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्धारण होता है। सार रुप में स्पष्ट होता है कि मूल में मनुष्य की सोच विचार ही कार्य करती है अतः मनुष्य को अपनी सोच विचार सकारात्मक रखनी चाहिए। मन की सोच विचार के महत्व को जानने एवं समझने के उपरान्त अब आपके मन चरित्र सम्बन्धी सद्वृत्त को जानने की जिज्ञासा भी बढ गयी होगी अतः अब चरित्र सम्बन्धी सद्वृत्त पर विचार करते हैं –

10.4.3 चरित्र सद्वृत्त के करणीय कर्म –

प्रिय विधार्थियों, मनुष्य को अपने चरित्र को उत्तम एवं अनुकरणीय बनाने हेतु निम्न लिखित करणीय कर्म करने चाहिए –

(1) मनुष्य सत्य बोलने वाला अर्थात सत्यभाषी होना चाहिए। सत्य बोलने का गुण उसके चरित्र का सबसे महत्वपूर्ण गुण होना चाहिए।

(2) मनुष्य सत्य बोलने के साथ साथ मृदुभाषी एवं विनयशील होना चाहिए। कठोर अपशब्दों का प्रयोग कभी नही करना चाहिए अपितु सदैव शालीन भाषा एवं शब्दों का ही प्रयोग करना चाहिए।

(3) मनुष्य के चरित्र में समयनिष्ठता एवं अनुशासन का गुण होना चाहिए। मनुष्य समय के प्रत्येक क्षण का सदुपयोग करने वाला एवं समय के अनुसार कार्य करने वाला होना चाहिए।

(4) मनुष्य के चरित्र में कार्यकुशलता का गुण होना होना चाहिए अर्थात वह अपने प्रत्येक कार्य को कुशलतापूर्वक करने वाला होना चाहिए।

(5) मनुष्य के चरित्र में अच्छे व्यक्तियों के सत्संग का गुण होना चाहिए अर्थात उसका सम्बन्ध अच्छे पुरुषों के साथ होना चाहिए।
(6) मनुष्य के चरित्र में किसी भी प्रकार का कोई भी र्दुगुण अथवा र्दुव्यसन नही होना चाहिए।
इस प्रकार के चरित्र का उपदेश आयुर्वेद शास्त्र में किया गया है। इनका पालन करने से मनुष्य का शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक बल बढता है एवं मनुष्य का सर्वांगीण विकास होता है। चरित्र सम्बन्धी सद्वृत्त को जानने के उपरान्त अब सामाजिक सद्वृत्त पर विचार करते हैं –

10.4.4 सामाजिक सद्वृत्त के करणीय कर्म –

जिज्ञासु पाठकों, मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य समाज में रहकर अन्य मनुष्यों एवं प्राणियों को सहयोग देता है और आवश्यक्ता पडने पर उनका सहयोग लेता है। विशेष रुप से मनुष्य अपने जीवन के सुख दुख समाज के साथ बाँटकर सुखद अनुभूति करता है। भारतीय समाज में मान्यता है कि सुख बाँटने से बढता है तो वही दुख बाँटने से कम होता है अर्थात तात्पर्य यह है कि मनुष्य को अपने जीवन के सुख और दुख समाज के साथ बाँटने चाहिए। मनुष्य का समाज के साथ सम्बन्ध को सामाजिक स्वास्थ्य के रुप में अभिव्यक्त किया जाता है। सामाजिक स्वास्थ्य का उन्नत होना एक अच्छे स्वस्थ व्यक्ति का लक्षण है जबकि सामाजिक स्वास्थ्य का कमजोर होना एक अच्छे विकृत व्यक्तित्व की ओर संकेत करता है। मनुष्य के सामाजिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने हेतु निम्न लिखित करणीय कर्म करने चाहिए –
(1) अपने घर पर आए अतिथियों एवं अन्य मनुष्यों का श्रृद्धाभाव से आदर एवं सम्मान करना चाहिए।
(2) समाज में अपने से बडों का सदैव अभिवादन करना चाहिए। अभिवादन करने से आयु, विद्या, यश एवं बल में वृद्धि होती है।
(3) मनुष्य को अपने माता–पिता, घर के वृद्धजनों, विद्वान आचार्यों एवं सिद्ध महापुरुषों का आदर, सम्मान एवं सेवा श्रृद्धा भाव से करनी चाहिए।
(4) मनुष्य को अपने आसपास रहने वाले समाज के अन्य मनुष्यों तथा अन्य प्राणियों के प्रति आत्मीयता के भाव रखने चाहिए। अपने से कमजोर अथवा शक्तिशाली दूसरे मनुष्यों अथवा अन्य जीव के प्रति किसी भी प्रकार की र्दुभावना नही करनी चाहिए।
(5) विपत्ति से ग्रस्त मनुष्य की सहायता करनी चाहिए। विपत्ति काल में उसको धैर्य बनाए रखने का उपदेश करते हुए उसकी सहायता करनी चाहिए।
(6) अच्छे सामाजिक कार्यों में उत्साहपूर्वक भाग लना चाहिए एवं दूसरों को भी इसके लिए प्रेरित करना चाहिए।
इस प्रकार के करणीय कर्मों को करने से मनुष्य के सामाजिक स्वास्थ्य का स्तर उन्नत बना रहता है। सामाजिक सद्वृत्त को जानने के उपरान्त अब धार्मिक सद्वृत्त पर विचार करते हैं –

10.4.5 धार्मिक सद्वृत्त के करणीय कर्म –

जिज्ञासु पाठकों, मनुष्य का धर्म के साथ अटूट सम्बन्ध होता है। जिस प्रकार एक वृक्ष का आधार उसकी जड होती है, ठीक उसी प्रकार मनुष्य का आधार धर्म होता है। धर्म से मनुष्य को आध्यात्मिक पोषण प्राप्त होता है जबकि धर्म के अभाव में मनुष्य का आध्यात्मिक विकास रुक जाता है। चूंकि आत्मा का सम्बन्ध शरीर और मन दोनों के साथ होता है और आत्मा की आध्यात्मिक ऊर्जा से शरीर और मन दोनों को ऊर्जा प्राप्त होती है अतः धार्मिक सद्वृत्त का अपना विशेष महत्व होता है। धार्मिक सद्वृत्त के संदर्भ में मनुष्य को निम्न लिखित करणीय कर्म करने चाहिए –
(1) मनुष्य को ईश्वर के प्रति आस्तिक होना चाहिए। स्वयं को ईश्वर का प्रतिनिधि एवं कार्य का निमित मात्र मानते हुए सभी कार्यों को ईश्वर को समर्पित करते हुए करने चाहिए।

(2) मनुष्य को प्रतिदिन पँचमहायज्ञों– ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ एवं बलिवैश्वदेवयज्ञ श्रृद्धापूर्वक एवं भक्तिभाव से करने चाहिए।
(3) मनुष्य को प्रतिदिन ज्ञान, दान एवं तप करना चाहिए। ज्ञान हेतु प्रतिदिन स्वाध्याय करना चाहिए। इसके साथ साथ अपनी सार्मथ्य एवं क्षमतानुसार दान देना चाहिए एवं कठोर शारीरिक व मानसिक श्रम करना चाहिए।
(4) प्रतिदिन वेद का अध्ययन एवं वैदिक मंत्रों का उच्चारण करना चाहिए। शास्त्रोक्त विधिविधान से पँचमहायज्ञों को करना चाहिए।
(5) धामिक स्थलों, धार्मिक ग्रन्थों एवं महापुरुषों के प्रति आदर सत्कार एवं सम्मान के भाव रखने चाहिए। समय समय पर धार्मिक उत्सवों, प्रवचनों, धार्मिक स्थलों एवं यज्ञ हवन आदि कार्यक्रमों में प्रतिभाग करना चाहिए।
प्रिय पाठकों, इस प्रकार उपरोक्त करणीय कर्मों को करने से मनुष्य का शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य उन्नत अवस्था को प्राप्त होता है। करणीय कर्मों को जानने के उपरान्त अब आपके मन में यह प्रश्न उत्पन्न होना भी स्वाभाविक ही है कि जिस प्रकार करणीय कर्मों का मनुष्य के स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रभाव पडता है तब क्या अकरणीय कर्मों का मनुष्य के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव भी पडता है ? यदि हाँ, तब सद्वृत्त के अकरणीय कर्म कौन कौन से हैं ? अतः अब सद्वृत्त के अकरणीय कर्मों पर विचार करते हैं –

10.5 सद्वृत्त के अकरणीय कर्म–

जिज्ञासु पाठकों, सद्वृत्त के प्रमुख एवं महत्वपूर्ण अकरणीय कर्म इस प्रकार हैं–
(1) कभी भी गंदगी में वास नही करना चाहिए।
(2) बहुत अधिक उष्ण अथवा ठंडा व बासी आहार का सेवन नही करना चाहिए।
(3) कभी भी तनाव अथवा आवेश व जल्दी में आहार का सेवन नही करता चाहिए।
(4) आहार लेते समय बोलना अथवा हसना नही चाहिए। बहुत धीमे धीमे अथवा बहुत जल्दी में आहार ग्रहण नही करना चाहिए।
(5) सूर्योदय एवं सूर्यास्त के काल में शयन नही करना चाहिए।
(6) गन्दे, भ्रामक एवं नकारात्मक साहित्य का अध्ययन नही करना चाहिए।
(7) गन्दे चरित्र के लोगों का सँग नही करना चाहिए। गन्दे चरित्र का कभी अनुकरण नही करना चाहिए।
(8) जीवन में कभी झूट, छल एवं कपट नही करना चाहिए। अपने कार्य को सिद्ध करने हेतु दूसरों की झूठी प्रसंन्नसा अथवा चापलूसी नही करनी चाहिए।
(9) अपने समय को दूसरों की निन्दा अथवा चुगली में नही लगाना चाहिए।
(10) व्यर्थ की बातों अथवा व्यर्थ कार्यों में समय नष्ट नही करना चाहिए।
(11) कभी भी अभिमान, क्रोध एवं ईष्या–द्वेष के भाव नही रखने चाहिए।
(12) कभी असन्तोषी नही बनना चाहिए अपितु पूर्ण पुरुषार्थ करने के उपरान्त प्राप्त फल को प्रसन्नता के साथ स्वीकार करना चाहिए।
(13) अपनी शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक ऊर्जा को सदैव सकारात्मक कार्यों में ही लगाना चाहिए। कभी भी अपनी ऊर्जा को नकारात्मक कार्यों में नही लगाना चाहिए।
(14) कार्य करने में कभी भी जल्दबाजी, उद्विग्नता नही करनी चाहिए।
(15) अपने मन में किसी के प्रति अनिष्टता के भाव कदापि नही रखने चाहिए।
(16) दूसरे के धन एवं वस्तुओं की इच्छा नही करनी चाहिए।
(17) मद्यपान, धूम्रपान, धूर्तक्रीडा आदि दुर्व्यसन नही करने चाहिए।
(18) अपने से बडों के साथ सम्मान एवं आदर तथा अपने से छोटों के साथ प्रेम का व्यवहार करना चाहिए। विशेष रुप से छोटे बालकों, भूखे व्यक्ति, भिखारी, मानसिक असन्तुलन से ग्रस्त पागल व्यक्ति, अपने आश्रित अथवा अपने से कमजोर का कभी तिरिष्कार नही करना चाहिए।

अभ्यास हेतु प्रश्न –

1– **सत्य / असत्य**

(क) मनुष्य को प्रातःकाल सूर्योदय काल के समय अध्ययन करना चाहिए।
(ख) मनुष्य को भोजन करने के तुरन्त बाद यात्रा करनी चाहिए।
(ग) मनुष्य को एक निश्चित समय पर आहार ग्रहण करना चाहिए।
(घ) सुख बाँटने से घटता है तो वही दुख बाँटने से बढ जाता है।
(ड) धर्म के अभाव में मनुष्य का आध्यात्मिक विकास रुक जाता है।

2– रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

(क) सद्वृत्त के करणीय कर्मों का मनुष्य के स्वास्थ्य पर ———— प्रभाव पडता है।
(ख) उपनिषद् साहित्य के अनुसार आहार के सुक्ष्म भाग से ———— का निमार्ण होता है।
(ग) मनुष्य की आदतों का समूह ———— कहलाता है।
(घ) मानसिक सद्वृत्त के अनुसार मनुष्य को अपने मन को सदैव ———— से युक्त रखना चाहिए।
(ड) मनुष्य के चरित्र का सबसे महत्वपूर्ण गुण ———— है।

3– **बहुविकल्पीय प्रश्न –**

(क) सद्वृत्त किस प्रकार के नियमों का घेरा है –

(a) सही (b) सकारात्मक
(c) अनुशासनात्मक (d) सभी।

(ख) आहार का कौन सा भाग शरीर में धातुओं एवं कोशिकाओं को प्रोषण प्रदान करता है –

(a) स्थूल भाग (b) मध्यम भाग
(c) सुक्ष्म भाग (d) सभी ।

(ग) भोजन करने के तुरन्त बाद मनुष्य को कौन सा आसन करना चाहिए –

(a) सर्वांगासन (b) शीर्षासन
(c) वज्रासन (d) चक्रासन ।

(घ) अभिवादन करने से क्या प्राप्त होता है–

(a) यश (b) बल
(c) आयु (d) सभी ।

(ड) वैदिक शास्त्रों में कितने प्रकार के यज्ञों का उल्लेख किया गया है –

(a) पाँच (b) दो
(c) आठ (d) तीन।

10.6 सारांश–

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत इकाई का प्रारम्भ सद्वृत्त के करणीय एवं अकरणीय कर्मों के अर्थ की व्याख्या साथ किया गया है। यहाँ पर समझाया गया है कि मनुष्य द्वारा शरीर, मन एवं इन्द्रियों के माध्यम से की जाने वाली ऐसी चेष्ठा विशेष, जिनका उसके शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रभाव पडता है, सद्वृत्त के करणीय कर्म कहलाते हैं जबकि अकरणीय चेष्ठाएँ जिनका मनुष्य के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पडे एवं प्रकार के रोगों की उत्पत्ति हो, सद्वृत्त के अकरणीय कर्म कहलाते हैं। इकाई में आगे इन्ही करणीय एवं अकरणीय कर्मों की सविस्तार व्याख्या की गयी है।

इकाई में करणीय एवं अकरणीय कर्मों का प्रारम्भ वैयक्तिक सद्वृत्त के करणीय कर्मों से किया गया है। वैयक्तिक स्वच्छता, आहार, अध्ययन व्यायाम एवं मैथुन सम्बन्धी सद्वृत्त के करणीय कर्मों को स्पष्ट करने के उपरान्त मानसिक सद्वृत्त के करणीस कर्मों को स्पष्ट किया गया गया है। तत्पश्चात चरित्र सम्बन्धी सद्वृत्त के करणीय कर्मों

का उल्लेख इकाई में किया गया है। तत्पश्चात क्रमशः धार्मिक एवं सामाजिक सद्वृत्त के करणीय कर्मों को समझाया गया है। यहाँ पर इन करणीय कर्मों के महत्व एवं इन करणीय कर्मों के शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य पर पडने वाले अनुकूल प्रभावों पर प्रकाश डाला गया है। इकाई के अंत में सद्वृत्त के महत्वपूर्ण अकरणीय कर्मों का वर्णन करते हुए इकाई को पूर्ण किया गया है।

10.7 पारिभाषिक शब्दावली –

समावेश	योग, जोड
चेष्ठा	बुद्विपूर्वक किया गया प्रयास
प्रसाद्यन	स्वच्छता, सवाँरना
मृदुभाषी	प्रिय, मीठा, अच्छा बोलने वाला

10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क.	असत्य	क.	सकारात्मक भावों	क.	d
ख.	असत्य	ख.	मन	ख.	b
ग.	सत्य	ग.	चरित्र	ग.	c
घ.	असत्य	घ.	सकारात्मक भावों	घ.	d
ड.	सत्य	ड.	सत्य बोलना	ड.	a

10.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 प्रो0 रामहर्ष सिंह – स्वस्थवृत्त विज्ञान – चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली। (पुनःमुद्रित संस्करण 2014)

2 कल्याण आरोग्य अंक (जनवरी एवं फरवरी 2001 ई0) – गीता प्रेस, गोरखपुर।

3 आचार्य बालकृष्ण – आयुर्वेद सिद्धान्त रहस्य, दिव्य प्रकाशन, दिव्य योग मन्दिर ट्रस्ट, हरिद्वार। (संस्करण फरवरी 2007)

4 ब्रह्मवर्चस – आयुर्वेद का दर्शन, किया शारीर एवं स्वस्थ वृत्त, श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट, शांतिकुँज, हरिद्वार। (छटा संस्करण 2010)

10.10 निबन्धात्मक प्रश्न–

1.सद्वृत्त के करणीय एवं अकरणीय कर्म को समझाइये।

2.सद्वृत्त के करणीय कर्मों को लिखकर इनके महत्व पर प्रकाश डालिए।

3.सद्वृत्त के करणीय एवं अकरणीय कर्मों पर निबन्ध लिखिए।

इकाई 11 : आचार रसायनः अवधारणा, महत्व एवं लाभ

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 आचार रासायन की अवधारणा
11.4 सद्वृत्त के करणीय कर्म
11.4.1 वैयक्तिक सद्वृत्त के करणीय कर्म
11.4.2 मानसिक सद्वृत्त के करणीय कर्म
11.4.3 चारित्रिक सद्वृत्त के करणीय कर्म
11.4.4 सामाजिक सद्वृत्त के करणीय कर्म
11.4.5 आचार रासायन का महत्व
11.5 आचार रासायन का लाभ
11.6 सारांश
11.7 पारिभाषिक शब्दावली
11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
11.10 निबन्धात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

वर्तमान काल की आधुनिक भौतिक साधनों से युक्त व्यस्तम् एवं भागदौड भरी जीवनशैली ने आज के मनुष्य को प्रकृति से दूर करती जा रही है। कम्पयूटर, टी0 वी0, मोबाईल, फ्रीज, कूलर एवं ए0 सी0 जैसे भौतिक सुख साधनों के अधिकाधिक प्रयोग ने एक ओर जहाँ मनुष्य के जीवन को आरामयुक्त बनाया है तो वहीं दूसरी और मनुष्य के शारीरिक एवं मानसिक बल का ह्रास भी किया है। स्वस्थवृत्त के नियमों का पालन करते हुए रात्रि में सुख और चैन की नींद सोने वाले भारतीयों ने भी जब से आधुनिकता की आँधी के साथ चलकर सद्वृत्त एवं आचार रसायन के स्थान पर अव्यवस्थित दिनचर्या एवं भौतिकवादिता को अपने जीवन का अंग बनाया तब से यहाँ पर भी शारीरिक और मानसिक रोगों ने अपनी जडें गहरी करनी प्रारम्भ कर दी। निसन्देहं वर्तमान काल में समाज के मनुष्यों के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य का स्तर दिन प्रतिदिन कमजोर होता जा रहा है। इसके मूल में आचार रसायन एवं स्वस्थवृत्त का अपालन एक प्रमुख कारक है।

वर्तमान काल समाज में मनोदैहिक रोग बहुत अधिक तेजी से फैलते जा रहे हैं। इन मनोदैहिक रोगों की प्रमुख विशेषता यह होती है कि इन रोगों का प्रारम्भ मनुष्य के मन से होता है और इनके लक्षण मन के साथ साथ शरीर में भी प्रकट होते हैं। दमा, मधुमेह, उच्च व निम्न रक्तचाप, थायरॉइड, माइग्रेन, एलर्जी, अनिन्द्रा एवं तनाव आदि इस वर्ग के प्रमुख रोग हैं जिनसे ग्रस्त रोगियों की संख्या दिन प्रतिदिन बढती जा रही है। अग्रेंजी एलोपैथी चिकित्सा में इन मनोदैहिक रोगों को असाध्य रोगों की श्रेणी में रखा जाता है और इन रोगों के लक्षणों को दबाने के लिए विभिन्न प्रकार के रासायनिक पदार्थों से युक्त शामक एवं उत्तेजक दुष्प्रभावों से युक्त दवाईयों का सेवन रोगी को कराया जाता है। इन दवाईयों का सेवन करने से रोग समूल ठीक नही होता है अपितु रोग के लक्षण कुछ समय के लिए दब जाते हैं। यहाँ पर यदि हम आयुर्वेद शास्त्र में वर्णित आचार रसायन पर विचार करें तो निसंदेह आचार रसायन मनोशारीरिक रोगों की उपयुक्त एवं श्रेष्ठ चिकित्सा हो सकती है। आचार रसायन मनुष्य के शरीर एवं मन दोनों पर ही सकारात्मक प्रभाव रखता है। आचार रसायन का पालन करने से मनुष्य के श्रेष्ठ आचरण एक रासायन की भांति कार्य करते हुए उसके शरीर और मन पर अत्यन्त

लाभकारी प्रभाव रखते हैं। अग्रेंजी दवाईयों के स्थान पर श्रेष्ठ आचारण करने के फलस्वरुप मनुष्य शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक अर्थात सभी स्तरों पर स्वस्थ बनता है। प्रस्तुत इकाई में श्रेष्ठ आचरण को रासायन की संज्ञा देते हुए इसके स्वरुप, महत्व एवं लाभों पर सविस्तार विचार किया गया है।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- आचार रसायन के अर्थ का ज्ञान प्राप्त करोगें।
- आचार रसायन के स्वरुप को जान पाओगें।
- आचार रसायन के महत्व को समझाने में सक्ष्म हो सकेगें।
- आचार रसायन से प्राप्त लाभों से अवगत होगें।
- आचार रसायन पालन से स्वास्थ्य संर्वधन को जान पाओगें।
- प्रस्तुत इकाई के अन्त में दिए गये प्रश्नों के उत्तर दे सकेंगे।

11.3 आचार रासायन का अर्थ एवं स्वरुप

प्रिय पाठकों, पूर्व की इकाई में आपने सद्वृत्त के महत्वपूर्ण करणीय एवं अकरणीय कर्मों के विषय में ज्ञान प्राप्त किया और जाना कि सद्वृत्त के करणीय कर्मों को करने से मनुष्य का शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य उन्नत अवस्था में बना रहता है जबकि इसके विपरित सद्वृत्त के अकरणीय कर्मों का मनुष्य के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है और मनुष्य नाना प्रकार के रोगों से ग्रस्त हो जाता है। आचार रसायन सद्वृत्त के महत्वपूर्ण लाभकारी करणीय कर्मों का ऐसा समूह होता है जो मनुष्य के स्वास्थ्य पर सीधे सीधे लाभकारी प्रभाव रखता है।

जिज्ञासु पाठकों, आचार रसायन को जानने एवं समझने के लिए सर्वप्रथम इसके शाब्दिक अर्थ पर चिन्तन करना आवश्यक है। यह दो शब्दों – आचार एवं रसायन से मिलकर बनता है। आचार का अर्थ श्रेष्ठ कारणीय कर्म अर्थात उपयुक्त आचरण से होता है जबकि रसायन विशेष प्रभाव रखने वाले द्रव्य को कहा जाता है। अर्थात शाब्दिक रुप से अर्थ करने पर स्पष्ट होता है कि ऐसा श्रेष्ठ आचरण जो मनुष्य पर रसायन के समान विशेष लाभकारी प्रभाव रखता है, आचार रसायन कहलाता है। यद्यपि रसायन अत्यन्त प्रचलित एवं व्यवहारिक शब्द है जिसका प्रयोग आप दिन प्रतिदिन अवश्य ही करते होगें। आयुर्वेद शास्त्र में मनुष्य को स्वस्थ एवं दीर्घायु बनाने हेतु रासायनों के प्रयोग का उपदेश किया गया है। जबकि वर्तमान समय में अंग्रेजी एलोपैथी चिकित्सा में भी विभिन्न रासायनों का ही प्रयोग किया जाता है। अब आपके मन में यह प्रश्न उत्पन्न होना भी स्वाभाविक ही है कि क्या आयुर्वेद शास्त्र एवं एलोपैथी चिकित्सा में प्रयोग होने वाले रासायन एक समान ही होते हैं ? अतः यहाँ पर आपको यह स्पष्ट कर लेना चाहिए कि आयुर्वेद शास्त्र में वर्णित रासायन एलोपैथिक चिकित्सा में प्रयुक्त होने वाले रासायन से पूर्ण रुप से भिन्न होते हैं। एलोपैथी चिकित्सा में जहाँ अप्राकृतिक रासायनिक तत्वों एवं यौगिकों के द्वारा शरीर की चयापचय दर को बढाया अथवा घटाया जाता है तो वहीं इसके विपरित आयुर्वेद शास्त्र में पूर्ण रुप से प्राकृतिक औषध द्रव्यों जैसे आँवला, हरड, मूसली आदि का प्रयोग शरीर के ओज तेज एवं धातुओं को पुष्ट करने के उद्देश्य से किया जाता है। इनका प्रयोग करने से शरीर रोग मुक्त, वृद्धावस्था मुक्त, ऊर्जावान एवं दीर्घायु को प्राप्त होता है।

प्रिय पाठकों, जो द्रव्य शरीर के रस रक्त आदि धातुओं को बढाकर शरीर की शक्ति एवं आयु में वृद्धि करता है, रसायन कहलाते हैं। रसायनों के स्वरुप को स्पष्ट करते हुए आयुर्वेद शास्त्र के सुप्रसिद्ध विद्धान महर्षि चरक उपदेश करते हैं –

दीर्घमायुः स्मृतिंमेधामारोग्यं तरुणं वयः। प्रभावर्णस्वरौदार्यं देहेद्रियबलं परं।
वाक्सिद्धि प्रणतिं कान्तिं लभते ना रसायानात्। लाभोपायो हि शस्तानाम
रसादीनां रसायनम्।। (चरक संहिता)

अर्थात रसायन दीर्घ आयु प्रदान करने वाला, स्मरण शक्ति तथा धारण शक्ति अर्थात मेधा बुद्धि को बढाने वाला, शरीर की कांति एवं वर्ण को निखारने वाला, वाधी को उदार बनाने वाला, शरीर व इन्द्रियों में सम्पूर्ण बल का संचार करने वाला होता है। इसका अर्थात रसायन का सेवन करने से वाक सिद्धि, विनम्रता एवं शरीर में सुन्दरता आदि गुण प्राप्त होते हैं।

रसायन का प्रयोग करने से शरीर की रक्त रस आदि धातुओं को पोषण प्राप्त होता है, जिसके फलस्वरुप शरीर की क्षमता, जीवनी शक्ति एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास होता है। रसायनों के प्रभाव से निन्द्रा, तन्द्रा, आलस्य एवं दुर्बलता दूर होती है। शरीर में वात पित्त एवं कफ नामक त्रिदोष सम अवस्था को प्राप्त होते हैं। जठराग्नि प्रदिप्त होती है और शरीर का वर्ण, आभा, कांति और स्वर उत्तम बनती है।

आयुर्वेद शास्त्र में इन उपयोगी एवं महत्वपूर्ण रसायनों के निम्न लिखित तीन वर्गों का उल्लेख किया गया है –

(क) औषध रसायन : जब विशेष गुणों से युक्त औषध द्रव्यों का सेवन शरीर की धातुओं को पोषण प्रदान करने के उद्देश्य से किया जाता है तब उसे औषध रसायन की संज्ञा दी जाती है। औषध रसायन के अन्तर्गत हरड, बहेडा, आँवला, अशोक, अर्जुन आदि औषध प्रभाव रखने वाले द्रव्यों के सेवन का उललेख आता है।

(ख) आहार रसायन : जब विशेष गुणों से युक्त आहार का सेवन शरीर की रस, रक्त आदि धातुओं को पोषण प्रदान करने के उद्देश्य से किया जाता है तब उसे औषध रसायन की संज्ञा दी जाती है। आहार रसायन के अन्तर्गत पौष्टिक एवं ऊर्जावान आहार के सेवन का उल्लेख आता है।

(ग) आचार रसायन : जब मानसिक आचार विचार एवं व्यवहार पर नियम सयंम करते हुए शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य का संर्वधन किया जाता है तब उन आचार विचारों को आचार रसायन की संज्ञा दी जाती है। इन विचारों के प्रभाव से शरीर एवं मन ऊर्जावान बनते हैं।

प्रिय पाठकों, यहाँ पर प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत अध्ययन का मूल विषय आचार रसायन है। वास्तव में आयुर्वेद शास्त्र में औषध रसायन एवं आहार रसायन के साथ साथ आचार रसायन को भी अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। आयुर्वेद शास्त्र में यह कल्पना की गयी है कि रसायन गुण युक्त औषधि एवं आहार के बिना मात्र सदाचार एवं सद्वृत्त का पालन करने से शरीर एवं मन को रसायन के समान लाभ की प्राप्ति होती है जबकि इसके विपरित सदाचार एवं सद्वृत्त के अभाव में औषधि एवं आहार का सेवन भी निष्प्रभावी एवं निष्फल रहता है। तात्पर्य यह है कि शरीर एवं मन को स्वस्थ एवं ऊर्जावान बनाने के लिए आचार रसायन का विशेष महत्व है। इस प्रकार उपरोक्त तथ्यों का अध्ययन करने के उपरान्त आपको आचार रसायन की अवधारणा अवश्य ही स्पष्ट हो गयी होगी। किन्तु अब आपके सम्मुख यह प्रश्न उपस्थित होना भी स्वाभाविक ही है कि आचार रसायन को हम शब्दों एवं वाक्यों में किस प्रकार परिभाषित करें। अतः अब आचार रसायन की परिभाषाओं पर विचार करते हैं –

सदाचार एवं सद्वृत्त पालन करने का शरीर एवं मन पर रसायनवत प्रभाव पडता है अतः सदाचार एवं सद्वृत्त पालन को आचार रसायन की संज्ञा दी जाती है।

औषध सेवन एवं आहार सेवन के साथ साथ सदाचार एवं सद्वृत्त पालन द्वारा शरीर एवं मन को स्वस्थ एवं ऊर्जावान बनाना आचार रसायन कहलाता है।

सदाचार एवं सद्वृत्त पालन द्वारा स्वास्थ्य परिरक्षण करना एवं रोगों का परिशमन करना आचार रयायन कहलाता है।

सदाचार एवं सद्वृत्त पालन द्वारा शरीर एवं मन को स्वस्थ, ऊर्जावान एवं रोगमुक्त रखना आचार रसायन कहलाता है।

इस प्रकार आचार रसायन को अलग अलग प्रकारों एवं रुपों से परिभाषित किया जा सकता है किन्तु इन परिभाषाओं के मूल में यह तथ्य है कि सदाचार एवं सद्वृत्त पालन

शरीर और मन पर विशेष प्रभाव रखते हैं। यहाँ पर आपको यह तथ्य भी समझ लेना चाहिए कि केवल औषधियों के सेवन अथवा पौष्टिक आहार का सेवन करने मात्र से ही शरीर एवं मन स्वस्थ नही बनते हैं अपितु सदाचार एवं सद्वृत्त पालन के अभाव में औषध सेवन एवं आहार सेवन भी निष्प्रभावी सिद्ध होते हैं। आयुर्वेद शास्त्र में विशेष रुप से औषध सेवन से पूर्व शरीर एवं मन के शोधन का उपदेश एवं निर्देश किया गया है। शरीर एवं मन का शोधन करने के उपरान्त ही औषधियों का सेवन करना चाहिए। शुद्ध शरीर एवं मन में औषधियां एवं आहार अपना प्रभाव डालने में सक्ष्म होता है जबकि अशुद्ध शरीर एवं मन में औषधियां एवं आहार का सेवन भी प्रभावहीन रहता है। शरीर एवं मन को शुद्ध, स्वच्छ एवं मलरहित बनाने का प्रबल साधन सदाचार एवं सद्वृत्त का पालन है। अब प्रश्न उपस्थित होता है कि सदाचार और सद्वृत्त क्या होते हैं ?

जिज्ञासु पाठकों, यद्यपि सदाचार एवं सद्वृत्त के विषय में आपने पूर्व इकाईयों में विस्तारपूर्वक अध्ययन कर लिया है किन्तु यहाँ पर सदाचार एवं सद्वृत्त को किस अर्थ एवं किस रुप में वर्णित किया गया है, आपके लिए यह जानना एवं समझना भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अतः अब सदाचार एवं सद्वृत्त के विषय में विचार करते हैं।

श्रेष्ठ आचरण, विचार एवं व्यवहार को सदाचार एवं सद्वृत्त की संज्ञा दी जाती है। श्रेष्ठ आचरण, विचार एवं व्यवहार के अन्तर्गत उन सभी शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक क्रिया कलापों का समावेश होता है जो स्थूल एवं सुक्ष्म रुप से हमारे शरीर, मन एवं आत्मा को ऊर्जावान, स्वस्थ एवं रोगरहित बनाने का कार्य करती हैं। इन क्रियाओं को आयुर्वेद शास्त्र में आचार रसायन की संज्ञा दी गयी है। इन पर प्रकाश डालते हुए चरक संहिता नामक ग्रन्थ में स्पष्ट किया गया है कि सत्यवादी, क्रोध रहित, मद्यपान एवं मैथुन नही करने वाला, अहिंसक, आयास रहित, प्रशान्त, प्रियभाषी, जप और पवित्रता में तत्पर रहने वाला, धीर, नित्य दान करने वाला तपस्वी, गौ, ब्राह्मण, आचार्य, गुरु व ज्ञानवृद्ध एवं वयोवृद्ध पुरुषों की पूजा व सेवा सुश्रूषा में रत, नित्य क्रूरता से रहित तथा प्राणियों पर दया दृष्टि रखने वाला, निन्द्रा व जागरण को समावस्था में सेवन करने वाला, देश काल व मात्रा को जानने वाला, युक्ति जानने वाला, अहंकार रहित, सदाचार युक्त उदार, आत्मप्रविष्ट इन्द्रियों वाला, वृद्धपुरुषों, आस्तिकों व संयमी पुरुषों का उपासक तथा उनके साथ रहने वाला, धर्मशास्त्र का स्वाध्याय करने वाला तथा तदानुसार आचरण करने वाला पुरुष नित्य रसायन सेवी ही है, ऐसा समझना चाहिए। अर्थात इन आचारों के पालन से ही उसे रसायनवत् लाभ प्राप्त हो जाते हैं। इन श्रेष्ठ आचरणों को सरल रुप में सदाचार एवं सद्वृत्त की संज्ञा से सुशोभित किया जाता है तथा इन आचरणों का मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा का एक रसायन के समान प्रभाव पडता है। इसी विषय को आयुर्वेद शास्त्र में आचार रसायन के रुप में वर्णित किया गया है।

जिज्ञासु पाठकों, उपरोक्त अध्ययन से आपको आचार रसायन की अवधारणा अवश्य ही स्पष्ट हो गयी होगी एवं इसके साथ साथ इस विषय के साथ जुडे प्रश्नों का उत्तर भी आपको अवश्य ही मिल गया होगा। इस अध्ययन को समझने के उपरान्त आप आचार रसायन की अवधारणा एवं अर्थ को समझाने में भी सक्ष्म हुए होगें। इसके साथ साथ आपके मन में आचार रसायन के महत्व को और अधिक गहराई से जानने की जिज्ञासा भी अवश्य ही बलवती हो गयी होगी। आपके सम्मुख यह प्रश्न कई बार उपस्थित हुआ होगा कि सदाचार एवं सद्वृत्त पालन का मनुष्य के साथ क्या सम्बन्ध है ? श्रेष्ठ आचरण, विचार एवं व्यवहार जिसे आयुर्वेद शास्त्र में आचार रसायन की संज्ञा दी गयी, इसका मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पडता है ? अतः अब आचार रसायन के महत्व पर विचार करते हैं।

11.4 आचार रसायन का महत्व

जिज्ञासु पाठकों, आयुर्वेद शास्त्र में समझाया गया है कि स्वस्थ रहने के लिए, रोगों से बचने के लिए एवं ऊर्जावान अर्थात युवा बने रहने के लिए केवल औषधियों का सेवन

ही आवश्यक नही है अथवा दूसरे शब्दों में मात्र औषध सेवन के द्वारा उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त नही किया जा सकता अपितु पूर्ण रुप से स्वस्थ एवं ऊर्जावान बनने के लिए अपने आचार–विचार को सही रखना परम आवश्यक है। मनुष्य के आचार विचार एवं व्यवहार का उसके शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य पर सीधा प्रभाव पडता है। यह प्रभाव आचार रसायन के महत्व को सिद्ध करता है। अतः आचार रसायन के महत्व का अध्ययन इसके शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य पर पडने वाले प्रभावों के आधार पर किया जा सकता है। जो इस प्रकार है –

11.4.1 आचार रसायन का शारीरिक स्वास्थ्य पर प्रभाव

आचार रसायन सही, उपयुक्त एवं अनुकूल आदतों का समूह है। इसका पालन करने से मनुष्य की दिनचर्या, रात्रिचर्या एवं ऋतुचर्या सुव्यवस्थित होती है। इसके साथ साथ मनुष्य के अन्दर अनुशासन का विकास होता है। इसके परिणामस्वरुप शरीर के सभी तंत्र जैसे पाचन तंत्र, श्वसन तंत्र, रक्त परिसंचरण तंत्र, अन्तःस्रावी तंत्र और तंत्रिका तंत्र स्वस्थ एवं सक्रिय बनते हैं। इन तंत्रों के स्वस्थ एवं सक्रिय बनने से शरीर स्वस्थ एवं ऊर्जावान बनता है अर्थात शारीरिक स्वास्थ्य उन्नत अवस्था को प्राप्त होता है।

आचार रसायन के अन्तर्गत वर्णित सत्यवादिता, क्रोधरहितता, प्रसन्नता के भावों से शरीर में नकारात्मक अणु परमाणुओं का निमार्ण नही होता है अपितु सम्पूर्ण शरीर में सकारात्मकता का विकास होता रहता है। इसके साथ साथ मद्यपान एवं मैथुन आदि र्दुव्यसनों से मुक्त रहने से शरीर पूर्ण रुप से स्वस्थ एवं ऊर्जावान बना रहता है। शरीर के आन्तरिक अंग जैसे लीवर, पैन्क्रियाज, आमाश्य एवं आँते सक्रिय बनी रहती हुई अपने कार्यों को भलि भांति करने में सक्ष्म बनी रहती है। निन्द्रा एवं जागरण के नियमित एवं सयंमित होने का सीधा प्रभाव मनुष्य के शरीर में ऊर्जा उत्पत्ति की दर अर्थात मेटाबोलिज्म पर पडता है। इसके फलस्वरुप शरीर की मेटाबोलिज्म सुव्यवस्थित रहती है जो शारीरिक स्वास्थ्य की मूल आवश्यक्ता है। इस प्रकार शरीर को ऊर्जावान एवं स्वस्थ बनाने में आचार रसायन महत्वपूर्ण योगदान देता है।

जप, तप और पवित्रता का पालन करने से शरीर का तंत्रिका तंत्र विशेष रुप से मस्तिष्क व अन्य तंत्रिकाएं स्वस्थ एवं सक्रिय बनी रहती है। चूंकि मस्तिष्क शरीर की समस्त क्रियाओं का संचालनकर्ता है अतः इसके स्वस्थ एवं सक्रिय होने से शरीर की अन्य समस्त क्रियाएं भलि भांति संचालित होती है। मस्तिष्क के स्वस्थ एवं स्वच्छ रहने से सम्पूर्ण शारीरिक क्रियाएँ सुव्यवस्थित एवं नियंत्रित बनती है और इसके फलस्वरुप शारीरिक स्वास्थ्य उन्नत अवस्था में बना रहता है। इसके साथ साथ क्रोध, भय, राग, द्वेष आदि भावों को ग्रहण करने से शरीर में हार्मोन्स की मात्रा असन्तुलित हो जाती है और हार्मोन्स से सम्बन्धित अलग अलग प्रकार के रोग शरीर को ग्रसित कर देते हैं किन्तु आचार रयायन के अन्तर्गत क्रूरता और अहंकार आदि तामसिक वृत्तियों का त्याग करते हुए सदाचार, दया, परोपकार, दान एवं सेवा आदि सात्विक कार्यों में लिप्त रहने से मन में सात्विक भावों की प्रबलता रहती है। इन भावों से युक्त रहने पर शरीर में अन्तस्रावी ग्रन्थियाँ विशेष रुप से सभी ग्रन्थियों को नियंत्रित करने वाली पिट्यूटरी नामक मास्टर ग्लैण्ड के स्राव नियंत्रित एवं सुव्यवस्थित रहते हैं। तात्पर्य यह है कि आचार रसायन का पालन करने से शरीर के सभी अन्तःस्राव सुव्यवस्थित रुप से स्रावित होते हैं जिससे शारीरिक स्वास्थ्य उन्नत अवस्था को बना रहता है।

11.4.2 आचार रसायन का मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव

जिज्ञासु पाठकों, मनुष्य शरीर से भी अधिक महत्वपूर्ण स्थान उसके मन का होता है क्योकि शरीर उन्ही क्रिया कलापों को करता है उनका मूल उद्गम मन से होता है। मन में उत्पन्न विचार ही आगे चल क्रिया और कार्यों का रुप ग्रहण करते हैं। आपको इस विषय का भी ज्ञान होगा कि शरीर की चिकित्सा औषध द्रव्यों से की जा सकती है किन्तु मन की चिकित्सा औषध द्रव्यों से करना संभव नही होता है। वर्तमान काल में शारीरिक रोगों की तुलना में मानसिक रोग दिन प्रतिदिन ज्यादा फैलते जा रहे हैं।

आधुनिक समाज में मानसिक रोगों से ग्रसित रोगियों की संख्या दिन प्रतिदिन बढती जा रही है। अब आपके मन में यह जानने की जिज्ञासा भी उत्पन्न हो गयी होगी कि मानसिक रोगों में आचार रसायन की क्या भूमिका होती है ? आचार रसायन का पालन करने से मानसिक रोग किस प्रकार दूर होते हैं एवं मानसिक स्वास्थ्य पर आचार रसायन क्या प्रभाव रखता है ?

प्रिय विधार्थियों, आचार रसायन का मनुष्य के मानसिक स्वास्थ्य के साथ सीधा सम्बन्ध होता है। वास्तव में मानसिक स्वास्थ्य से अभिप्राय मन की सकारात्मक अवस्था से होता है। मनोवैज्ञानिकों का यह भी कथन है कि सुख और दुख केवल मन की अनुभूति मात्र है। एकसमान घटना दो मनुष्यों के मन पर अलग अलग प्रभाव रखती है। किसी विषय, घटना, वस्तु अथवा व्यक्ति के प्रति सकारात्मक भाव सुख को उत्पन्न करते हैं तो वहीं इसके विपरित किसी विषय, घटना, वस्तु अथवा व्यक्ति के प्रति नकारात्मक भाव दुख पैदा करते है। आचार रसायन जिसके अन्तर्गत अहिंसा, सत्य, आस्तिकता, प्रेम, दया, सहानुभूति एवं सदाचार आदि सद्‌गुणों का समावेश होता है, इनके प्रभाव से मन में सकात्मकता का विकास होता है। मन जीवन की भिन्न भिन्न अच्छी एवं बुरी अवस्थाओं व परिस्थितियों में सकारात्मक अनुभूतियाँ करता हुआ समभाव से जीवनयापन करता है। इस प्रकार की अनुभूति मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने में अत्यन्त महत्वपूर्ण कारक होती है। श्रेष्ठ आचरण करने के परिणाम स्वरुप मानसिक बल प्राप्त होता है। यह मानसिक बल मन को ऊर्जाबान बनाने का कार्य कार्य करता है जिससे मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत अवस्था को प्राप्त होता है।

इस विषय को हम अत्यन्त सामान्य एवं व्यवहारिक रुप में समझ सकते हैं कि मनुष्य के चरित्र में र्दुगुण एवं र्दुव्यसनों के स्थान पर सदाचार एवं परोपकार का समावेश होने पर उसका मन एवं चरित्र सकारात्मकता से युक्त होता है और मन का सकारात्मक भावों से युक्त रहना ही उन्नत मानसिक स्वास्थ्य है। सदाचार एवं परोपकार के प्रभाव से मन में राजसिक एवं तामसिक भाव तनु बनते हैं एवं मन की सात्विक वृत्ति को बल मिलता है। मनुष्य के दयालु, सत्यवादी, मृदुभाषी एवं इन्द्रियों पर संयम रखने वाला होने से मन सदैव सकारात्मक ऊर्जा से परिपूर्ण रहता है। ऐसा मनुष्य उन्नत मानसिक स्वास्थ्य के साथ अपना जीवन यापन करता है।

इस प्रकार यह तथ्य पूर्ण रुप से स्पष्ट होता है कि आचार रसायन का मनुष्य के मानसिक स्वास्थ्य पर बहुत अच्छा प्रभाव पडता है। श्रेष्ठ आचरण एवं अनुकूल व्यवहार करने से मनुष्य का मानसिक स्वास्थ्य के उन्नत अवस्था में एवं शरीर ऊर्जावान व बलवान रहता है।

जिस प्रकार श्रेष्ठ आचरण शरीर एवं मन पर रसायन के समान लाभकारी प्रभाव रखते हुए शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाए रखता है, ठीक इसी प्रकार श्रेष्ठ आचरण का प्रभाव मनुष्य के आध्यात्मिक स्वास्थ्य पर भी पडता है। आचार रसायन के आध्यात्मिक स्वास्थ्य पर पडने वाले प्रभाव को हम इस प्रकार जान एवं समझ सकते हैं –

11.4.3 आचार रसायन का आध्यात्मिक स्वास्थ्य पर प्रभाव –

प्रिय पाठकों, यद्यपि शरीर एवं मन दोनों ही अपने–अपने स्थान पर अपने महत्व को प्रदर्शित करते है किन्तु यदि हम इस विषय का थोडा गहराई से एवं तुलनात्मक रुप से अध्ययन करें तो आत्मा के अभाव में शरीर और मन दोनों ही अस्तित्वहीन हो जाते हैं। अर्थात शरीर और मन के मूल में आत्मा की चेतना का प्रकाश ही कार्य करता है। सरल शब्दों में शरीर और मन दोनों आत्मा की ऊर्जा से ऊर्जावान एवं आत्मा की चेतना से चेतनावान बनते हैं। इस प्रकार शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के साथ साथ आध्यात्मिक स्वास्थ्य के महत्व को दृष्टिगोचर नही किया जा सकता है। यहाँ पर हमें यह समझ लेना चाहिए कि आचार रसायन का पालन मनुष्य के शारीरिक एवं मानसिक स्तर के साथ साथ आध्यात्मिक स्तर को भी गहराई से प्रभावित करता है।

आध्यात्मिक स्वास्थ्य का सम्बन्ध आत्मा की ऊर्जा से होता है। वह अवस्था जिसमें आत्मा अपनी ऊर्जा से परिपूर्ण होता है, आध्यात्मिक स्वास्थ्य की अवस्था कहलाती है जबकि इसके विपरित वह अवस्था जिसमें आत्मा की ऊर्जा क्षीण पड जाती है, आध्यात्मिक रोगावस्था कहलाती है। अब प्रश्न उपस्थित होता है कि आत्मा को ऊर्जा कहाँ से प्राप्त होती है और कैसे आत्मा की ऊर्जा क्षीण हो जाती है ?

जिज्ञासु पाठकों, सदाचार एवं परोपकार आत्मा को ऊर्जा प्रदान करने के दो प्रमुख साधन है जिनका पालन करने से आत्मा को ऊर्जा प्राप्त होती है एवं आत्मा का आत्मबल उच्च अवस्था में बना रहता है। जबकि झूठ, छल, चोरी एवं स्वार्थ सर्कीणता की तुच्छ भावनाएँ आत्मा की ऊर्जा को क्षीण बना देती है। आचार रसायन के अन्तर्गत मनुष्य सेवा, स्वाध्याय एवं सत्संग जैसे सदाचार एवं परोपकाररुपी कर्मो के साथ अपने जीवन को जोड लेता है। वह धर्मशास्त्रों का अध्ययन करता है जिसके फलस्वरुप आत्मा को आध्यात्मिक बल की प्राप्ति होती है। यह आध्यात्मिक बल मनुष्य की आत्मा को ऊर्जावान, स्वस्थ एवं सक्रिय बनाए रखता है। इस आध्यात्मिक ऊर्जा से युक्त होने पर वह मनुष्य उन्नत आध्यात्मिक ऊर्जा के साथ अपना जीवन यापन करने में सक्ष्म होता है। आचार रसायन का पालन करने से मनुष्य को स्वयं अर्थात अपनी आत्मा का ज्ञान होता है। वह आत्मा के निकट जाने में सक्ष्म होता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि आचार रसायन का पालन करने से मनुष्य का शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास होता है। इसके साथ साथ श्रेष्ठ आचरण का प्रभाव मनुष्य के सामाजिक स्वास्थ्य पर भी पडता है और आचार रसायन के प्रभाव से मनुष्य का सामाजिक स्वास्थ्य भी उन्नत अवस्था को प्राप्त होता है। आचार रसायन का मनुष्य के सामाजिक स्वास्थ्य पर प्रभाव का अध्ययन इस प्रकार किया जा सकता है

11.4.4 आचार रसायन का सामाजिक स्वास्थ्य पर प्रभाव –प्रिय पाठकों, मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज से ही मनुष्य के सामाजिक स्वास्थ्य का निमार्ण होता है। मनुष्य के सामाजिक स्वास्थ्य को उसके आचार विचार एवं व्यवहार सीधे साधे प्रभावित करते हैं। समाज में रहकर मनुष्य जैसा व्यवहार एवं आचरण करता है वैसा ही उसका सामाजिक स्वास्थ्य बनता है। श्रेष्ठ आचरण के प्रभाव से मनुष्य का सामाजिक स्वास्थ्य उन्नत एवं गन्दा आचरण करने से मनुष्य का सामाजिक स्वास्थ्य विकृत एवं कमजोर बनता है।

जिज्ञासु पाठकों, जैसा कि इकाई के पूर्व में स्पष्ट किया है कि आचार रसायन के अन्तर्गत सत्य बोलना, क्रोध नही करना, अभिमान एवं अहंकार से दूर रहना, अहिंसा पूर्वक जीवनयापन करना, श्रेष्ठ महापुरुषों की सेवा, अन्य प्राणियों पर दया की भावना रखना, सेवा व स्वाध्याय करने जैसे श्रेष्ठ एवं अनुकरणीय आचरणों का उल्लेख आता है। इस प्रकार का आचरण करने से मनुष्य को समाज में प्रतिष्ठा एवं श्रेष्ठ स्थान प्राप्त होता है एवं उसकी सामाजिक स्थिति उन्नत होती है जिसका सीधा प्रभाव मनुष्य के सामाजिक स्वास्थ्य पर पडता है और इसके फलस्वरुप मनुष्य का सामाजिक स्वास्थ्य श्रेष्ठ बनता है।

इस प्रकार उपरोक्त अध्ययन स्पष्ट करता है कि आचार रसायन के प्रभाव से मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य उन्नत बनता है जो आचार रसायन के महत्व को प्रदर्शित करता है। आचार रसायन के महत्व को जानने के उपरान्त अब आपके मन में आचार रसायन के लाभों को जानने की जिज्ञासा भी बढ गयी होगी। अतः अब आचार रसायन के सामान्य लाभों पर विचार करते हैं –

11.5 आचार रसायन के लाभ –

प्रिय पाठकों, जैसा कि पूर्व में समझाया जा चुका है कि श्रेष्ठ आचरण का पालन मनुष्य के शरीर, मन एवं आत्मा पर एक रसायन के समान लाभकारी प्रभाव रखता है जिससे मनुष्य का सर्वांगीण विकास होता है तथा मनुष्य पूर्ण रुप से स्वस्थ, शक्तिशाली, ऊर्जावान एवं आरोग्य से परिपूर्ण बनता है। मानव जीवन के प्रथम सुख के रुप में

निरोगी काया की कल्पना की जाती है। आचार रसायन का पालन मनुष्य के शरीर को स्वस्थ बनाते हुए उसे जीवन के प्रथम सुख की अनुभूति प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका वहन करता है। इसके साथ साथ आचार रसायन से निम्न लिखित लाभ प्राप्त होते हैं –

(1) वर्तमान काल में तेजी से बढते जा रहे शारीरिक एवं मानसिक रोगों की श्रेष्ठ एवं दुष्प्रभावरहित चिकित्सा आचार रसायन का पालन है। मनोशारीरिक रोगों की चिकित्सा में आचार रसायन का सेवन विशेष लाभकारी प्रभाव रखता है। आचार रसायन की महत्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि इसका किसी भी प्रकार कोई दुष्प्रभाव शरीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक स्तर पर नही पडता है।

(2) आचार रसायन के पालन से मनुष्य का जीवन सभी प्रकार के र्दुगुणों एवं र्दुव्यसनों से मुक्त बनता है एवं उसके अन्दर श्रेष्ठ गुणों का विस्तार होता है। वह निन्दित कर्मों का त्याग करते हुए अपने जीवन को सत्कार्यों के मार्ग पर लेकर जाता है। इसके फलस्वरुप मनुष्य का इह लोक एवं परलोक दोनों सुधरते हैं।

(3) आचार रसायन के पालन से मनुष्य अपने मन की क्रोध, अहंकार, झूठ, चोरी व हिंसा आदि नकारात्मक वृत्तियों पर विजय प्राप्त करने में सक्ष्म बनता है। नकारात्मक वृत्तियों का त्याग करने एवं सकारात्मक वृत्तियों को ग्रहण करने में आचार रसायन की प्रमुख भूमिका होती है।

(4) आचार रसायन के पालन से मनुष्य के व्यक्तित्व में अहिंसा, परोपकार, सेवा एवं स्वाध्याय आदि सात्विक एवं श्रेष्ठ गुणों का विकास होता है। श्रेष्ठ गुणों को धारण करने से अच्छे चरित्र एवं विशाल व्यक्तित्व का निमार्ण होता है।

(5) आचार रसायन के पालन से मनुष्य अपने मन, बुद्धि एवं इन्द्रियों पर सयंम करने में सक्ष्म बनता है। वह सात्विक वृत्ति को धारण करते हुए धर्मयुक्त आचरण करता है।

(6) आचार रसायन का पालन करने से शरीर में ऊर्जा एवं मन में स्थिरता व शान्ति का विकास होता है। इससे शरीर ऊर्जावान एवं रोगों से मुक्त रहता है तथा मनुष्य अर्न्तमुखी होकर जीवन के मूल लक्ष्य को ओर अग्रसर होता है।

(7) आचार रसायन के पालन से मनुष्य सुख दुख आदि से विचलित नही होता है अपितु वह जीवन की सम एवं विषम परिस्थितयों को एक सम भाव से ग्रहण करने में सक्ष्म बनता है।

(8) आचार रसायन के पालन से मनुष्य के सोच विचार सकारात्मक रहते हैं तथा जीवन की विभिन्न अवस्थाओं, विशेष रुप से वृद्धावस्था में भी वह सकारात्मक व्यवहार करने में सक्षम बना रहता है।

इस प्रकार आचार रसायन का पालन करने से मनुष्य को सभी दिशाओं बहुमुखी लाभ प्राप्त होते हैं। आचार रसायन पालन से मनुष्य का शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक विकास होते हुए वह आर्दश व्यक्तित्व की स्थापना करता है।

अभ्यास हेतु प्रश्न –

1– **सत्य / असत्य**

(क) सदाचार एवं सद्वृत्त के अभाव में औषधि एवं आहार का सेवन भी निष्प्रभावी एवं निष्फल रहता है।

(ख) आयुर्वेद शास्त्र एवं एलोपैथी चिकित्सा में प्रयोग होने वाले रासायन एक समान ही होते हैं।

(ग) मनुष्य के शरीर से अधिक महत्वपूर्ण स्थान मन का होता है।

(घ) आयुर्वेद शास्त्र में रसायनों के पाँच वर्गों का उल्लेख किया गया है।

(ड) सदाचार एवं सद्वृत्त पालन द्वारा स्वास्थ्य परिरक्षण एवं रोगों का परिशमन करना आचार रयायन कहलाता है।

2– रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

(क) सद्वृत्त के करणीय कर्मों का मनुष्य के स्वास्थ्य पर ––––– प्रभाव पडता है।

(ख) ——————— मनोशारीरिक रोगों की उपयुक्त एवं श्रेष्ठ चिकित्सा हो सकती है।
(ग) ऐसा श्रेष्ठ आचरण जो मनुष्य पर रसायन के समान लाभकारी प्रभाव रखता है, ——————— कहलाता है।
(घ) धर्मशास्त्रों का अध्ययन करने से मनुष्य को ——————— बल की प्राप्ति होती है।
(ड) मनुष्य एक ——————— प्राणी है।

3– **बहुविकल्पीय प्रश्न –**

(क) रसायन का प्रभाव होता है –

(a) दीर्घायु (b) मेधा–बुद्धि
(c) बलवर्द्धक (d) सभी

(ख) मन की सकारात्मक ऊर्जा का साधन नही है –

(a) सत्यवादिता (b) क्रोध
(c) मृदुभाषिता (d) इन्द्रिय संयम

(ग) आत्मा को ऊर्जा प्रदान करने का प्रमुख साधन है –

(a) सदाचार (b) परोपकार
(c) ईश्वर प्रणिधान (d) सभी

(घ) मानव शरीर में सभी ग्रन्थियों को नियंत्रित करने वाली मास्टर ग्लैण्ड है–

(a) थायराइड (b) पिट्यूटरी
(c) पीनियल (d) पैन्क्रियाज

(ड) किस वृत्ति को धारण करते हुए मनुष्य धर्मयुक्त आचरण करता है

(a) सात्विक (b) राजसिक
(c) तामसिक (d) अहंकारिक

11.6 सारांश–

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत इकाई का प्रारम्भ आचार रसायन के स्वरुप को स्पष्ट करते हुए किया गया है। इकाई के प्रारम्भ में आचार रसायन के शाब्दिक अर्थ पर विचार करते हुए समझाया गया है कि ऐसा श्रेष्ठ आचरण जो मनुष्य पर रसायन के समान विशेष लाभकारी प्रभाव रखता है, आचार रसायन कहलाता है। यहाँ पर महर्षि चरक के अनुसार रसायन के गुणों को स्पष्ट करते हुए आयुर्वेद शास्त्र में रसायनों के तीन प्रमुख वर्गों– औषध रसायन, आहार रसायन एवं आचार रसायन पर प्रकाश डाला गया है। यहाँ पर स्पष्ट किया गया है कि अन तीनों वर्गों में आचार रसायन का अपना विशिष्ट स्थान है तथा आचार रसायन के अभाव में औषध रसायन एवं आहार रसायन का प्रयोग भी प्रभावहीन रहता है।यहाँ पर आचार रसायन को परिभाषित करते हुए स्पष्ट किया गया है कि सदाचार एवं सद्वृत्त पालन करने का शरीर एवं मन पर रसायनवत प्रभाव पडता है अतः सदाचार एवं सद्वृत्त पालन को आचार रसायन की संज्ञा दी जाती है।

इस प्रकार इकाई में आचार रसायन के स्वरुप को स्पष्ट करने के उपरान्त इसके महत्व पर प्रकाश डालते हुए समझाया गया है कि आचार रसायन मनुष्य के स्वास्थ्य पर अत्यन्त सकारात्मक प्रभाव रखता है। आचार रसायन पालन से मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक अर्थात चारों पक्ष मजबूत बनते हैं अर्थात मनुष्य को समग्र स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। यहाँ पर आचार रसायन के क्रमशः तत्पश्चात क्रमशः शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य पर पडने वाले प्रभाव को बिंदूवत समझाया गया है। आचार रसायन के महत्व के उपरान्त आचार रसायन के सामान्य लाभों को स्पष्ट करते हुए इकाई को पूर्ण किया गया है।

11.7 पारिभाषिक शब्दावली –

ह्रास – कमजोर, क्षीण पडना
संर्वधन –वृद्धि, विकास

तनु – कमजोर
दृष्टिगोचर – ध्यान न देना
निरोगी काया –स्वस्थ शरीर
विचलित – परेशान

11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क.	सत्य	क. सकारात्मक	क.	d
ख.	असत्य	ख. आचार रसायन	ख.	b
ग.	सत्य	ग. आचार रसायन	ग.	d
घ.	असत्य	घ. आध्यात्मिक बल	घ.	b
ड.	सत्य	ड. सामाजिक	ड.	a

11.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 प्रो0 रामहर्ष सिंह – स्वस्थवृत्त विज्ञान – चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली। (पुनःमुद्रित संस्करण 2014)
2कल्याण आरोग्य अंक (जनवरी एवं फरवरी 2001 ई0) – गीता प्रेस, गोरखपुर।
2आचार्य बालकृष्ण – आयुर्वेद सिद्धान्त रहस्य, दिव्य प्रकाशन, दिव्य योग मन्दिर ट्रस्ट, हरिद्वार। (संस्करण फरवरी 2007)।
3ब्रह्मवर्चस – आयुर्वेद का दर्शन, किया शारीर एवं स्वस्थ वृत्त, श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट, शांतिकुँज, हरिद्वार। (छटा संस्करण 2010)

11.10 निबन्धात्मक प्रश्न–

1. आचार रसायन के स्वरुप को सविस्तार समझाइये।
2. आचार रसायन के अर्थ को समझाते हुए इसके महत्व पर प्रकाश डालिए।
3. आचार रसायन पर विस्तृत निबन्ध लिखिए।

इकाई 12 आहार की परिभाषा, आहार का महत्व एवं आवष्यक्ता।

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 आहार का अर्थ
12.4 आहार क्यों लिया जाता है?
12.5 आहार की परिभाषायें
12.6 आहार का महत्व
12.7 आहार की आवष्यक्ता
12.8 सारांष
12.9 शब्दावली
12.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
12.12 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

आहार प्रत्येक प्राणी का जीवन है तथा आहार का सीधा सम्बन्ध उसके शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य से होता है। प्रत्येक भोजन में भिन्न–भिन्न पोषक तत्व उपस्थित होते हैं तथा प्रत्येक पोषक तत्व शरीर में अलग–अलग रूप से कार्य करता है। यदि प्रत्येक व्यक्ति कुछ पोशक तत्वों को कम या इसके विपरीत कुछ पोशक तत्वों को अधिक परिमाण में लेने लगे तो भी शरीर के ऊपर उसका विपरीत प्रभाव दिखाई देने लगता है। अतः उपयुक्त पोषक तत्वों को उचित परिमाण भोजन द्वारा ग्रहण करना पूर्ण रूप से स्वस्थ रहने के लिए आवश्यक है।

संसार का प्रत्येक प्राणी, पेड़–पौधें अथवा निर्जीव वस्तुऐं जैसे इंजन कार किसी न किसी रूप में भोजन ग्रहण करते हैं, जिस प्रकार इंजन को चलाने के लिए ईंधन तथा कार को चलाने के लिए पेट्रोल की आवश्यकता होती है, ठीक उसी प्रकार मनुष्य को अपने शारीरिक एवं मानसिक कार्य करने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। और यह ऊर्जा मनुष्य को आहार से प्राप्त होती है। भोजन के महत्व को एक कहावत द्वारा समझा जा सकता है–

''भूखे भजन न होये गोपाला, धरी रहेंगी कंठी माला''

अर्थात बिना भोजन के आप भगवान का नाम तक नहीं ले सकते। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि छोटे से छोटा काम करने के लिए हमें भोजन पर निर्भर रहना पड़ता है क्योंकि यही भोजन हमें कार्य करने की ऊर्जा प्रदान करता है।

आज देश तथा विदेश में अनेक संस्थाएँ हैं जो संसार में भोजन के महत्व को जागरूकता प्रदान कर नये–नये शोध कर निरन्तर कार्य कर रही हैं–

(i) Food and Agricultural Organisation (FAO)

(ii) World Health Organisation (WHO)

(iii) United Nations International Children Emergency Fund (UNICEF)

मानव आहार के दो मुख्य स्रोत हैं। जन्तु आहार व वनस्पति आहार। इसीलिए मानव आहार को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया है– जन्तु आहार में माँस मछली अण्डा, दूध तथा वनस्पति आहार में अनाज दालें फल शाक मसाले

भारतीयों का अधिकतर आहार वनस्पतियुक्त है। जो व्यक्ति शाक–भाजीयुक्त आहार ग्रहण करते हैं, उन्हें शाकाहारी कहा जाता है। दूध का स्रोत प्राणी है लेकिन इसे शाकाहारी भोजन में सम्मलित किया गया है।

कोई भी पदार्थ जब अन्नमार्ग में ग्रहण किये जाने पर जीवनी शक्ति उत्पन्न करे, धातुओं का पोषण करें, उनकी रक्षा तथा क्षतिपूर्ति करे, जीवन की प्रक्रिया को संयमित करे तथा शरीर के महत्वपूर्ण अंशाशों की उत्पत्ति में सहायक हो, उसे आहार कहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के लिए देश, काल, समय आदि के आधार पर आहार विधि तथा मात्रा आदि का निर्णय करना चाहिए। चरक संहिता में मानव शरीर एवं व्याधि दोनों को आहारसम्भव माना गया है।

''आहार सम्भवं वस्तु रोगाश्चहारिसम्भवाः''। च.सं. (28/45)

उपयुक्त आहार ही शरीर के समुचित विकास तथा सुख एवं स्वास्थ्य का हेतु है। आहार द्वारा शरीर–पोषण की प्रक्रिया अग्नि पर निर्भर है। आहार का पाचन, अवशोषण तथा चयापचय सम्बन्धी सम्पूर्ण क्रिया अग्नि व्यापार के अन्तर्गत आती है।

12.2 उद्देश्य

प्रिय पाठको, प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करने के बाद आप–

- आहार क्या है? इस तथ्य का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- आहार की विभिन्न परिभाषाओं को स्पष्ट कर सकेंगे।
- आहार क्यों लिया जाता है, इसका अध्ययन कर सकेंगे।
- आहार की उपयोगिता का वर्णन कर सकेंगे।
- हमें अपने दैनिक जीवन में आहार संबंधी क्या–क्या सावधानियाँ रखनी चाहिये, इसका अध्ययन कर सकेंगे।

12.3 आहार का अर्थ

आहार का अर्थ है भीतर लेना। मुँह से खाना, पीना, नाक से श्वांस लेना, त्वचा से वायु का– धूप का ग्रहण करना, आदि को भी आहार के अन्तर्गत ही समझना चाहिए। जन्म के पहले माँ के रक्त द्वारा बालक को पोषण होता है, जन्म के बाद माँ का स्तन–पान ही उसका आहार है।

प्रत्येक व्यक्ति को स्वस्थ रहने के लिए यह आवश्यक है कि वह सन्तुलित आहार लें। आहार क्या है इसको

1. ''आहार विज्ञान कला एवं विज्ञान का वह समन्वयात्मक रूप है जिसके द्वारा व्यक्ति विशेष या व्यक्तियों के समूह को पोषण तथा व्यवस्था के सिद्धान्तों के अनुसार विभिन्न आर्थिक तथा शारीरिक स्थितियों के अनुरूप दिया जाता है।

   आहार को कला व विज्ञान इसलिए कहा जाता है कि आहार विज्ञान न केवल यह बताता है कि कौन–कौन से पोषक तत्व किस प्रकार लेने चाहिए या उसके क्या परिणाम हो सकते हैं। बल्कि यह भी बताता है कि उचित स्वास्थ्य के लिए कौन–कौन से पोषक तत्व कितनी मात्रा में लिये जायें।
2. आहार को व्यक्ति के भोजन की खुराक भी कहा जाता है अर्थात् ''व्यक्ति भूख लगने पर एक बार में जितना ग्रहण करता है, वह भोजन की मात्रा उस व्यक्ति का आहार (DIET) कहलाती है।
3. आहार वह ठोस अथवा तरल पदार्थ है जो जीवित रहने, स्वास्थ्य को बनाये रखने, सामाजिक एवं पारिवारिक सम्बन्धों की एकता हेतु संवेगात्मक तृप्ति, सुरक्षा, प्रेम आदि हेतु आवश्यक होता है। व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक और सामाजिक क्षमता के संतुलन के लिए आहार अत्यन्त आवश्यक है।

उपनिषदों में कहा गया है कि

आहार शुद्धौ, सत्व शुद्धिः सत्व शुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः

अर्थात् आहार शुद्ध होने से अंतःकरण शुद्ध होता है और अंतःकरण शुद्ध होने पर विवेक बुद्धि ठीक काम करती है।

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने लिखा है कि ''आहार का जीवन की गतिविधियों से गहरा संबंध है। जिस व्यक्ति का जैसा भोजन होगा उसका आचरण भी तदनुकूल होगा।''

आहार शब्द का प्रयोजन या नाम सुनते ही हमारे सामने अनगिनत तस्वीरें उभरकर आती हैं। आम तौर पर आहार का सम्बन्ध पारिवारिक और अन्य सामूहिक भोजन से जुड़ा है। इस प्रकार आहार जीवन के प्रत्येक पहलू से घनिष्ठ रूप से गुँथा है। आहार ही जीवनदाता है।

शरीर को स्वस्थ रखने के लिये उचित भोजन का उचित मात्रा में होना बहुत आवश्यक है अर्थात् अच्छे स्वास्थ्य का सीधा सम्बन्ध हमारे खान–पान से जुड़ा है। लेकिन यह जानना आवश्यक है कि स्वस्थ रहने के लिये क्या और कितनी मात्रा में खाना चाहिए?

भोजन क्या है? अगर इस तथ्य पर ध्यान दिया जाय तो भोजन शब्द का संबंध शरीर को पौष्टिकता प्रदान करने वाले पदार्थ में है। भोजन में वे सभी ठोस, अर्द्ध तरल और तरल पदार्थ शामिल हैं जो शरीर को पौष्टिकता प्रदान करते हैं। भोजन हमारे शरीर की मूलभूत आवश्यकता है।

भोजन में कुछ ऐसे रासायनिक पदार्थ होते हैं जो हमारे शरीर के लिए महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। भोजन से मिलने वाले इन रासायनिक पदार्थों को पोषक तत्व कहते हैं।यदि ये पोषक तत्व हमारे भोजन में उचित मात्रा में विद्यमान नहीं हो तो इसका परिणाम अस्वस्थता या मृत्यु तक भी हो सकती है।

भोजन में पोषक तत्वों के अलावा, कुछ अन्य रासायनिक पदार्थ होते हैं, जो कि अपोषक तत्व कहते हैं। जैसे कि भोजन को उसकी विशेष गंध देने वाले पदार्थ, भोजन में पाए जाने वाले प्राकृतिक रंग इत्यादि। इस प्रकार भोजन पोषक तत्वों और अपोषक तत्वों का जटिल मिश्रण है।

12.4 आहार अथवा भोजन क्यों लिया जाता है?

सर्वप्रथम तो स्वाभाविक रूप से जब भूख लगती है, उसकी निवृत्ति के लिए और शरीर का पोषण करने तथा शक्ति प्राप्त के लिए आहार लिया जाता है। शारीरिक स्वास्थ्य के अलावा मानसिक स्वास्थ्य भी आहार पर निर्भर है। शारीरिक स्वास्थ्य का मूल आधार है– संतुलित भोजन। शारीरिक क्रिया संचालन के लिए जो तत्व अपेक्षित है उन सबका हमारे भोजन में होना आवश्यक है और यही संतुलित भोजन है। प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, खनिज, विटामिन, क्षार तथा लौह आदि उचित मात्रा में लेने से शरीर स्वस्थ और क्रिया करने में सक्षम रहता है। उचित मात्रा में जल सेवन भी अति आवश्यक है।

12 5 आहार की परिभाषा–

''शब्द स्तोम'' ग्रन्थ के अनुसार–

देहधारी प्रतिक्षण अपने परिश्रम से शारीरिक उपादानों का ह्रास करता है और उसकी पूर्ति के लिए जिस द्रव्य की आवश्यकता पड़ती है उसी का नाम ''आहार'' है।

हैरी बेंजामिन के अनुसार–

आहार उन उपादानों को पूरा करता है जो शरीर की वृद्धि, निर्माण तथा शारीरिक अवयवों के उपयुक्त संचालन के लिए आवश्यक हैं। यह सम्पूर्ण मानव शरीर के कार्यों को साम्यावस्था में रखता है जिससे शरीर रूपी यंत्र अपनी शक्तिपर्यन्त कार्य करता है। अंग्रेजी में इसे 'फूड' कहते हैं।

आचार्य चरक के अनुसार–

द्रव्य (आहार द्रव्य) पंचभौतिक हैं। पृथ्वी तल पर सूर्य के ताप तथा जलवायु की सहायता से प्रकृति के उत्पन्न किये हुए शरीरोपयोगी द्रव्य ही आहार हैं।

आयुर्वेद के प्रणेता भगवान धन्वन्तरी के अनुसार–

''प्राणियों के बल, वीर्य और ओज का मूल आहार है''– वह छः रसों के आधीन है और रस पुनः द्रव्यों के आधीन होते हैं; दोषों का क्षय, दोषों की वृद्धि तथा दोषों की समता, द्रव्यों के रस–गुण–विपाक और वीर्य के कारण हुआ करती है। ब्रह्मादि लोक की भी

स्थिति, उत्पत्ति और विनाश का कारण आहार ही है। आहार से ही शरीर की वृद्धि, बल, आरोग्य, वीर्य और इन्द्रियों की प्रसन्नता उत्पन्न होती है और आहार ही की विषमता से रोग उत्पन्न हुआ करते हैं। जिसमें भोज्य, पेय, लेध्य और भक्ष्य ऐसे चार प्रकार हैं; जो नाना द्रव्यों से बने हुए हैं, जिसमें खाद्य के नाना प्रकार होते हैं और जिनके सेवन से शरीर में बहुविध शक्ति उत्पन्न होती है।

महर्षि सुश्रुत के अनुसार– समस्त जीव मात्र का मूल आहार है।

भगवान आत्रेय के अनुसार– ''अन्नं वै प्राणिनां प्राणाः।''

इष्ट वर्ण गन्धरसस्पर्शयुक्त विधि विहित अन्न पान को प्राणधारियों का 'प्राण' कहा है। क्योंकि यह प्रत्यक्ष है कि उक्त गुण सम्पन्न ईंधन (भोजन) से ही अन्तराग्नि–कायाग्नि की स्थिति है। उक्त गुण सम्पन्न ईंधन (भोजन) से ही हमारी इन्द्रियाँ प्रसन्न रहती हैं। शरीर धातु पुष्ट होता है, बल बढ़ता है और सत्व उर्जित होता है।

बाइबिल कहती है–

''और खुदा ने कहा, देखो मैंने हर एक बीजधारी वनस्पति को, जो सारी धरती पर व्याप्त है और हर एक पेड़ को जिसमें बीज उपजाने वाला फल है, तुम्हें दिया वही तुम्हारी खुराक होगी।

उपनिषद् के अनुसार–

अन्नादध्मेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।

अन्नेव जातानि जीवन्ति। अन्नं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। (तैत्तिरीयोपनिषद 3/2)

अन्न से ही सभी प्राणी जन्म लेते हैं। अन्न से ही सभी जीते हैं और अन्त में अन्न में ही समा जाते हैं।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने– अश्नतः और आहार ये दो शब्द कहे हैं। आहार वह वस्तु है जिसे ग्रहण करने से मन–प्राण और शरीर चल पाते हैं।

12. 6 आहार का महत्व–

''मनुष्य अपनी थाली पर ही बनता या बिगड़ता है'' यह कहावत सर्वत्र प्रसिद्ध है।

''अन्नो वै प्राणिनां प्राणः''

कोई भी प्राणी आहार के बिना जीवित नहीं रह सकता।

1. रोगों का मूल कारण कुत्सित आहार–यदि मनुष्य के प्रत्येक रोग के मूल कारण को देखा जाए तो चलेगा कि मानव का कुत्सित भ्रमपूर्ण भोजन (आहार) ही उसका उत्पादक है। जो पोषक होता है वही अयथावत प्रयोग से दूषण का कार्य करता है। शरीर जिन–जिन उपादानों को मांगता है यदि उसे उपयुक्त मात्रा में उपयुक्त समय पर न दिया जाय तो वह ठीक–ठीक कार्य न कर सकेगा। और पोषण के अभाव में वह दुर्बल तथा नाना तरह की आधि–व्याधि से परिपूर्ण हो जायेगा। व्याधि शरीर के लिए काष्ठगत घुन के समान है जो अन्दर उसे निस्सार बना देते हैं, निरूपयोगी कर देते हैं। मानव शरीर एक ऐसा कारखाना है जो स्वयमेव सुव्यवस्थित हो जाता है, स्वयमेव नियमबद्धता को प्राप्त करता है और स्वयमेव सुधार करता है, स्वयमेव विकसित होता है। जो शक्ति उसे सृजती है वही उसकी रक्षा भी करती है। आवश्यकता है केवल उसे उपयुक्त ईंधन (आहार) पहुँचाते रहने की।

2. मानव वंश की उत्पत्ति में आहार का महत्व– पुरातन समय में भयंकर से भयंकर कष्ट उठाकर भी विभिन्न देशों में पर्यटन, कृषि, पशुपालन, वाणिज्य आदि अपने तथा अपने आश्रितों के भूख शमन करने के लिए किये जाते थे। आधुनिक युग में भी इस पेट के लिए इसी प्रकार के अनेक स्थानान्तर करने पड़े हैं और पड़ रहे हैं।

''वाजो नः सप्त प्रदिश शस्त्रो वो परावतः।

वाजो नो विजुर्देवैर्धनसाताविहावतु।।'' –यजुर्वेद 18.32

अर्थात् हमारे अन्न ज्ञान ऐश्वर्य पराक्रम आदि चारों लोकों और सातों दिशाओं में अभिवृद्धि को प्राप्त हों। समस्त दिव्य शक्तियाँ हमारे धन–धान्य की रक्षा करें।

आहार मानव के विकास की आधारशिला है। संसार में विभिन्न प्रकार की सभ्यताओं का विकास उत्तम आहार की उपलब्धि हेतु एक स्थान से दूसरे स्थान के भ्रमण एवं सर्वेक्षण के परिणामस्वरूप हुआ है। यहाँ तक कि प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक में युद्ध और महायुद्ध भी अधिक सम्पन्नता तथा उत्तम आहार की प्राप्ति हेतु ही हुए हैं। मानव को इस उपलब्धि के लिए प्रकृति से भी निरंतर संघर्ष करना पड़ा। क्योंकि अनियंत्रित प्राकृतिक नियम उसकी भौतिक आकांक्षाओं के पूरा होने में बाधा उपस्थित करते हैं।

आयुर्वेदीय साहित्य में शरीर एवं व्याधि दोनों को आहार सम्भव माना गया है–

''आहारसम्भवं वस्तु रोगाश्याहारसम्भवाः'' –च.सू.28/45

आर्यशास्त्र में अन्यान्य यज्ञों की तरह भोजन व्यापार को भी एक नित्यया कहा गया है। इस नित्ययज्ञ के यज्ञेश्वर भगवान वैश्वानर कहे गए हैं, यथा–

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रिताः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्।। –गीता 15/14

श्री भगवान वैश्वानर (जठराग्नि) रूप से प्रत्येक प्राणी में बैठकर प्राण और अपान वायु की सहकारिता से चर्व्य, चोष्य, लेह्य तथा पेय– इन चार प्रकार के भोज्य अन्नों को भक्षण करते हैं। अन्ततः आर्य भोजन से केवल उदरपूर्ति ही नहीं होती। अपितु श्री भगवान की पूजा भी होती है।

3. मानसिक स्वास्थ्य अन्न पर निर्भर–

छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है–

''आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।''

अर्थात् आहार के पाचन में तीन भागों में विभक्त हो जाता है– स्थूल असार अंश से मल बनता है, मध्यम अंश से मांस बनता है और सूक्ष्म अंश से मन की पुष्टि होती है। मन अन्नमय ही है। आहारशुद्धि से सत्त्वशुद्धि (मनशुद्धि), सत्त्वशुद्धि से ध्रुवा स्मृति और स्मृतिशुद्धि से सभी ग्रन्थियों का मोचन होता है। अतः सिद्ध हुआ कि अन्न से ही मन बनता है। भारतीय दर्शन में ठीक ही कहा गया है– **''अन्नो वै मनः''।**

इस प्रकार हम देखते हैं कि शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य सभी अन्न पर निर्भर करते हैं। यह एक सर्वाधिक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण तत्त्व है जीवन के लिए।

12. 7 आहार की आवश्यकता

शरीर की सुरक्षा, उसे गतिशील रखने और उसे पोषण प्रदान करने के लिए आहार की आवश्यकता होती है। आहार शरीर के समुचित विकास, स्वास्थ्य एवं सुख का हेतु है। अतः आहार की समुचित संतुलित मात्रा ही लाभदायक है।

आहार से शरीर का पोषण होता है तथा बल, वर्ण, आयु, ओजस और तेजस की प्राप्ति होती है। **आचार्य श्रीराम शर्मा** कहते हैं–

''आहार का मुख्य उद्देश्य शरीर की क्षीणता अथवा घिसाई की पूर्ति करना और उसकी वृद्धि करना भी है। आहार से हमारे शरीर में ताप की उत्पत्ति भी होती है जो हमारे जीवन का लक्षण है।''

'शरीर माद्यं खलु धर्म साधनम्'

धर्म का प्रथम साधन है, शरीर का निरोग रहना। चरक संहिता में कहा गया है कि धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष– इस पुरूषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति का मूल कारण शरीर का आरोग्य रहना है। शास्त्रकारों ने स्वास्थ्य की रक्षा के प्रयोजन को निर्दिष्ट करते हुए कहा है–

''सर्वमन्यत् परित्यज्य शरीरमनुपालयेत्।
तदभावे हि भावनां सर्वाभावः शरीरिणाम्।।''

अर्थात् अन्यान्य कामों को छोड़कर सर्वप्रथम शरीर की रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि शरीर का अभाव होने पर सब कुछ का अभाव हो जाता है।

इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि आहार का प्रमुख कार्य जीवनी शक्ति प्रदान करना, शरीर का विकास, पोषण तथा उसकी रक्षा करना है। शरीर को बल, ऊर्जा आदि भोजन द्वारा प्राप्त होता है। भोजन मन का निर्माण भी करता है तभी तो कहा गया है

''जैसा खाये अन्न वैसा बने मन''

***युक्तिव्यपाश्रय चिकित्सा* में औषध और आहार की ही योजना की जाती है। अन्न को प्राणियों का प्राण कहा गया है–**

''प्राणाः प्राणभृतामन्नमन्नम्''

आहार से बल, वर्ण तथा ओजस् की प्राप्ति होती है। इस प्रकार आहार स्वस्थ तथा रोगी दोनों के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण है। बिना समुचित आहार के स्वस्थ व्यक्ति स्वस्थ नहीं रह सकता और बिना उचित पथ्य–व्यवस्था के रोगी में चिकित्सा कर्म सफल नहीं हो सकता।

1. पोषण–शरीर का पोषण अन्न ग्रहण करने से होता है। खाद्य वस्तुओं को ग्रहण करने के बाद शरीर में पाचन तन्त्र द्वारा की गयी विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा उनके पोषक अंश शरीर सात्म्य पदार्थ में परिवर्तित किये जाते हैं, जिससे रस, रक्त एवं मांस आदि शारीरिक तत्वों का वर्धन होता है। शरीर सात्म्य पदार्थों को शरीर में जमा किया जाता है। और अन्नादि के जो त्याज्य पदार्थ होते हैं, वे मलरूप में शरीर के बाहर फेंक दिये जाते हैं; जैसे– मल, मूत्र, पसीना, उच्छ्वास आदि। इससे शरीर की क्रिया सुचारू रूप से चलती है।

2. स्वास्थ्य–स्वास्थ्य के लिए उपयुक्त आहार आवश्यक है। शरीर और आहार – ये दोनों पांचभौतिक है। आहार के माध्यम से ही शरीर के अवयवों की सम्पुष्टि होती है। पथ्याहार ही शारीरिक विकास का कारण बनता है, जबकि अपथ्याहार व्याधि का कारण बनता है। दोष धातु–मल एवं स्त्रोतस् ही शरीर के मूल हैं। पथ्य विशेष रूप से शरीर के दोष एवं धातुओं को सम्पुष्ट करता हुआ उन्हें सम बनाये रखता है। अपथ्य की इसकी विपरीत स्थिति होती है।

3. शरीर का ईंधन– प्राणधारी के शरीर के अन्दर संहार (केटाबोलिक प्रोसेस) और सृजन (एनाबोलिक प्रोसेस) चलती रहती है। इन्हें सम्मिलित रूप में मेटाबोलिक प्रोसेस कहा जाता है। इस व्यवस्था को अक्षुण्ण रखने के लिए हम सदा उपयुक्त ईंधन (आहार) देते रहते हैं। जब ईंधन की कमी होती है तो उसकी प्रतीति हमें निम्न तीन संवेदनाओं द्वारा होती है– प्यास, क्षुधा और श्वांस। हमारा आहार भी मुख्यतः उक्त तीन प्रकार के होते हैं। मेटाबोलिक प्रोसेस को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए तीन प्रकार के वस्तुओं की आवश्यकता होती है। यथा कुछ ठोस पदार्थों की, कुछ द्रव पदार्थों की और कुछ वायवीय पदार्थों की। अतः जब हमारे शरीर के अन्दर द्रव पदार्थ की कमी होती है, उसे प्यास कहते हैं। जब ठोस पदार्थ की कमी की संवेदना होती है तो उसे हम क्षुधा नाम देते हैं। इसी प्रकार वायवीय की संवदना को श्वांस कहते हैं।

4. शरीरोष्मा को बनाये रखने के लिए– जिस प्रकार किसी मशीन को चालू रखने के लिए उसमें ताप उत्पन्न करने के लिए ईधन देना पड़ता है; उसी प्रकार मानव शरीर रूपी मशीन को भी चालू रखने के लिए ताप या शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। और शरीर के ताप को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए ईधन (आहार) की आवश्यकता पड़ती है। ईंधन के अभाव से ताप का क्रमशः अभाव होने लगता है और ताप के अभाव में मशीनवत शरीर अकर्मण्य हो जाता है। ईंधन के अभाव में शरीरोष्मा (कायाग्नि) अपने को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए शरीरोपादान का क्रमशः विनाश होने लगता है। इस प्रकार शरीरोपादान के समाप्त हो जाने पर शरीरोष्मा का क्रमशः लय होने लगता है। ताप के लय होने से जीवन का भी लय हो जाता है क्योंकि ताप ही जीवन है। इसी से वेदों में अग्नि का नाम 'तनूनपात्' अर्थात् ''तनून् न पातयति'' ऐसा आया है। अतः

शारीरिक ताप को बनाये रखने के लिए तथा आवश्यक धातु निर्माण के लिए उपयुक्त आहार का होना परम आवश्यक है।

5. धातु निर्माण के लिए आवश्यक– धातु निर्माण अर्थात् टिसू बिल्डिंग आहार के प्रोटीनांश से होता है।

6. शक्ति निर्माण (To act as a source of energy) के लिए आवश्यक– शक्ति निर्माण भोजन के उस अंश से होता है जिसे कार्बोहाइड्रेट तथा फैट कहते हैं। जल भोजन का तरल मिश्रण बना देता है जो परिपचन, परिशोषण, धातु निर्माण तथा मल–निःसारण के लिए आवश्यक है। लवण पाचन तथा धातु निर्माण में सहायक है। उक्त सारी क्रियाओं का नियामक विटामिन है।

12.8 सारांश–

जिज्ञासु विद्यार्थियों, प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप जान गये होंगे कि आहार का हमारे जीवन में कितना महत्व है। शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, आध्यात्मिक हर दृष्टि से आहार की उपयोगिता है। आहार का सूक्ष्म प्रभाव हमारे चित्त के संस्कारों पर पड़ता है। अतः आहार ग्रहण करते समय हमें पोषता की दृष्टि से तथा समय मात्रा इत्यादि विभिन्न दृष्टिकोण से सावधानिँ रखनी चाहिये, जिससे कि आहार ग्रहण करने का जो उद्देष्य है सही एवं सार्थक रूप में हमें उसकी प्राप्ति हो सके।

अभ्यास प्रश्न– नीचे कुछ कथन दिये गये है। जो कथन सत्य है, उनके सामने सही का () तथा जो असत्य है, उनके आगे गलक का () निशान लगायें–

(1) शरीर की सुरक्षा एवं पोषण के लिये आहार की आवश्यकता होती है। ()
(2) महर्षि सुश्रुत के अनुसार समस्त जीव मात्र का मूल आहार है। ()
(3) आहार शब्द से अभिप्राय भीतर लेने या ग्रहण करने से है। ()
(4) महर्षि चरके के अनुसार समस्त जीवन मात्र का मूल आहार है। ()
(5) महर्षि चरके के अनुसार आहार द्रव्य पंच भौतिक है। ()
(6) प्राणी एवं वनस्पति दोनों आहार के स्रोत है। ()
(7) चरक संहिता में व्याधि को आहार संभव माना गया है। ()
(8) सुक्षुत संहिता में मानव शरीर को आहार संभव माना गया है। ()
(9) आहार शुद्धौ सत्य शुद्धिः – यह उपनिषदों में कहा गया है। ()
(10) मानसिक स्वास्थ्य आहार पर निर्भर करता है।()

12.9 शब्दावली–

सत्व –	मन
पोषक तत्व–	वे तत्व जो पोषण प्रदान करे।
अपेक्षित –	जिनकी आवष्यक्ता हो।
साम्यावस्था	–संतुलित अवस्था।
पंचभौतिक	–पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाष इन पांच महाभूतों से युक्त।
आरोग्य –	निरोगता, रोग न होना।
भूतानि	– प्राणी
जायन्ते –	उत्पन्न होते हैं।
खल्विमानि	–निष्चित रूप से ये (प्राणी)
आहार सम्भव	–आहार से उत्पन्न।

12.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) सत्य (2) सत्य (3) सत्य (4) असत्य (5) सत्य (6) सत्य (7) असत्य (8) सत्य (9) सत्य (10) सत्य

12.11 संन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

(1) गुप्ता, राजकुमारी।(2010) आहार चिकित्सा। पापुलर बुक डिपो, जयपुर
(2) शर्मा, सुरभि (2006)। आहार ही औषधि। रामराज्य मंदिर प्रकाषन, दिल्ली
(3) चौहान, गणेशनारायण।(2001) भोजन के द्वारा चिकित्सा, पापुलर बुक डिपो, जयपुर
(4) चौहान, गणेशनारायण। (2001) पापुलर बुड डिपो, जयपुर
(5) श्री आदित्य। (2005) योग चिकित्सा विज्ञान। योग जीवन धाम ट्रष्ट, हरिद्वार
(6) सिंह, रामहर्ष। (2011) स्वस्थवृत विज्ञान। चौखम्बा, संस्कृत प्रतिष्ठान, बंगलो रोड दिल्ली।
(7) सिंह, रामहर्ष (2006) योग एवं यौगिक चिकित्सा। चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, बंगलो रोड दिल्ली।
(8) जिन्दल, राकेश। (2005) प्राकृतिक आयुर्विज्ञान। आरोग्य सेवा प्रकाषन, पंचवटी, उमेष पार्क, मोदीनगर, उत्तरप्रदेश।
(9) जिन्दल, राकेश– प्राकृतिक आयुर्विज्ञान।
(10) सिंह, रामहर्ष– योग एवं यौगिक चिकित्सा।
(11) सिंह, रामहर्ष– स्वस्थ्यवृत्त विज्ञान।
(12) गोपाल, उषा (2006) योग और स्वास्थ्य। स्पोर्टस पब्लिकेषन्स, दरियागंज, नई दिल्ली।

12.12 निबंधात्मक प्रश्न–

प्रश्न–1 "आहार" से आप क्या समझते है? आहार की विभिन्न परिभाषाओं का विष्लेषण कीजिए।

प्रश्न–2 आहार की आवश्यकता एवं महत्व का विस्तृत विवेचन कीजिए।

इकाई 13 आहार के कार्य

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 आहार के कार्य
13.4 सारांश
13.5 शब्दावली
13.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
13.8 निबंधात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना–

प्रिय पाठको, इससे पूर्व की इकाई में आप आहार के अर्थ, परिभाषा, आवश्यकता एवं महत्व से परिचित हो चुके है अर्थात् अब तक आप यह जान चुके हैं कि आहार से हमारा क्या आषय है? इसे किस–किस प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है तथा हमारे जीवन में आहार की क्या उपयोगिता है? इत्यादि। अब आपके मन यह प्रष्न उठ रहा होगा कि आखिर आहार के द्वारा ऐसे कौन–कौन से महत्त्वपूर्ण कार्य किये जाते है, जिसके कारण यह आहार हम सभी के जीवन में इतना महत्त्व रखता है। गीता में भी आहार के महत्व को प्रतिपादि करते हुये कहा गया है–

"युक्ताहार विहारस्य
युक्तचेष्टस्य कर्मजु।
युक्त स्वानावशोधस्य,
योगः भवति दुःखहा।।

(श्रीमद्भागवदगीता 6/17)

अर्थात् " दुःखों का नाश करने वाला योग तो यथा योग्य आहार–विहार करने वालो का कर्मों में यथायोग्य या सम्यक चेष्टा करने वालों का और सम्यक या यथायोग्य सोने तथा जागने वालें का ही सिद्ध होता है।"

अतः जो आहार हमारे जीवन में इतना महत्वपूर्ण स्थान रखता है, उसके कार्यों से हमें निष्चित ही भलीभाँति परिचित होना चाहिये।

आहार शब्द का प्रयोजन या नाम सुनते ही हमारे सामने अनगिनत तस्वीरें उभरकर आती हैं। आम तौर पर आहार का सम्बन्ध पारिवारिक और अन्य सामूहिक भोजन से जुड़ा है। इस प्रकार आहार जीवन के प्रत्येक पहलू से घनिष्ठ रूप से गुँथा है। आहार ही जीवनदाता है।

शरीर को स्वस्थ रखने के लिये उचित भोजन का उचित मात्रा में होना बहुत आवश्यक है अर्थात् अच्छे स्वास्थ्य का सीधा सम्बन्ध हमारे खान–पान से जुड़ा है। लेकिन यह जानना आवश्यक है कि स्वस्थ रहने के लिये क्या और कितनी मात्रा में खाना चाहिए?

भोजन क्या है? अगर इस तथ्य पर ध्यान दिया जाय तो भोजन शब्द का संबंध शरीर को पौष्टिकता प्रदान करने वाले पदार्थ में है। भोजन में वे सभी ठोस, अर्द्ध तरल और तरल पदार्थ शामिल हैं जो शरीर को पौष्टिकता प्रदान करते हैं। भोजन हमारे शरीर की मूलभूत आवश्यकता है।

भोजन में कुछ ऐसे रासायनिक पदार्थ होते हैं जो हमारे शरीर के लिए महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। भोजन से मिलने वाले इन रासायनिक पदार्थों को पोषक तत्व कहते हैं।यदि ये पोषक तत्व हमारे भोजन में उचित मात्रा में विद्यमान नहीं हो तो इसका परिणाम अस्वस्थता या मृत्यु तक भी हो सकती है।

भोजन में पोषक तत्वों के अलावा, कुछ अन्य रासायनिक पदार्थ होते हैं, जो कि अपोषक तत्व कहते हैं। जैसे कि भोजन को उसकी विशेष गंध देने वाले पदार्थ, भोजन में पाए

जाने वाले प्राकृतिक रंग इत्यादि। इस प्रकार भोजन पोषक तत्वों और अपोषक तत्वों का जटिल मिश्रण है।

13.2 उद्देश्य–

जिज्ञासु पाठको, इस ईकाई का अध्ययन करने के बाद आप–

- आहार के प्रमुख कार्यों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- आहार की हमारे जीवन में क्यों आवष्यक्ता है, इसका वर्णन कर सकेंगे।
- आहार की दैनिक जीवन में महत्ता को स्पष्ट कर सकेंगे।

13.3 आहार के कार्य–

प्रिय विद्यार्थियों, आहार के संबंध में आपने अब तक जितना अध्ययन किया है, उससे आप इस बात का अनुमान तो आसानी से लगा सकते हैं कि आहार का कार्यक्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है अर्थात् आहार के कार्यों का दायरा केवल शरीर तक ही सीमित नहीं है, वरन् यह प्राणी के समग्र विकास में सहायक है।

अतः आप आहार के प्रमुख कार्य का अध्ययन निम्नांकित बिन्दुओं के अन्तर्गत कर सकते है–

(1) शरीर क्रियात्मक कार्य
(2) मनोवैज्ञानिक कार्य
(3) सामाजिक कार्य
(4) आध्यात्मिक उन्नति में सहायक

इन सभी का विवेचन निम्नानुसार है–

(**1**) शरीर क्रियात्मक कार्य– प्रिय पाठको, आपके मन में जिज्ञासा उठ रही होगी कि आहार के शरीर क्रियात्मक कार्यों से हमारा क्या आषय है? आहार के वे समस्त कार्य जो शारीरिक स्वास्थ्य संवर्धन से सम्बन्ध रखते है, शरीर क्रियात्मक कार्यों में आते है।

आहार के शरीर क्रियात्मक कार्य निम्न है–

(अ) उर्जा प्रदान करना
(ब) शरीर संबर्धन
(स) शारीरिक क्रियाओं का सुचारू संचालन
(द) सप्तधातुओं का पोषण
(य) रोगों से सुरक्षा

(**अ**) उर्जा प्रदान करना– आहार का सर्वप्रमुख कार्य शरीर को उर्जा प्रदान करना। भोजन के रूप में हम जिन पोषक तत्वों को ग्रहण करते हैं, वे सभी तत्व हमें शारीरिक, मानसिक रूप से तथा प्रत्येक प्रकार के कार्य करने के लिये आवष्यक उर्जा प्रदान करते हैं। जिस प्रकार किसी गाड़ी को चलाने के लिये डीजन या पेट्रोल की जरूरत होती है, उसी प्रकार हमें भी किसी भी प्रकार का काम करने के लिये उर्जा की आवष्यक्ता होती है, जिसकी पूर्ति आहार से होती है।

जब हमारे शरीर में उर्जा की कमी हो जाती है तो हमें थकान का अनुभव होने लगता है। इसके परिणामस्वरूप हमें भूख लगती है और हम भोजन ग्रहण करते है।

इसके परिणामस्वरूप उर्जा प्राप्त होने से पहले की तरह पुनः क्रियाषील हो जाते है।

(**ब**) शरीर संवर्धन– उम्र के अनुसार शरीर का समुचित विकास होना भी आवष्यक है। शरीर की यह बृद्धि एवं विकास आहार के कारण ही होता है।

(**स**) शारीरिक क्रियाओं का सुचारू संचालन–

प्रिय पाठको, जैसा कि आप समझ ही चुके है, शरीर का उर्जा स्रोत आहार है। अतः शरीर के उर्जा के कारण ही अपने–अपने कार्यों का ठीक ढंग से समावित कर पाते है। इस प्रकार स्पष्ट है कि शारीरिक क्रियाओं का सुचारू संचालन भी आहार का एक प्रमुख कार्य है।

(द) सप्तधातुओं का पोषण– जिज्ञासु विद्यार्थियों, आयुर्वेद के अनुसार हमारे शरीर में सात धातुयें पायी जाती है, जो निम्न है–

(1) रस
(2) रक्त
(3) माँस
(4) मेद
(5) अस्थि
(6) मज्जा
(7) शुक्र

इन सात धातुओं का समुचित पोषण तभी होता है, जब हम संतुलित और आदर्ष आहार लेते हैं। अतः धातुओं को पुष्ट करना आहार का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है।

(य) रोगों से सुरक्षा–

शरीर के स्वस्थ रहने के लिये यह आवष्यक है कि वह रोग ग्रस्त न हो और रोगों से बचने एवं लड़ने के लिये शरीर में पर्याप्त रोग प्रतिरोधक क्षमता होनी चाहिये। यदि हम ठीक समय पर, उचित मात्रा में पर्याप्त पोषक तत्वों से युक्त भोजन लेते हैं तो हमारा शरीर रोगों को जन्म देने वाले कारकों से सुरक्षित रहता है। कहने का आषय यह है कि जिस व्यक्ति के शरीर में जितनी अधिक मात्रा में रोग प्रतिरोधक क्षमता विकसित होती है, वह उतनी ही अधिक मात्रा में निरोगी रहता है और हमारी यह रोगों से लड़ने की क्षमता हमारे आहार पर भी निर्भर करती हैं

(2)मनोवैज्ञानिक कार्य–

हम सबकी कुछ अनुभव अतः स्पष्ट है कि आहार शारीरिक पोषण के साथ–साथ मानसिक एवं भावनात्मक पोषण भी करता है। कहा भी गया है–

" जैसा खाये अन्न।
वैसा बने मन।"

अर्थात्– जैसा हम भोजन ग्रहण करते हैं हमारा मन भी उसी प्रकार का हो जाता है। अतः हमारा आहार ऐसा होना चाहिये जो शरीर के साथ–साथ मन का भी विकास करे मन को भी पोषण प्रदान करे। अतः शारीरिक दृष्टि से आहार में सभी पोषक तत्व समुचित मात्रा में उपलब्ध होने चाहिये तथा मानसिक दृष्टि से आहार शुद्ध एवं सात्विक होना चाहिये।

इस प्रकार स्पष्ट है कि मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाना भी आहार का ही कार्य है।

(3) सामाजिक कार्य–

(4) आध्यात्मिक उन्नति में सहायक–

आहार शरीर एवं मन के साथ–साथ हमारी आत्म को भी प्रभावित करता है।अतः स्पष्ट है कि आध्यात्मिक उन्नति में सहायता प्रदान करने का कार्य भी अप्रत्यक्ष रूप से आहार के द्वारा होता है। अतः स्पष्ट है कि आहार द्वारा हमारा शरीर इन्द्रिय, मन एवं आत्म सभी को प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होते है।

अभ्यास प्रश्न– नीचे कुछ कथन दिये गये है, जो सही हो उनके सामने सही का (√) तथा जो गलता हो उसके सामन गलत (x) का निषान लगायें–

(1) आहार का संबंध मानसिक स्वास्थ्य से भी है। ()
(2) आहार से शरीर को उर्जा प्राप्त होती है। ()
(3) हमारे शरीर में धातुओं की संख्या सात है। ()
(4) हमारे शरीर में आठ प्रकार की धातुयें पायी जाती है। ()
(5) आहार के शुद्ध होने से अन्तः कारण शुद्ध होता है। ()
(6) धातु–पोषण, आहार का मनोवैज्ञानिक कार्य है। ()
(7) धातु पोषण, आहार का शरीर क्रियात्मक कार्य है। ()
(8) सात्विक आहार हल्का, सुपाच्य एवं पवित्र होता है। ()

(9) अन्न में चार कोष होते हैं। ()
(10) अन्न में तीन कोष होते हैं। ()

13.4 सारांश–

प्रिय पाठको, उपर्युक्त विवरण से अब आप जान गये होंगे कि आहार के कार्यों का संबंध प्राणी के चर्हुमुखी नियोजित विकास से है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रत्यक्ष रूप से तो केवल यही प्रतीत होता है कि भोजन ग्रहण करने से हमारा शरीर शक्तिशाली बनता है इसका विकास होता है तथा हम शारीरिक रूप से कार्य करने में समर्थ होते हैं, किनतु अप्रत्यक्ष रूप से हम देखें तो आहार शरीर के साथ–साथ हमारे मन, भावनाओं एवं आत्मा को भी प्रभावित करता है,

बच्चों कि शरीर एवं मन का आपस में गहरा संबंध है। शरीर के स्वस्थ होने पर मन एवं मन के स्वस्थ्य रहने पर शरीर भी स्वस्थ रहता है। अतः जो आहार शारीरिक पोषण के ये उत्तरदायी है वहीं आहार मानसिक पोषण को भी प्रभावित करता है।

'.इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आहार के कार्यो में वे सभी कार्य आते है जिनका संबंध स्वास्थ्य की समग्र अवधारणा से है।

13.5 शब्दावली–

युक्ताहार – सम्यक आहार, संतुलित अथवा हितकर या आदर्ष आहार, सात्विक आहार।
दुःखहा – दूःखों का नाश करने वाला।
समग्र – पूर्ण रूप से।
सुचारू – ठीक प्रकार से, भलीभाँति।
सत्वशुद्धि – मन की पवित्रता।
कोश – खजाना अथवा आवरण या परत।
अदृश्य – जो दिखाई न दे।

13.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

(1) सत्य (2) सत्य (3) सत्य (4) असत्य (5) सत्य (6) असत्य (7) सत्य (8) सत्य (9) असत्य (10) सत्य

13.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1) गुप्ता, राजकुमारी।(2010) आहार चिकित्सा। पापुलर बुक डिपो, जयपुर
(2) शर्मा, सुरभि (2006)। आहार ही औषधि। रामराज्य मंदिर प्रकाषन, दिल्ली
(3) चौहान, गणेशनारायण।(2001) भोजन के द्वारा चिकित्सा, पापुलर बुक डिपो, जयपुर
(4) चौहान, गणेशनारायण। (2001) पापुलर बुड डिपो, जयपुर
(5) श्री आदित्य। (2005) योग चिकित्सा विज्ञान। योग जीवन धाम ट्रष्ट, हरिद्वार
(6) सिंह, रामहर्ष। (2011) स्वस्थवृत विज्ञान। चौखम्बा, संस्कृत प्रतिष्ठान, बंगलो रोड दिल्ली।
(7) सिंह, रामहर्ष (2006) योग एवं यौगिक चिकित्सा। चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, बंगलो रोड दिल्ली।
(8) जिन्दल, राकेश। (2005) प्राकृतिक आयुर्विज्ञान। आरोग्य सेवा प्रकाषन, पंचवटी, उमेष पार्क, मोदीनगर, उत्तरप्रदेश।

13.8 निबंधात्मक प्रश्न–

प्रश्न–5 आहार के प्रमुख कार्यों का विस्तृत विवेचन कीजिए।

इकाई–14 आहार के स्रोत

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देष्य
14.3 आहार के स्रोत से क्या अभ्रिपाय है?
14.4 आहार के स्रोत
14.5 सारांष
14.6 शब्दावली
14.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
14.9 निबंधात्मक प्रष्न

14.1 प्रस्तावना–

प्रिय विद्यार्थियों, इससे पहले की ईकाईयों में आप आहार क्या है? भिन्न–भिन्न विद्वानों ने किस प्रकार से इसे परिभाषित किया है? आहार का हमारे जीवन में क्या महत्व है? आहार के प्रमुख कार्य क्या–क्या है? इत्यादि विषयों का अध्ययन कर चुके हैं। प्रस्तुत ईकाई में हमारे अध्ययन का विषय है– आहार के स्रोत अर्थात्– हमें भोजन किस–किस प्रकार से तथा किन–किन साधनों से प्राप्त होता है। इस ईकाई को पढ़ने के बाद आपको ज्ञात होगा कि हमें आहार केवल एक ही स्रोत से प्राप्त नहीं होता वरन् हमारे आहार के विभिन्न स्रोत है।

आहार के महत्व को ही बताते हुये तैत्रिरीयोपनिषद में कहा गया है कि–

अन्नादध्मेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
अन्नेव जातानि जीवन्ति। अन्नं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति।

(तैत्तिरीयोपनिषद् 3/2)

''अन्न से ही सब प्राणी पैदा होते हैं। अन्न से ही सब प्राणी जीते हैं। अन्न में ही सब प्राणी समा जाते हैं। अन्न से तात्पर्य खाद्य पदार्थों से है।''

ऐसा कोई भी पदार्थ या पदार्थों का समूह जो कि एक जीव या प्राणी को पोषण निर्माण और ऊर्जा प्रदान करता है।''

ऐसे खाद्य पदार्थों का समूह जो शरीर के लिये उचित रूप में या सन्तुलित रूप में ऊर्जा, क्षति–पूर्ति, निर्माण तथा रोग प्रतिरोधक शक्ति प्रदान करने वाले तत्वों की उचित मात्रा में पूर्ति करता है।

आयुर्विज्ञान के अनुसार शरीर की रचना में प्रमुख तत्व इस प्रकार है– जल 63 प्रतिशत, प्रोटीन 17 प्रतिशत, वसा 12 प्रतिशत, खनिज लवण 4 प्रतिशत तथा कार्बोहाइड्रेट 1प्रतिशत।

ऐसे शरीर को स्वस्थ रखना ही आहार का प्रमुख उद्देश्य है। आहार से शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य प्रभावित होता है।

आहार या पोषण का उद्देश्य शरीर के लिये आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति करना है। अतः यह निश्चित होना आवश्यक है कि शरीर के लिये कौन से पोषक तत्व कितनी मात्रा में में आवश्यक है।

14.2 –उद्देश्य–

प्रिय पाठको, इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप–

1. आहार का हमारे जीवन में क्या महत्व है– इसे स्पष्ट कर सकेंगे।
2. आहार के विभिन्न स्रोतों का अध्ययन कर सकेंगे।
3. आहार के प्रमुख घटक अवयवों का अध्ययन कर सकेंगे।

14.3–आहार के स्रोत से क्या अभिप्राय है–

प्रिय पाठको, आपके मन में यह जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हो रही होगी कि आहार के स्रोत से हमारा क्या आषय है?

वस्तुतः आहार के स्रोत से हमारा आषय यह है कि हमें आहार कहाँ–कहाँ से प्राप्त होता है। जिन भी पदार्थों या प्राणियों से हम भोजन प्राप्त करते है, उन सभी को आहार के स्रोत के अन्तर्गत रखा जायेगा।

अब आप समझ गये होंगे कि आहार के स्रोत से हमारा क्या तात्पर्य है।

मानव आहार के मुख्य रूप से दो स्रोत माने गये हैं–प्राणी एवं वनस्पति।

इसे निम्न चार्ट के द्वारा आप अधिक अच्छे ढंग से समझ सकते हैं–

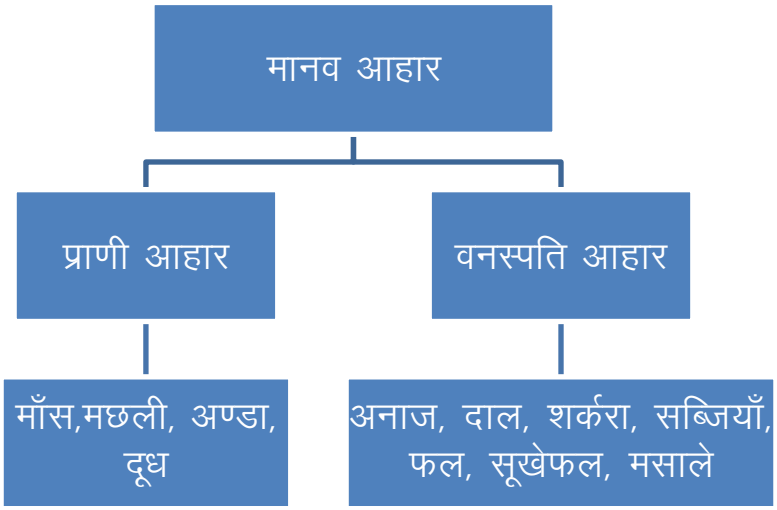

महत्वपूर्ण नोट–पाठको योग की दृष्टि से प्राणी आहार का सेवन नही करना चाहिए।

14 4 आहार के स्रोत

1. **प्रोटीन–**

प्रोटीन शरीर की सभी कोशिकाओं और द्रव्यों का अनिवार्य अंश है। खाद्य प्रोटीन का प्राथमिक कार्य शरीर को नाइट्रोजन और एमिनो एसिड देना है। जिससे कि शारीरिक प्रोटीन का संश्लेषण हो सके। ऐसे पदार्थों में कुछ हार्मोन एपिनेफ्रीन, थायरॉक्सिन, कुछ ऑक्सीकारक एन्जाइम के समूह और हीमोग्लोबिन है।

स्रोत– यह दालों, काजू, बादाम, मटर, नारियल, मँगफली, मांस, मछली, अण्डा, पनीर चने की भाजी, लहसुन, कैथा, राजगिरा तथा इमली आदि में पाया जाता है।

2. **कार्बोहाइड्रेट–** ये कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन के यौगिक होते हैं जिनमें सैकेरोस समूह होता है अथवा इसका प्रथम क्रियात्मक पदार्थ जिसमें हाइड्रोजन और ऑक्सीजन जल के अनुपात में रहता है। पौधों में पाये जाने वाले कार्बोहाइड्रेट्स मानव की 50 प्रतिशत ऊर्जा की आवश्यकता की पूर्ति करते हैं।

स्रोत– अनाज, अण्डा, मांस, दालें, शक्कर, गुड़ प्रमुख स्रोत है। फलों में केला, काजू, नारियल बेल, खजूर, सीताफल तथा सब्जियों में आलू, घुइयां, जिमीकंद, शकरकंद, टैपिओका आदि में अधिकता से पाया जाता है।

3. **फैट–**

शरीर को सघन रूप से ऊर्जा प्रदान करता है। गुर्दे, हृदय तथा नाजुक अंगों को सुरक्षा प्रदान करता है। शरीर में चिकनाहट बनाये रखना, त्वचा में सर्दी के प्रति सहनशीलता प्रदान करना प्रमुख कार्य है।

स्रोत–

घी, दूध, मक्खन, तेल, अण्डा, मछली प्रमुख है। फलों में काजू, नारियल, बादाम, एवेकेडो में भी पाया जाता है। यह सब्जियों में कम ही पाया जाता है।

4. खनिज पदार्थ–

(क) फॉस्फोरस– यह महत्वपूर्ण खनिज है जिसकी मात्रा शरीर में 400 से 700 ग्राम तक पायी जाती है। यह मात्रा हड्डियों और दाँतों में पायी जाती है।

स्रोत– काजू, बादाम, इमली, अनार, कैथा, नारियल, नीम की पत्ती हरी मटर, लहसुन, हरी मिर्च, दूध, पनीर, अण्डे, मांस–मछली में पाया जाता है।

(ख) ऑयरन– यह हीमोग्लोबिन, माइकोग्लोबिन, साइटोक्रोम, कैटालेस, पेराक्सीडेस का महत्वपूर्ण अंश है। शरीर में इसकी मात्रा 3–4 ग्राम होती है। इसका 75 प्रतिशत रक्त में वितरित रहता है।

स्रोत– फलों में आम, करौंदा, खजूर सीताफल तथा सब्जियों में चने की भाजी, नीम की पत्ती, राजगिरा, धनिया की पत्ती आदि में विपुल रूप से पाया जाता है। यह लीवर और अण्डे में भी पाया जाता है।

(ग) आयोडीन– यह 0.14 मि.ग्रा. प्रतिदिन मनुष्यों के लिये तथा 0.10 ग्राम प्रतिदिन महिलाओं के लिये आवश्यक है। यह आयोडीनयुक्त नमक तथा समुद्री जीवों में पाया जाता है।

4. विटामिन–

विटामिन ऐसे जैविक–रासायनिक पदार्थ है जो सूक्ष्म या अल्प रूप में शरीर की सामान्य जैविक क्रियाओं के लिये अनिवार्य होते हैं। ये शरीर को ऊर्जा प्रदान न करके उत्प्रेरक के रूप में कार्य करते हैं। इन्हें जीवन सत्य भी कहते हैं।

- **विटामिन ए**
  – हरी पत्तेदार सब्जियाँ, जैसे– राजगिरा, अमरनाथ, पोई, घुइयां की पत्तियाँ, चौलाई, पालक आदि।
- **विटामिन बी–**
  कैथा, सीताफल, बेल, अनार, बादाम, काजू, दूध, पनीर, अण्डे, मांस–मछली आदि।
- **विटामिन सी–**
  आँवला, अमरूद, अन्ननास, सन्तरा, नींबू, मौसम्बी, पपीता, बेर, टमाटर, स्ट्रावेरी, करेला, हरी मिर्च, पालक तथा अंकुरित अनाज आदि।
- **विटामिन डी–**
  फल तथा सब्जियों में कम पाया जाता है। सूर्य ऊर्जा द्वारा शरीर में निर्मित होता है। सामिष खाद्य पदार्थों, जैसे– मछली आदि में पाया जाता है, दूध में भी पाया जाता है।

शरीर के लिये आवश्यक तत्वों की पूर्ति विभिन्न प्रकार के खाद्य–पदार्थों द्वारा ही सम्भव हो पाती है। इन्हें 14 भागों में वर्गीकृत किया गया है। प्रत्येक समूह पोषक तत्वों की आपूर्ति करता हैं

1. **अनाज–** कार्बोहाइड्रेट के प्रमुख स्रोत तथा प्रोटीन के मध्यम स्रोत माने जाते हैं। कुछ अनाज विटामिन 'ई' तथा अंकुरित अनाज विटामिन 'बी' समूह की भी पूर्ति करते हैं। खनिज पदार्थों की पूर्ति करते हैं। पदार्थ शरीर को प्रमुख रूप से जर्ा प्रदान करते हैं। इनमें चावल, गेहूँ, बाजरा, कोदो, कुटकी, जई, मक्का, ज्वार आदि प्रमुख है।
2. **दाल–** प्रोटीन के प्रमुख स्रोत (18–25 प्रतिशत) है। विटामिन 'बी' समूह तथा कुछ खनिज पदार्थों की पूर्ति इनसे होती है। इससे शरीर को ऊर्जा तथा पोषण प्राप्त होता है। अरहर, चना, मटर, मँग उड़द, मसूर, सोयाबीन, सेम, बरबटी, ग्वार, राजमा आदि।
3. **शर्करा, गुड़, खांड़ आदि–** ये पदार्थ मिठास उत्पन्न करते हैं और शरीर को ऊर्जा प्रदान करते हैं। कुछ मिठाइयां जो खोये से बनी होती है वसा भी प्रदान करती है। जैसे–बरफी आदि।

4. **तिलहन–** वसा के प्रमुख स्रोत माने जाते हैं। ये पदार्थ शरीर को सहज ऊर्जा प्रदान करते हैं। कुछ तिलहनों में प्रोटीन भी होता है। जैसे–सोयाबीन, मँगफली आदि।
5. **दूध, घी–** दूध पूर्ण आहार माना जाता है। शरीर के लिये आावश्यक तत्व इससे प्राप्त हो जाते हैं। मानव के लिये ये प्रथम आहार है। जैसे– गाय, भैंस, बकरी का दूध अधिक उपयोग किया जाता है।
6. **मांसाहार–** मांस, मछली, मुर्गा अण्डा प्रोटीन के प्रमुख स्रोत है। ये शरीर को सघन ऊर्जा प्रदान करते हैं और चर्बी की मात्रा को बढ़ाते हैं। विटामिन 'बी' और फॉस्फोरस के मध्यम स्रोत माने जाते हैं।
7. **मसाले–** इनका उपयोग प्रमुख आहार को स्वादिष्ट बनाया जाता है। कुछ मसालों में पोषक तत्व भी होते हैं। लौंग, जीरा, धनिया, काली मिर्च, जायपत्री, दालचीनी, स्याह जीरा इलायची, लेडी पिपर, जायफल, मेथी इत्यादि।
8. **खाद्य फल–** ऐसे फल जो ताजे रूप में ही उपयोग किये जाते हैं। जैसे– केला, आम, पपीता, अमरूद, सेब, सीताफल, बेर आदि।
9. **रसदार फल–** ऐसे फल जिनमें रस होता है जिसका उपयोग किया जाता है। जैसे– संतरा, मौसम्बी, नींबू, ग्रेपफूट, अंगूर आम, अन्ननास आदि। ये खनिज तथा विटामिन से भरपूर तथा सुपाच्य होते हैं।
10. **गिरीदार या सूखे फल–** काजू, बादाम, नारियल, किशमिश, खजूर, अखरोट, चिरौंजी आदि सूखे फल है जो शरीर को कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन तथा फैटक साथ ही साथ खनिजों की भी आपूर्ति करते हैं। ये फल शीघ्र ही खराब नहीं होते हैं।
11. **औषधीय फल–** कुछ फल औषधीय गुणों से भरपूर होते हैं। जैसे– बेल, आंवला, जामुन, अनार, नींबू आदि। इनमें कुछ विशेष रासायनिक पदार्थ होते हैं जो शरीर के लिये उपयोगी है।
12. **सब्जियाँ पत्तेदार–**खनिज तथा विटामिन के स्रोत है। अपचनशील रेशे के कारण कब्ज दूर करने में सहायक होती है। जैसे– चौलाई, राजगिरा, पालक, पोई, मेथी, सलाद, पत्तागोभी आदि।
13. **सब्जियाँ फलदार–** कच्ची एवं पकाकर खायी जाने वाली पोषक तत्वों से भरपूर सब्जियाँ हैं। टमाटर, बैंगन, भिण्डी, कद्दू, मिर्च आदि।
14. **सब्जियाँ–औषधीय मसालेवाली–** ऐसी सब्जियों का उपयोग मसालों के लिये किया जाता है। इनमें प्याज, लहसुन, अदरक, हल्दी, मिर्च आदि प्रमुख है।

अभ्यास प्रश्न–

प्रिय पाठको, नीचे कुछ कथन दिये गये हैं। जो कथन सत्य हो उसके सामने सही का तथा जो असत्य हो उसके आगे गलत का निशान लगायें–

1. तैत्रिरीयोपनिषद के अनुसार अन्न से ही सब प्राणी पैदा होते है। ()
2. प्राणी एवं वनस्पति दोनों ही आहार के स्रोत है। ()
3 शरीर रचना में सर्वाधिक मात्रा जल तत्व की होती है। ()
4 शरीर रचना में सर्वाधिक मात्रा खनिज लवणों की होती है। ()
5 आयोडीन एक खनिज लवण है। ()
6 फॉस्फोरस विटामिन का एक प्रकार है। ()
7 आयरन एक प्रोटीन है। ()
8 आयरन एक विटामिन है। ()
9 अनाज को पूर्ण आहार माना जाता है। ()
10 दूध का स्रोत प्राणी है। ()
11 दालों से प्रोटीन प्राप्त होता है। ()
12 अनाज से कार्बोहाइड्रेट प्राप्त होता है। ()
(13) सूर्य ऊर्जा से विटामिन सी प्राप्त होता है। ()

(14) सूर्य ऊर्जा से विटामिन डी प्राप्त होता है। ()
(15) दूग्ध को पूर्ण आहार माना जाता है। ()
(16) सूखे फलों से कार्बोहाइड्रट प्राप्त होता है। ()
(17) काजू–बदाम इत्यादि से खनिज लवण की पूर्ति होती है।
(18) सूखे फलों से प्रोटीन की आपूर्ति होती है। ()
(19) रसदार फल खनिज लवणों से युक्त होते है। ()
(20) रसीले फलों में विटामिन पाया जाता है। ()
(21) पत्तेदार सब्जियों में विटामिन नहीं पाया जाता है। ()
(22) पत्तेदार सब्जियाँ खनिज लवणों की आपूर्ति करती है।
(23) मछली प्रोटीन का मुख्य स्रोत है। ()
(24) माँसाहार से विटामिन बी प्राप्त होती है। ()
(25) अंकुरित अन्न से विटामिन बी प्राप्त होता है। ()

14.5 सारांश –

प्रिय विद्यार्थियों, प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करने के बाद आप अच्छी तरह से जान गये होंगे कि मानव आहार के क्या–क्या स्रोत हैं अर्थात्– हमें किन–किन साधनों से आहार की प्राप्ति होती है। यदि आहार के स्रोत शुद्ध हो तो उनसे प्राप्त होने वाला आहार भी शुद्ध एवं पौष्टिक होता है, जो न केवल शरीर संवर्धन में वरन् मानसिक विकास में भी सहायक होता है। अतः आहार के स्रोतों के संबंध में भी सावधानी रखनी चाहिये।

14.6 शब्दावली–

आपूर्ति – पूरा करना।
हार्मोन – अन्तः स्रावी ग्रन्थियों जैसे कि पीयूष ग्रन्थि,थाइराइड ग्रन्थि, एड्रीनल ग्रन्थि इत्यादि से उत्पनन होने वाला स्राव, जो सीधे जाकर रक्त में मिल जाता है।
हीमोग्लोबिन– रक्त या खून में पाया जाने वाला तत्व हीमोग्लोबिन–हीम (लौह) + ग्लोबिन (प्रोटीन)
शुपाच्य – जिनका पाचन आसानी से हो जाये।
खाद्य – खाने योग्य।
औषधीय– औषधिय दवा के रूप में प्रयुक्त होने वाले।

14.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

(1) सत्य (2) सत्य (3) सत्य (4) असत्य (5) सत्य (6) असत्य (7) असत्य (8) असत्य (9) असत्य (10) सत्य (11) सत्य (12) सत्य (13) असत्य (14) सत्य (15) सत्य (16) सत्य (17) सत्य (18) सत्य (19) सत्य (20) सत्य (21) असत्य (22) सत्य (23) सत्य (24) सत्य (25) सत्य

14.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1) गुप्ता, राजकुमारी।(2010) आहार चिकित्सा। पापुलर बुक डिपो, जयपुर
(2) शर्मा, सुरभि (2006)। आहार ही औषधि। रामराज्य मंदिर प्रकाषन, दिल्ली
(3) चौहान, गणेषनारायण।(2001) भोजन के द्वारा चिकित्सा, पापुलर बुक डिपो, जयपुर
(4) चौहान, गणेषनारायण। (2001) पापुलर बुड डिपो, जयपुर
(5) श्री आदित्य। (2005) योग चिकित्सा विज्ञान। योग जीवन धाम ट्रष्ट, हरिद्वार
(6) सिंह, रामहर्ष। (2011) स्वस्थवृत विज्ञान। चौखम्बा, संस्कृत प्रतिष्ठान, बंगलो रोड दिल्ली।
(7) सिंह, रामहर्ष (2006) योग एवं यौगिक चिकित्सा। चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, बंगलो रोड दिल्ली।

14.9 निबंधात्मक प्रश्न

1–आहार के स्रोतो का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।

इकाई –15 संतुलित आहार, परिभाषा, महत्व एवं घटक

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 संतुलित आहार की अवधारणा अथवा संतुलित आहार क्या है ?
15.4 परिभाषायें
15.5 संतुलित आहार को प्रभावित करने वाले कारक
15.6 संतुलित आहार कैसा हो?
15.7 संतुलित आहार के चार्ट से संबंधित आवष्यक बातें
15.8 संतुलित आहार के घटक
15.9 संतुलित आहार का महत्व
15.10 सारांश
15.11 शब्दावली
15.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
15.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
15.14 निबंधात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना–

प्रिय पाठको, इससे पूर्व की इकाई में आप आहार की अवधारणा, परिभाषायें, आहार की आवष्यक्ता एवं महत्व, आहार के विभिन्न स्रोत एवं कार्यों के विषय में अध्ययन कर चुके है। इस ईकाई में आप जानेंगे कि संतुलित आहार क्या है? संतुलित आहार किन–किन कारकों से प्रभावित होता है? इसकी प्रमुख विषेषतायें क्या है? संतुलित आहार कैसा होना चाहिये? इसके प्रमुख घटक–अवयव क्या–क्या है? संतुलित आहार की हमारे जीवन में क्या उपयोगिता है? इत्यादि। तो आइये जाने कि किस प्रकार की आहार को संतुलित आहार की संज्ञा दी जाती है।

ऐसा आहार जिसमें आहार विज्ञान और शरीर विज्ञान के अनुसार वे सभी चीजें उचित मात्रा में मौजूद हों जो शरीर निर्वाह के लिए आवश्यक है। ऐसे ही भोजन से शरीर का भली–भाँति पोषण होता है। उससे पर्याप्त शक्ति और ताप की उपलब्धि होती है तथा स्वास्थ्य एवं आयु की वृद्धि होती है। संतुलित आहार में कार्बोज, वसा, प्रोटीन, खनिज लवण, जल तथा सभी प्रकार के विटामिन उचित मात्रा में होते हैं जिनसे शरीर की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है। यदि इन खाद्य तत्वों में से किसी एक ही खाद्य तत्व का सेवन किया जाएगा तो स्वाभाविक है कि उससे शरीर की अन्य अनेकों आवश्यकताएँ पूरी न हो सकेंगी, फलतः शरीर धीरे–धीरे पूर्ण पोषण न मिल पाने के कारण क्षीण हो जाएगा।

भोजन के विभिन्न प्रकार के पोषक तत्वों का अलग–अलग कार्य होता है। इनके ठीक अनुपात में होने से ही हमारा शरीर स्वस्थ बना रहता है। अतः विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों के मिश्रण से बने उस आहार को जो हमारे शरीर को सभी पौष्टिक तत्व हमारी शारीरिक आवश्यकताओं के अनुसार उचित मात्रा में प्रदान करता है, संतुलित आहार कहते हैं।

हमारा आहार संतुलित तब ही कहलायेगा जब हमारी शारीरिक जरूरतों को पूरा कर पायेगा। हमारी शारीरिक जरूरतें कई कारणों पर निर्भर करती है, जैसे आयु, लिंग, जलवायु, शारीरिक कार्य आदि। हमारा संतुलित आहार भी इन्हीं कारणों पर निर्भर है।

15.2 उद्देश्य–

जिज्ञासु विद्यार्थियों प्रस्तुत ईकाई के अध्ययन के उपरान्त आप–

(1) संतुलित आहार की अवधारणा को स्पष्ट कर सकेंगे।
(2) संतुलित आहार की विभिन्न परिभाषाओं का विष्लेषण कर सकेंगे।

(3) संतुलित आहार की प्रमुख विषेषताओं को स्पष्ट कर सकेंगे।
(4) संतुलित आहार को प्रभावित करने वाले कारकों का विवेचन कर सकेंगे।
(5) संतुलित आहार के महत्व का प्रतिपादन कर सकेंगे।
(6) संतुलित आहार के कार्यों का वर्णन कर सकेंगे।
(7) व्यावहारिक जीवन में संतुलित आहार की उपयोगिता को स्पष्ट कर सकेंगे।
(8) संतुलित आहार हेतु आवष्यक षर्तों का अध्ययन कर सकेंगे।

15.3 संतुलित आहार की अवधारणा अथवा संतुलित आहार क्या है

संतुलित आहार वह भोजन है, जिसमें विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थ ऐसी मात्रा व समानुपात में हों कि जिससे कैलोरी खनिज लवण, विटामिन व अन्य पोषक तत्वों की आवश्यकता समुचित रूप से पूरी हो सके। इसके साथ–साथ पोषक तत्वों का कुछ अतिरिक्त मात्रा में प्रावधान हो ताकि अपर्याप्त मात्रा में भोजन मिलने की अवधि में इनकी आवश्यकता की पूर्ति हो सके। यदि इस परिभाषा को ध्यान से पढ़ें तो पायेंगे कि इनमें 3 मुख्य बातें हैं–

- संतुलित आहार आहार में विभिन्न खाद्य पदार्थ शामिल होते हैं।
- संतुलित आहार शरीर में पोषक तत्वों की जरूरतों को पूरा करता है।
- संतुलित आहार अपर्याप्त मात्रा में भोजन मिलने की अवधि के लिये पोषक तत्व प्रदान करता है।

संतुलित आहार में विभिन्न खाद्य पदार्थ शामिल हैं– संतुलित आहार में विविध प्रकार के खाद्य पदार्थ होते हैं। परन्तु इसका चुनाव किस प्रकार किया जाये, इसका नियोजन करते समय हमारा मुख्य उद्देश्य यह होना चाहिए कि आहार द्वारा व्यक्ति को सभी पोषक तत्व मिलें।

संतुलित आहार शरीर में पोषक तत्वों की जरूरतों को पूरा करता है– संतुलित आहार सभी पोषक तत्वों की आवश्यकता पूर्ण करता है, क्योंकि इसमें सही मात्रा व अनुपात में खाद्य पदार्थों का चुनाव किया जाता है। किसी व्यक्ति को अपनी पोषक तत्वों की जरूरतें पूरी करने के लिये कितना भोजन लेना चाहिये, यह उस व्यक्ति की पोषक तत्वों की प्रस्तावित दैनिक मात्रा पर निर्भर करता है।

अपर्याप्त मात्रा में भोजन मिलने की अवधि के लिये संतुलित आहार अतिरिक्त पोषक तत्व प्रदान करता है– संतुलित आहार में पोषक तत्वों की मात्रा इतनी होती है कि कुछ समय के लिये भोजन न प्राप्त होने के समय शरीर में पोषक तत्वों की मात्रा पर्याप्त बनी रहती है। अर्थात् जब पोषक तत्वों की आवश्यकता पूर्ण रूप से पूरी न हो पा रही हो तो ऐसी स्थिति में यह आहार सुरक्षात्मक मात्रा में पोषक तत्व भी प्रदान करता है।

संतुलित भोजन क्या है– साधारणतः एक मनुष्य प्रतिदिन कौन–कौन वस्तु कितनी–कितनी मात्रा में खाये, जिससे उसकी शारीरिक आवश्यकताएँ पूरी हो जायें और वह रोगों से बचा रहकर उत्तम स्वास्थ्य और लम्बी आयु प्राप्त करें, अब इस पर विचार किया जाता है।

- रक्त में क्षारत्व और अम्लत्व की उपस्थिति की दृष्टि से संतुलित भोजन
- मोटे हिसाब से संतुलित भोजन
- सबसे सस्ता संतुलित भोजन
- एक परिश्रमी का संतुलित भोजन
- प्रौढ़ व्यक्ति के लिए संतुलित दैनिक भोजन

रक्त में क्षारत्व और अम्लत्व की उपस्थिति की दृष्टि से संतुलित भोजन–

किसी के शरीर का रक्त तभी शुद्ध समझा जाता है जब उसमें रासायनिक प्रक्रिया के फलस्वरूप 80 प्रतिशत क्षारमय और 20 प्रतिशत अम्लमय हो अर्थात् यदि हमारे प्रतिदिन के भोजन में एक हिस्सा अम्लधर्मी खाद्य पदार्थ हों तो उसमें उसका

चौगुना क्षारधर्मी पदार्थ होना चाहिए। तभी हमारे आरोग्य की रक्षा सम्भव हो सकती है। जब रूधिर में क्षारधर्मी की कमी और अम्ल बढ़ जाता है तो प्रकृति रूधिर औरशरीर के अन्य तन्तुओं में से क्षार को खींचकर शरीर के पोषण के काम में उसे लगाने के लिये बाध्य होती है, नतीजा यह होता है कि शरीर का रूधिर और अन्य तन्तु जिनसे क्षारत्व खींच लिया जाता है, निःसत्व, निर्बल और रोगी हो जाता है। स्नायु और मज्जा की रचना के लिये अम्ल की रक्त में मात्रा अल्प होनी चाहिये। इससे अधिक अम्ल का रूधिर में होना तो उसका विषाक्त बनना और अत्यन्त भयावह है।

इसके विपरीत रूधिर में क्षारत्व वह वस्तु होती है, जो हमें रोगों से लड़ने की शक्ति प्रदान करती है। शरीर में क्षारत्व की कमी या न होने पर हम एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकते। ऐसा इसलिये होता है क्योंकि क्षारत्व की कमी या अभाव हो जाने से उसमें स्थित श्वेतकणों की हमारे उत्तम स्वास्थ्य के लिये काम करने की शक्ति क्षीण हो जाती है। तथा शरीर यंत्र को सुचारू रूप से परिचालित करने वाली सारी व्यवस्था ही नष्ट–भ्रष्ट हो जाती है। मधुमेह, नेत्ररोग, सभी प्रकार के ज्वर, वातव्याधियाँ, पेट के रोग तथा हर प्रकार की पाचन की खराबियाँ आदि सभी रोग केवल रक्त में क्षार की कमी हो जाने से ही उत्पन्न होते हैं। इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे भोजन के चुनाव में क्षारधर्मी और अम्लधर्मी खाद्यों के क्रमशः 4 और 1 के अनुपात की कितनी बड़ी महत्ता और उपयोगिता है।

क्षारधर्मी खाद्य पदार्थ	**अम्लधर्मी खाद्य पदार्थ**
हरी मटर, आलू छिल्का सहित गेहूँ, चावल मूली पत्ती समेत, प्याज, शहद चीनी, मिश्री गुड़, मक्खन, कच्ची गरी, किशमिश तली चीजें गन्ना, गाजर, सलाद, हरा चना मसाले।	मांस, मछली, अण्डा, पनीर, रोटी, दालें, सूखा मेवा, सफेद मुरब्बे, अचार, खटाई, सिरका, उबला हुआ दूध, खीर,

मोटे हिसाब से संतुलित भोजन–

मोटे हिसाब से यदि हम अपने भोजन में कार्बोज 2/3 भाग, वसा 1/6 भाग तथा प्रोटीन, लवण व विटामिन 1/6 भाग रखते हैं तो यह एक साधारण मनुष्य के लिये संतुलित भोजन समझा जा सकता है। परन्तु मनुष्य की आयु, पेशा, मौसम एवं देश व स्थान के विचार से इस प्रकार के भोजन में कमी–अधिकता का होना स्वाभाविक है।

15.4 परिभाषायें–

प्रिय विद्यार्थियों, संतुलित आहार को निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है –" संतुलित आहार उसे कहते हैं, जिसमें सभी भोज्यावयक आवष्यक मात्रा में उपस्थित हों ताकि उनसे उपयुक्त मात्रा में शक्ति प्राप्त होने के साथ शरीर की वृद्धि तथा रख–रखाव संबंधी सभी पोषक तत्व प्राप्त हों और आहार अनावष्यक रूप से मात्रा में अधिक भी न हो।" (सिंह रामहर्ष, 2011, पृ. सं. 129)

15.5 संतुलित आहार को प्रभावित करने वाले कारक

संतुलित आहार विभिन्न कारकों से प्रभावित होता है। यह कारक निम्नलिखित है–

(1) उम्र,
(2) लिंग,
(3) स्वास्थ्य,
(4) क्रियाशीलता,
(5) जलवायु व मौसम तथा
(6) विशेष शारीरिक अवस्था।

1. उम्र

उम्र से संतुलित आहार प्रभावित होता है। बच्चों को उनके शरीर के भार की तुलना में प्रौढ़ व्यक्तियों से अधिक तत्वों की आवश्यकता होती है। संतुलित आहार में ऊर्जा प्रदान करने वाले तत्व, निर्माणक तत्व व सुरक्षात्मक तत्वों की आवश्यक मात्रा सम्मिलित होती

है। बच्चों को ऊर्जा प्रदान करने वाले तत्वों की अधिक आवश्यकता उनके नये ऊतकों में ऊर्जा संग्रह के लिए होती है। बाल्यावस्था तथा वृद्धावस्था में शरीर की संवेदनशीलता बढ़ जाने के कारण सुरक्षात्मक तत्वों की अधिक आवश्यकता होती है। वृद्धावस्था में शरीर के शिथिल हो जाने के कारण क्रियाशीलता कम हो जाती हैं, अतः ऊर्जा की कम आवश्यकता होती है।

2. **लिंग–** स्त्रियों व पुरूषों के संतुलित आहार में अन्तर होता है। पुरूषों की पोषकता तथा आवश्यकता स्त्रियों की अपेक्षा अधिक होती है। इसका कारण पुरूषों का आकार, भार, क्रियाशीलता का अधिक होना है। क्रियाशीलता व आकार, भार अधिक होने के कारण उन्हें ऊर्जा की आवश्यकता होती है।
3. **स्वास्थ्य–** व्यक्ति का स्वास्थ्य भी पोषक तत्वों की आवश्यकता को भी प्रभावित करता है। अस्वस्थता की स्थिति में क्रियाशीलता कम होने के कारण एक स्वस्थ व्यक्ति की अपेक्षा कम ऊर्जा की आवश्यकता होती है, पर यदि दोनों व्यक्तियों की क्रियाशीलता समान हो तो अस्वस्थ व्यक्ति की बी.एम.आर. अधिक होने के कारण अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है। अस्वस्थ व्यक्ति के शरीर में टूट–फूट अधिक होने के कारण निर्माणक व सुरक्षात्मक तत्वों की आवश्यकता भी अधिक होती है, परन्तु पाचन क्रिया कमजोर हो जाने के कारण भोजन के रूप में अन्तर होता है।
4. **क्रियाशीलता–** अधिक शारीरिक क्रियाशील व्यक्ति को अधिक पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। जो व्यक्ति जितना अधिक क्रियाशील होगा, उसको ऊर्जा की आवश्यकता भी उतनी अधिक होती है। क्रियाशीलता अधिक होने के कारण शरीर में टूट–फूट भी अधिक होती है, अतः अधिक क्रियाशील व्यक्ति को निर्माणक तत्वों की आवश्यकता भी अपेक्षाकृत अधिक होती है।
5. **जलवायु और मौसम–** जलवायु और मौसम भी आहार की मात्रा को प्रभावित करते हैं। गर्म प्रदेश के देशवासियों की अपेक्षा ठण्डे प्रदेश के देशवासियों को अधिक आहार की आवश्यकता होती है। ठण्डे देश के निवासी ऊर्जा का उपयोग शरीर का ताप बढ़ाने के लिए भी करते हैं, इसके अतिरिक्त ठण्डे देश के निवासी अपेक्षाकृत अधिक क्रियाशील होते हैं। इसी प्रकार सर्दियों के मौसम में उष्मा के रूप में ऊर्जा लेने के कारण अधिक भोजन की आवश्यकता होती है।

6 विशेष शारीरिक अवस्था– कुछ विशेष शारीरिक अवस्थाएँ भी आहार की मात्रा व पोषक तत्वों की आवश्यकता को प्रभावित करती हैं, जैसे– गर्भावस्था, दुग्धापान अवस्था, ऑपरेशन के बाद की अवस्था, जल जाने के बाद आदि।

15.6 संतुलित आहार कैसा हो

(1) संतुलित आहार में व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अनुसार पोषक तत्वों की मात्राएँ शामिल होनी चाहिए।
(2) उसमें सभी पोषक तत्वों को स्थान मिलना चाहिए।
(3) संतुलित आहार ऐसा होना चाहिए कि विशेष पोषक तत्व साथ–साथ हो। जैसे– प्रोटीन और वसा, प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट आदि।
(4) उस आहार में सभी पोषक तत्व उचित अनुपान में होने चाहिए।
(5) आहार उचित मात्रा में ऊर्जा प्रदान करने वाला होना चाहिए।
(6) शरीर में एकत्रित होने वाले पोषक तत्वों की मात्रा आहार में अधिक होनी चाहिए।
(7) संतुलित आहार में सभी भोज्य समूहों से भोज्य पदार्थ शामिल होने चाहिए।
(8) आहार आकर्षक, सुगन्धित, स्वादिष्ट एवं रूचिकर होना चाहिए।

15.7 संतुलित आहार के चार्ट (तालिका) सम्बन्धित आवश्यक बातें–

संतुलित आहार के संबंध में बहुत कुछ पढ़ने को मिलता है। देश–विदेश की सरकारों के सम्बन्धित विभागों ने हर उम्र के वर्ग के पुरूषों, स्त्रियों, बच्चों, गर्भवती माताओं के लिये संतुलित आहार के चार्ट प्रकाशित किये जाते हैं जिनमें बताया जाता है कि इतनी प्रोटीन, इतनी शर्करा, इतने फल, इतनी सब्जियाँ प्रतिदिन खानी चाहिये जिससे स्वास्थ्य ठीक रहे।

इस संबंध में बहुत अनुसंधान करने पर पता लगाया कि वह संतुलित आहार के उन चार्टों से बिल्कुल भिन्न है। चाहे वे चार्ट हमारे देश के हैं या विदेश के, वास्तविक जीवन से उनका कुछ भी संबंध नहीं बैठता।

संतुलित आहार की तालिका के अनुसार आवश्यक उष्णांक प्राप्त करना, मनुष्य की पाचन शक्ति और मानसिक स्थिति पर निर्भर करता है। बहुत से बच्चों में देखा गया है कि वे मस्तमौला हैं, उनके माता–पिता को भी कोई जानकारी नहीं है कि भोजन में क्या–क्या पदार्थ देने चाहिए। जो कुछ उनकी आर्थिक स्थिति से सुलभ होता है, वे खाते हैं और बच्चों को खिलाते हैं, परन्तु शरीर बिल्कुल स्वस्थ रहता है, वजन भी ठीक रहता है।

इसी प्रकार धनवान घराने के बहुत से बच्चे खासतौर पर लड़कियाँ संतुलित आहार की तालिका के हिसाब से बहुत कम खुराक खाते हैं। फिर भी पूरी शक्ति व पूरा वजन बना रहता है। देखने में शरीर भी स्वस्थ लगता है। इसके विपरीत भी ऐसे धनवान परिवार वाले भी हैं जो अच्छा खाते हें, पूरी सुविधा भी है, कोई कमी नहीं है, परन्तु उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता, वजन या तो बढ़ता नहीं या बहुत बढ़ जाता है।

वास्तविकता तो यह है कि हर व्यक्ति अपने भोजन का चार्ट स्वयं निश्चित कर सकता है।

15.8 संतुलित आहार के घटक–

इसके घटकों में दो तरह के प्रमुख घटक आते हैं–

1. उपापचयी नियंत्रक तथा 2. ऊर्जा उत्पादक घटक

उपापचयी नियंत्रक "जल"– जीवन के लिये जल अति आवश्यक है। जीवों के शरीर में जल की मात्रा 50 प्रतिशत से 85 प्रतिशत तक होती है। मनुष्य के शरीर का 70 प्रतिशत भार जल के कारण है। अपनी विशेष आण्विक रचना के कारण जल जीवों के शरीर के अंदर निम्न कार्य करता है–

- जल एक आदर्श विलायक है। कोशिकाओं में अनेक पदार्थ जल में ही घुले रहते हैं।
- बहुत से पदार्थ जीव के शरीर में और कोशिकाओं में अन्दर व बाहर की ओर जल में घुलित अवस्था में होता है।
- बड़े अणु पानी में मिलने पर छोटे अणुओं में टूट जाते हैं।
- यह कोशिकाओं में उपापचयी क्रियाओं की गति को तेज करता है।

जल में मुख्य कार्य–

- संरचना–जीवद्रव्य का मुख्य अवयव है।
- पदार्थों का परिवहन।
- पसीने इत्यादि द्वारा शरीर के तापक्रम को कम करना।
- मूत्र द्वारा अपशिष्ट पदार्थों का उत्सर्जन–समस्थैतिकता बनाये रखना।

खनिज लवण–

यह शरीर में कार्बनिक एवं अकार्बनिक अणुओं एवं आयनों के रूप में होते हैं। शरीर में पाये जाने वाले मुख्य खनिज लवण इस प्रकार हैं।

गंधक – गंधकयुक्त एमीनों एसिड प्रोटीन निर्माण में सहायक हैं।
कैल्शियम– फॉस्फोरस के साथ मिलकर हड्डियों व दाँतों के निर्माण में सहायक।
फॉस्फोरस– कोशिका कला की संरचना हेतु फॉस्फोलिपिड का निर्माण।
सोडियम तथा पोटैशियम– कोशिका के अन्दर तरल की मात्रा को नियंत्रित करना।
क्लोरीन– पाचन रस में हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का मुख्य अवयव।
लौह– ऑक्सीजन संवहन, हीमोग्लोबिन का प्रमुख भाग।
आयोडीन– थॉयरॉक्सिन हार्मोन का प्रमुख अवयव, उपापचय पर नियंत्रण।
मैंगनीज– वसीय अम्लों का ऑक्सीकरण।
मॉलिण्डेनम– नाइट्रोजन द्वारा नाइट्रोजन स्थिरीकरण में सहायक।

ऊर्जा उत्पादक घटक

1. कार्बोहाइड्रेट– रासायनिक रूप से ये जलयोजित कार्बनिक यौगिक या पॉलीहाइड्रॉक्सी एल्डिहाइड्स व कीटोन्स होते हैं। कार्बोहाइड्रेट को शर्करा वाले यौगिक भी कहा जाता है। भोजन में यह घुलनशील शर्कराओं तथा अघुलनशील मंड के रूप में होते हैं। अधिकांश कार्बोहाइड्रेट शरीर में ऊर्जा उत्पादन के काम आते हैं।

कार्य–

- यह जीवों में मुख्य ऊर्जा स्रोत है।
- श्वसन के समय ग्लूकोस के टूटने से ऊर्जा उत्पन्न होती है।
- अनेक जन्तुओं में रूधिर में ग्लूकोस ही रूधिर शर्करा के रूप में होती है। कोशिकाएँ इसे ऑक्सीकृत करके ऊर्जा प्राप्त करती हैं।
- स्तन ग्रंथियों में ग्लूकोस तथा गैलेक्टोस दूध की लैक्टोस शर्करा बनाते हैं।
- मांड व ग्लाइकोजन के रूप में कार्बोहाइड्रेट का शरीर में संग्रह किया जाता है। इसे संचित ईंधन कहते हैं।

2. वसायें– वसायें कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन के यौगिक हैं, किन्तु इनमें ऑक्सीजन परमाणुओं की संख्या कार्बोहाइड्रेट की अपेक्षा कम होती है। रासायनिक रूप में ये वसा अम्ल तथा ग्लिसरॉल के एस्टर हैं।

कार्य–

- शरीर को ऊर्जा प्रदान करते हैं, भोजन का महत्वपूर्ण घटक है।
- ये जीवधारियों में संचित ऊर्जा के स्रोत के रूप में त्वचा के नीचे एडीपोज ऊतक की कोशिकाओं में संचित रहते हैं। यहाँ पर रहकर ये ताप अवरोधक का कार्य करते हैं और ठण्ड से बचाते हैं।
- विटामिन ए, डी, तथा ई के लिये विलायक का कार्य करते हैं।

3. प्रोटीन्स– प्रोटीन अधिक आण्विक भार वाले अत्यधिक जटिल रासायनिक यौगिक हैं। ये जीवधारियों में उनके शरीर में मुख्य घटक के रूप में पाये जाते हैं। ये कोशिकाओं के घटकों का संरचनात्मक ढांचा बनाते हैं। तथा जीवद्रव्य में प्रचुर मात्रा में पाये जाने वाले ठोस पदार्थ हैं। ये शरीर का 14 प्रतिशत प्रोटीन होते हैं।

कार्य–

- एन्जाइम के रूप में, हार्मोन्स के रूप में।
- ये इम्यूनोग्लोब्यूलिन्स हैं। ये बाह्य पदार्थ के प्रभाव को समाप्त करते हैं।
- रूधिर में पाये जाने वाले Thrombin तथा Librinogen प्रोटीन चोट लगने पर रूधिर का थक्का बनने में सहायक होते हैं।
- **परिवहन–** कुछ प्रोटीन कुछ विशिष्ट प्रकार के अणुओं से जुड़कर रूधिर द्वारा उनके परिवहन में सहायक है। उदाहरण के लिये हीमोग्लोबिन फेफड़ों से ऑक्सीजन लेकर ऊतकों को पहुँचाता है।

4. न्यूक्लिक एसिड– ये प्यूरिन एवं पाइरिमिडनी न्यूक्लिओटाइड्स के रैखिक क्रम में विन्यसित बहुलक हैं। ये बहुत अधिक आण्विक भार व जटिल संरचना वाले कार्बनिक अणु हैं।

कार्य–

- DNA जीवों के आनुवंशिक लक्षणों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में पहुँचाता है।
- कुछ न्यूक्लियोटाइड्स सहएन्जाइम के रूप में कार्य करते हैं।
- जीवों के शरीर की मूल रूपरेखा DNA द्वारा ही बनायी जाती है।
- न्यूक्लियोप्रोटीन्स अन्य पदार्थों से अपने समान पदार्थ संश्लेषित कर सकते हैं।

5. विटामिन–

विटामिन जटिल कार्बनिक यौगिक हैं। यद्यपि इनकी अल्प मात्रा ही विभिन्न उपापचय क्रियाओं को समान रूप से चलाने के लिये काफी होती है, किन्तु इनकी अनुपस्थिति में उपापचय असम्भव है। विटामिन ऊर्जा प्रदान नहीं करते, वरन् सभी ऊर्जा–सम्बन्धी रासायनिक क्रियाओं का नियंत्रण करते हैं। इनकी कमी से त्रुटिपूर्ण उपापचय के कारण प्राणियों में अनेक रोग होते हैं। इसी कारण इन्हें वृद्धि तत्व कहते हैं। प्राणी विटामिन का संश्लेषण नहीं करते, इनकी प्राप्ति का एकमात्र स्रोत भोजन है।

15.9 संतुलित आहार का महत्व–

प्रिय विद्यार्थियों, अबतो आप जान ही गये होंगे कि संतुलित आहार के बारे में जानना और स्वस्थ रहने के लिये संतुलित आहार लेना कितना आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण है।

संतुलित आहार के महत्व को आप निम्न बिन्दुओं के माध्यम से समझ सकते है–

(1) शरीर को पोषक तत्व प्रदान करना
(2) अपर्याप्त मात्रा में भोजन मिने की अवधि में शरीर को पोषक तत्व प्रदान करना।
(3) शरीर निर्माण एवं बुद्धि हेतु आवश्यक।
(4) शारीरिक क्रियाओं का सुचारू संचालन।
(5) शरीर की सुरक्षा के लिये।
(6) धातुनिर्माण के लिये आवश्यक।
(7) शक्ति निर्माण हेतु आवश्यक।
(8) समग्र स्वास्थ्य की दृष्टि से आवश्यक।

इन सभी बिन्दुओं का विस्तृत विवेचन निम्नानुसार है–

(1) शरीर को पोषण तत्व प्रदान करना–

प्रिय पाठकों, संतुलित आहार के कारण शरीर को सभी पोषक तत्व जैसे कि कार्बोहाइड्रेट, वसा, प्रोटीन, विटामिन, खनिज लवण तथा जल पर्याप्त एवं समुचित मात्रा में प्राप्त होते है।

(2) अपर्याप्त मात्रा में भोजन मिलने की अवधि में शरीर को अतिरिक्त पोषक तत्व प्रदान करना–

संतुलित आहार में पोषक तत्व अतिरिक्त मात्रा में भी उपलब्ध रहते है। कुद ऐसा इसलिये ताकि जब कभी भोजन पर्याप्त मात्रा में प्राप्त न हो सके तो शरीर को इससे किसी भी प्रकार की क्षति ना हो। उसे पर्याप्त मात्रा में उर्जा मिलती रहे।

(3) शरीर निर्माण एवं बुद्धि हेतु आवष्यक–

शरीर संबर्धन की दृष्टि से भी संतुलित आहार का अत्यन्त महत्व है। आहार के संतुलित होने पर ही शरीर का ठीक ढंग से निर्माण तथा उम्र के अनुसार सही शारीरिक विकास होता है।

(4) शारीरिक क्रियाओं का सुचारू संचालन–

जिस प्रकार किसी विद्युत उपकरण को चलाने के लिये बिजली की आवष्यक्ता होती है। उसी प्रकार शरीर की समस्त गतिविधिया ठीक–ठीक चलती रहे, इसके लिये पर्याप्त मात्रा में उर्जा की आवष्यक्ता होती है, जो संतुलित आहार से ही प्राप्त होती है।

(5) शरीर की सुरक्षा के लिये–
यदि आहार हमारा संतुलित हो तो इससे शरीर की रोग प्रतिरोध क्षमता का भी विकास होता है। अतः रोगों से शरीर की सुरक्षा की दृष्टि से भी संतुलित आहार का विषेष महत्व है।
(6) धातुनिर्माण हेतु आवश्यक–
सप्त धातुओं(रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा,शुक्र) के पोषक के लिये आहार में सभी पोषक तत्वों का समुचित मात्रा में होना अत्यन्त आवष्यक है।
(7) शक्ति या उर्जा निर्माण हेतु आवश्यक– शरीर हमारा बलवान या शक्तिषाली तभी बनता है, जब आहार संतुलित हो। अतः उर्जा के निर्माण की दृष्टि से संतुलित आहार आवष्यक है।
(8) समग्र स्वास्थ्य की दृष्टि से आवश्यक–
जिज्ञासु पाठको, जैसा कि आप अब तक यह समझ ही चुके हैं कि आहार का संबंध केवल हमारे शरीर से ही नहीं बल्कि यह हमारे मन, भावनाओं और यहाँ तक की हमारी आत्मा पर भी प्रभाव डाले बिना नहीं रहता है क्योंकि आहार का सूक्ष्म प्रभाव भी होता है, जो हमें आन्तरिक रूप से प्रभावित करता है। अतः समग्र स्वास्थ्य (शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आध्यात्मिक) की दृष्टि से अर्थात् न केवल हमारा शरीर वरन् इन्द्रियों, मन एवं आत्मा भी प्रसन्न रहे, इसके लिये संतुलित आहार आवष्यक है।
अतः स्पष्ट है कि संतुलित आहार का व्यावहारिक जीवन की दृष्टि से अत्यधिक महत्व है।

अभ्यासार्थ प्रष्न–

प्रिय विद्यार्थियों, नीचे अभ्यास हेतु कुछ कथन दिये गये है। जो कथन सत्य हो, उनके सामने दिये गये कोष्ठक में सही () का चिन्ह लगायें तथा जो कथन असत्य हो उनके सामने कोष्ठक () में गलत का चिन्ह लगायें–

(1) संतुलित आहार में सभी पोषक तत्व समुचित मात्रा में होते हैं। ()
(2) संतुलित आहार जलवायु एवं मौसम से प्रभावित होता है। ()
(3) संतुलित आहार विषिष्ट शारीरिक अवस्था से प्रभावित नहीं होता है। ()
(4) किसी व्यक्ति की क्रियाषीलता संतुलित आहार को प्रभावित करती है। ()
(5) संतुलित आहार स्वादिष्ट एवं रूचिकर होना चाहिए। ()
(6) मनुष्य के शरीर को 70 प्रतिषत भार खनिज लवण के कारण है। ()
(7) क्लोरीन एक प्रकार का खनिज लवण है। ()
(8) संतुलित आहार के घटक दो प्रकार के है। ()
(9) कार्बोहाइड्रेट संतुलित आहार का उर्जा उत्पादक घटक है। ()
(10) जीवों के शरीर की मूल रूपरेखा DNA द्वारा बनायी जाती है। ()

15.10 सारांश–

प्रिय विद्यार्थियों, उपर्युक्त ईकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप जान गये होंगे कि संतुलित आहार से क्या अभिप्राय है। वस्तुतः जिस भोजन में आहार के सभी घटक जैसे कि कार्बोहाइड्रेट, बजा, प्रोटीन, विटामिन, खनिज लवण एवं जल समुचित मात्रा में उपलब्ध हो तथा साथ ही ये सभी पोषक तत्व कुछ अतिरिक्त मात्रा में भी शरीर में विद्यमान हो, जिससे कि जब कभी पर्याप्त मात्रा में भोजन उपलब्ध न हो पाये तो उसकी श्रतिपूर्ति हो सकें तथा शरीर किसी प्रकार की कमजोरी या रोग से ग्रस्त न हो। संतुलित आहार से हमारे शरीर को उर्जा प्राप्त होती है, सप्त धातुएँ (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र) पुष्ट होती है, शरीर की रोग प्रतिरोध क्षमता का विकास होता है तथा इसके साथ ही मानसिक भावनात्मक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य का भी विकास होता है।
अतः स्पष्ट है कि संतुलित आहार का हमारे संमग्त स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्यधिक महत्व हैं

15.11 शब्दावली

पोषक तत्व – पोषण प्रदान करने वाले तत्व
रूधिर – खुन। रक्त
वातव्याधियाँ – वात के प्रदुषित होने से उत्पन्न होने वाले शारीरिक रोग।
उत्सर्जन – निष्कासन अर्थात– बाहर निकलना
अपशिष्ट पदार्थ – विजातीय द्रव्य, जिनका शरीर से बाहर निकलना आवष्यक होता है।

15.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

(1)सत्य (2) सत्य (3) असत्य (4) सत्य (5) सत्य (6) असत्य (7) सत्य(8) सत्य (9) सत्य (10) सत्य

15.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1) गुप्ता, राजकुमारी।(2010) आहार चिकित्सा। पापुलर बुक डिपो, जयपुर
(2) शर्मा, सुरभि (2006)। आहार ही औषधि। रामराज्य मंदिर प्रकाषन, दिल्ली
(3) चौहान, गणेशनारायण।(2001) भोजन के द्वारा चिकित्सा, पापुलर बुक डिपो, जयपुर
(5) श्री आदित्य। (2005) योग चिकित्सा विज्ञान। योग जीवन धाम ट्रष्ट, हरिद्वार
(6) सिंह, रामहर्ष। (2011) स्वस्थवृत विज्ञान। चौखम्बा, संस्कृत प्रतिष्ठान, बंगलो रोड दिल्ली।
(7) सिंह, रामहर्ष (2006) योग एवं यौगिक चिकित्सा। चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, बंगलो रोड दिल्ली।
(8) जिन्दल, राकेश। (2005) प्राकृतिक आयुर्विज्ञान। आरोग्य सेवा प्रकाषन, पंचवटी, उमेश पार्क, मोदीनगर, उत्तरप्रदेष।

15.14 निबंधात्मक प्रश्न–

प्रश्न–1 संतुलित आहार से आप क्या समझते है? संतुलित आहार को प्रभावित करने वाले कारकों को स्पष्ट कीजिए।
प्रश्न–2 संतुलित आहार किस प्रकार का होना चाहिये। इसके महत्व का विस्तृत विवेचन कीजिए।
प्रश्न–3 संतुलित आहार के घटकों पर प्रकाश डालिए।

इकाई–16 पोषण की अवधारणा एवं आहार का पाचन

16.1 प्रस्तावना
16.2 उद्देश्य
16.3 पोषण की अवधारणा
16.4 पोषण एवं स्वास्थ्य
16.5 आहार का पाचन
16.6 पोषक तत्त्वों का कार्य प्राप्ति स्त्रोत एवं अवशोषण
16.7 सारांश
16.8 शब्दावली
16.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
16.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
16.11 निबंधात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

मानव शरीर को स्वतंत्र बनाये रखने के लिये एवं जीवित रखने के लिये भोजन की आवश्यकता होती है। सभी प्राणियों, जीवधारियों में भोजन की लगभग दैनिक आवश्यकता होती है। आहार से तात्पर्य उस 'आहार' से है जो पोषक तत्त्वों को प्रदान करें। वास्तव में आहार उसे कहा जाता है जो पाचन संस्थान में जाकर पाचनोपरान्त जीवन शक्ति उत्पन्न करें, रस रक्तादि धातुओं को पोषण करें, शरीर का विकास करें, शरीर की क्षतिपूर्ति करें, जिससे शारीरिक एवं मानसिक शांति, आनन्द, एवं संतृप्ति प्राप्त हो वह आहार पोषण जन्म, अमृत तुल्य आहार होता है। शरीर के लिए जो पथ्यकारी हो, कल्याणकारी हो आवश्यकतानुसार पोषक तत्त्वों की पूर्ति करने वाला आहार है। भारतीय दर्शन में अन्न को ''प्राण'' की संज्ञा दी है। बल वर्ण ओज अन्न से ही प्राप्त होता है। पोषण द्वारा शारीरिक एवं मानसिक कार्य क्षमता एवं क्रियाशीलता संतुलित रहती है।

16.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में हम जान सकेंगें कि पोषण की अवधारणा क्या है तथा आहार का पाचन कैसे होता है।

16.3 पोषण की अवधारणा

पोषण अर्थात Nutration हमारे द्वारा सेवित किये गये आहार द्रव्यों तथा शरीर द्वाराउसके किये गये आवश्यकतानुसार उपयोग की वैज्ञानिक अध्ययन की प्रक्रियाओं को पोषण कहते है। पोषण के अन्तर्गत संतुलित आहार, पोषक तत्त्व, भोजन के कार्य भोजन के पाचनोपरान्त शरीर में उपयोग, भोजन एवं रोगेां का परस्पर संबंध आहार द्रव्यों का आर्थिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रभाव आदि सभी महत्त्वपूर्ण विषय पोषण के अन्तर्गत आते है।

पोषण Nutration के अंतर्गत प्रधान रूप से आहार द्रव्यों का सेवन करना, शरीर में पाचन होना तथा पाचनोपरान्त सार भाग का अवशोषण होना, शरीर में उसका उपयोग होना आदि पोषण की अवधारणा है। पोषण द्वारा पूर्ण रूप से शारीरिक एवं मानसिक आरोग्यता प्राप्त होती है। स्वास्थ्य से तात्पर्य भी यह है कि ''केवल बीमारी नहीं होना, शारीरिक कमजोरी का नहीं होना, ही स्वास्थ्य नहीं है बल्कि शारीरिक, मानसिक, एवं सामाजिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से भी पूर्ण स्वस्थ होना स्वास्थ्य कहलाता है। आर्युवेद शास्त्र में वैद्याचार्य कहते है कि शारीरिक स्वास्थ्य हेतु वातपित्त कफ त्रिदोष, समान मात्रा में हों, शरीर के तेरह प्रकार की अग्नि सम मात्रा में हो पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश की भूताग्नियां तथा सातः– रस, रक्त, मांस, भेद, अस्थि, मज्जा,एवं शुक्र की

धातु अग्नियां एवं एक प्रधान जाठराग्नि कुल 13 प्रकार की अग्नियां) शरीर की सात धातुऐं रस धातु, रक्त धातु, मांस धातु, भेद धातु, अस्थि धातु, मज्जा धातु, शुक्र धातु, ये सम मात्रा में हो, जिसके शरीर का मल, मूत्र, थूक, पसीना, आदि उत्सर्जित किये जाने वाले द्रव्य समान मात्रा में हों तथा सम्यक उनका निर्हरण (निष्कासन) हो शारीरिक आरोग्यता में माना जाता है। मानसिक स्वस्थता हेतु जिसकी आत्मा इन्द्रियां (5 कमेन्द्रियां एवं 5 ज्ञानेन्द्रियां) एवं प्रधान इन्द्रियों में ''मन'' जिसका प्रसन्न हो वे मानसिक रूप से स्वस्थ कहे जाते है। तात्पर्य यह है कि पूर्ण रूप से स्वस्थ व्यक्ति के शारीरिक एवं मानसिक दोनों पक्षों पर आधारित है।

16.4 पोषण एवं स्वास्थ्य

पोषण एवं स्वास्थ्य का परस्पर विशेष संबंध है। पोषण के अन्तर्गत संतुलित आहार के प्रमुख घटकों यथाः–प्रोटीन, विटामिन, कार्बोहाईड्रेट, खनिज लवण, वसा, जल आदि का समायोजन है। विकासशील एवं अविकसित राष्ट्रों के अन्तर्गत विटामिन ए की कमी के कारण बच्चों की आखें कमजोर हो जाती है। यहां तक कि अन्धे तक हो जाते है। इसी प्रकार यदि अति पोषण किया जाता है तो संतर्पण जन्य रोग होकर मोटापा, उच्च व्यान आदि से मानव ग्रसित हो जाता है। तेज मिर्च मसाले, गरिष्ठ आहार, तैलीय आहार तरीदार, तला हुआ भोजन, मिष्ठाण का अधिक प्रयोग से मोटापा आदि जाते हैं।

शरीर के अंतर्गत पोषण में विद्यमान यदि एक या एक से अधिक पोषक तत्त्वों की कमी रहती है तो वह कुपोषण कहलाता है। इसी प्रकार यदि एक या एक से अधिक पोषक तत्त्वों का अति मात्रा या अधिक मात्रा में सेवन किया जाये तो वह अतिपोषण भी कुपोषण की श्रेणी में आता है जिसे मोटापा थायोराइड आदि रोग होते है। तात्पर्य यह है कि आहार द्रव्यो में पोषक तत्त्वों की कमी एवं अधिकता दोनों ही कुपोषण के अंतर्गत आती है। इसी प्रकार यदि पोषक तत्त्वों में प्रोटीन की कमी हो जाती है तो हाईपोप्रोटीनीमिया हो जाता है जिसके कारण दौर्बल्यता आती है, स्मृति दौर्बल्य होता है संक्रमण बढ़ने का खतरा होता है बच्चों का विकास रूक जाता है। यकृत एवं वृक्क जन्य रोग होते हैं। अतः पोषक तत्त्वों की स्वास्थ्य की दृष्टि से निरोगी काया हेतु महती आवश्यकता है।

कैल्सियम की कमी के कारण दांत एवं हड्डियां कमजोर हो जाती है। फास्फोरस नामक खनिज लवण की कमी से तन्त्रिका तंत्र, हड्डियां दांत, बुध्दि आदि कमजोर हो जाती है। सोडियम की कमी से निर्जलीकरण हो जाता है। ब्लडप्रेशर कम हो जाता है। पोटेशियम की कमी से पेशियां कमजोर हो जाती है। आयोडीन की कमी से गलगण्ड नाम घेंघा रोग हो जाता है। विटामिन ई की कमी से पुरूषों में नपुंसकता तथा स्त्रियों में बन्ध्यता या बांझपन या गर्भस्त्राव /गर्भपात होने का खतरा मंडराता रहता है। विटामिन के की कमी से रक्त स्कंदन में कमी आकर लम्बे समय तक रक्तस्त्राव होता रहता है। जिससे खून की कमी हो जाती है। विटामिन बी1 की कमी से तंत्रिका शोथ हो जाता है।

भोजन एवं पोषणः– सामान्यतया भोजन के द्वारा शरीर में निम्न कार्य सम्पादित होते है।शरीर का निर्माण एवं विकास करना।

1. शरीर की सुरक्षा एवं रोगों से बचाव करना।
2. शरीर को उर्जा प्रदान करना।
3. शरीर में उष्मा की पूर्ति करना।
4. शरीर में शक्ति उत्पन्न करना।
5. जीवद्रव्य का निर्माण करना।

6. शरीर में क्षतिपूर्ति दुर्घटनाजन्य उतकों एवं कोशिकाओं की टूट फूट करना। उदाहरण के लिये घावें को भरना आदि।
7. रोगों से रक्षा करनाः– विटामिन एवं खनिज लवण आदि पोषक तत्त्वों के द्वारा रोगाणुओं से मुक्ति प्राप्त होती है।
8. भोजन द्वारा ''इम्यूनिटी पावर'' सुरक्षित एवं बढने से रोगों से बचाव का कार्य आसानी से हो जाता है।
9. शरीर की क्रियाओं को सुचारू रूप से नियमित संचालित करना।
10. शारीरिक क्रियाओं अर्थात श्वसन लेना, रक्त संचार नियमित करना, उठना बैठना चलना, दौड़ना आदि में सहयोग करना।
11. शरीर को संक्रमण से बचाना।
12. भोजन में सेवित आहार के अन्तर्गत प्रोटीन आदि द्वारा शरीर की वृद्वि एवं टूट फूट की मरम्मत करना।
13. सामाजिक कार्यों में आहार के द्वारा त्योहारों पर्वों खुशी के मौके पर एक जैसा भोजन करना विशेष प्रकार का आनन्द प्रदान करता है।

पोषण का सामाजिक, आर्थिक–मनौवैज्ञानिक महत्त्व
सात्विक भोजन के कार्यः

1. मानसिक प्रसन्नता बढाता है।
2. बौध्दिक क्षमता बढाता है।
3. उर्जा एवं बल बढाता है।
4. प्रसन्नता एवं शांतिदायक होता है।
5. सकारात्मकता एवं सृजनात्मक शक्ति बढाता है।
6. दीर्घ जीवन देने वाला होता है।
7. आयु, शक्ति, स्वास्थ्य देने वाला होता है।
8. उत्साह, क्षमता, शांति, शील जागरूकता बढती है।

राजसिक भोजन

1. आवेश बढाने वाला
2. कामुकता बढ़ाने वाला
3. सौन्दर्य गंध आदि में रूचि वाला
4. बीमारी पैदा करने वाला, गति चंचलता, अस्थिरता वाला
5. द्वेष, पैदा करने वाला

तामसिक भोजन

1. शरीर को आलसी बनाने वाला
2. शरीर को बलवान/मोटा बनाने वाला
3. आधा पका हुआ भोजन
4. स्वादहीन
5. बासी–झूठा, अशुध्द आहार

6. आलस्य, निद्रा, क्रोध आदि विकारों को बढ़ाने वाला

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते है कि जो उत्तम स्वास्थ्य के आकांक्षी है वे उत्तम प्रकार का सात्विक भोजन करें। जो काम शक्ति प्रिय हो, मानसिक, शारीरिक स्वास्थ्य के प्रति संवेदन शील हो वे राजसिक भोजन को तथा जो केवल शरीर को बलवान बनाना चाहते हो वे तामसिक भोजन करते हुए उसका स्चछदन करें।

आत्मिक स्वास्थ्य–

1. नैतिक नियम तथा धर्मपूर्वक एक आचरण करना।
2. सत्कार्य करना।
3. अच्छाई की भावना का विकास
4. कर्तव्य एवं जिम्मेदारियों के प्रति अनुशासित होना।
5. दूसरों को हानि नहीं पहुंचाना।
6. तन एवं मन की पवित्रता शुध्दता रखना।,
7. स्वाध्याय युक्त सात्विक चिन्तन करना।
8. अहिंसा का पालन करना।
9. सत्य का पालन करना।
10. मनसा, वाचा कर्मणा चोरी नहीं करना
11. ब्रह्म चर्य का पालन करना।
12. अपरिग्रह का भाव रखना।
13. आध्यात्मिक विकास करना।

इस प्रकार पोषण के द्वारा आध्यात्मिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य को संयम द्वारा बनाये रखना कम भोजन करने से कुपोषण एवं अत्यधिक भोजन करने से भी अस्वस्थता तथा सही मात्रा में सही प्रकार का संतुलित भोजन करना अच्छा स्वास्थ्य का परिचायक है।

16.5 आहार का पाचन

सर्वप्रथम भोजन को मुँह से चबाते है तत्पश्चात निगलते है भोजन अमाशय में नलीनुमा संरचना (ग्रासनली) द्वारा जाता है , फिर छोटी आंत एवं बडी आंत में पहुंचता है। मुख्य रूप से छोटी आंत में भोजन का पाचन होता है एवं शरीर के लिये उपयेागी सरल पोषक तत्त्वों को आहार से यकृत में प्रतिहारिणी शिरा द्वारा प्राप्त किया जाता है। यकृत से रक्त प्रवाह द्वारा शरीर की विभिन्न कोशिकाओं में प्राप्त पोषक सार तत्त्वों को पहुँचाया जाता है। शेष अपशिष्ट पदार्थों को शरीर से बाहर मलाशय से होता हुआ गुदा द्वार द्वारा बाहर निष्कासित मल रूप में किया जाता है।पाचन की इस प्रक्रिया में पाचन तंत्र के मुख्य निम्न अंग कार्य में आते है।

1 मुँह (लार ग्रंथियाँ)
2 भोजन नली
3 अमाशय
4 छोटी आंत
5 बडी आंत
6 मलाशय
7 गुदा द्वार

1. मुँह :– मुँह के अंतर्गत भोजन को दांतो द्वारा चबा चबा कर स्वाद लेते हुए छोटे छोटे टुकडों में विभाजित कर लार रस के साथ इसे मिलाया जाता है।

लार रस में पाया जाने वाला ''एमाइलेस'' नामक एंजाइम कार्बोज के रूप में पाचन क्रिया में सर्वप्रथम सहायता करता है।

2. अमाशयः– लार रस मिली हुई आहार सामग्री लुग्दी के रूप में नलीनुमा ग्रास नली में होते हुए क्रमाकुंचन द्वारा अमाशय में पहुंचती है। अमाशय में जठर रस के साथ मिलकर आहार पतले द्रव्य के रूप में एकत्रित होता रहता है। आमाशय रस द्वारा प्रोटीन का आंशिक पाचन प्रारम्भ होता है।
3. छोटी आंतः– सर्वाधिक पाचन का महत्त्वपूर्ण भाग छोटी आंत है। छोटी आंत में ही अग्नाशय से अग्नाशयरस तथा यकृत से पित्त रस दो महत्त्वपूर्ण रस छोटी आंत में मिलते है। पित्त रस जो कि पित्तशय से प्राप्त होता है वह वसा के पाचन तथा अवशोषण का कार्य करता है। अग्नाशय रस, वसा, प्रोटीन तथा कार्बोज को सरल पोषक ईकाइयों में परिवर्तित करता है, जिससे शरीर में आसानी से अवशोषण हो जाता है।

4. बड़ी आंत– अधिकतर पोषक तत्त्वों को छोटी आंत द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है तदुपरांत बचे हुए व्यर्थ पदार्थ जल के साथ अधिक मात्रा मे उत्सर्जन हेतु बड़ी आंत में एकत्रित हो जाते है। बडी आत में से पुनः किच्चित पोषक तत्त्वों तथा जल को पुनः अवशोषित कर लिया जाता है एवं शेष बचे हुये जल तथा ठोस पदार्थ को मल के रूप में मलाशय से गुदा द्वारा शरीर से बाहर निष्कासित (उत्सर्जित)कर दिये जाते हैं। छोटी आंत की आन्तरिक भित्ति से पोषक तत्त्वों का रक्त में प्रवेश करने की प्रक्रिया को अवशोषण कहते है। अवशोषण की प्रक्रिया में (ViiIIi) रसांकुरों द्वारा छोटी आंत से पोषक तत्त्वों का अवशोषण किया जाता है।**पाचन संस्थान (Digestive system)**

मुख्य अंगावयव

मुख – Mouth
ग्रसनी – Pharynx
ग्रासनली – Oesophagus
आमाशय– Stomach
क्षुद्रात्रं – Small Intestine
ग्रहणी – Duodenum
मध्यान्त्र – Jejunum
शेषांत्र – Ileum
उण्डुक पुच्छ – Vermiform appendix
वृहदांत्र – Large instestine
उण्डुक – Sigmoid Colon
आरोही कोलन – Ascending colon
अनुप्रस्थ कोलन – Truns Verse colon
मलाशय –Rectum
गुदा – Anus

मुख गुहा के अंतर्गत जिह्वा (Tongue)
1 स्वाद को ग्रहण करना
2 भोजन में संतृप्ति प्रदान करना

4 भोजन को चबाने में सहयोग करना
5 निगलने में सहयोग करना
1. वाणी अर्थात बोलने में सहयोग करना
2- भोजन के गरम एवं ठंडे होने का महसूस करना

लार ग्रंथियां (Salivary glands)

ये तीन जोड़ी यौगिक गुच्छेदार ग्रंथियां होती है जिनमें छोटे–छोटे खण्डक (Lobykes) बनते है। प्रत्येक खण्डक की वाहिनियां मिलकर एक बड़ी वाहिनी (DULT) बनाती है। जिससे लार मुंह में आकर आहार को पचाने में लुग्दी बनाने में सहायक होती है।मुख में भोजन को ग्रहण करने पर कृन्तक Incisor तथा रदनक Canine दांतो द्वारा काटकर टुकड़ों में विभाजित किया जाता है। अग्रचवर्णक Premolar तथा चर्णवक Molar दांत भोजन को पीसकर सूक्ष्म कणों में परिवर्तित करते हैं। जिह्वा एवं कपोल (गाल) की पेशियों द्वारा आहार को मुख में घुमाया जाता है जिससे लार का स्त्राव मिश्रित हो जाता है तथा भोजन का एक कोमल पिण्ड अर्थात ग्रास (कौर) बन जाता है। पश्चात तरल कौर को मुख से होकर गले से ग्रासनली द्वारा आमाशय में पहुँचाया जाता है।

अमाशय के कार्य– आमाशय जो कि पाचक नली की सर्वाधिक फैली हुयी J आकार की बड़ी रचना है। आमाशय में जठरागमीय द्वार (Cardic orifice) द्वारा ग्रासनली से भोजन आता है। यहां भोजन का अस्थाई भंडारण किया जाता है। जठरीय ग्रंथियों से गेस्ट्रिक जूस स्त्रवित होकर भोजन में धीरे–धीरे मिश्रित होता है। हाईड्रोक्लोरिक एसिड से आमाशय से संग्रहित भोजन को अम्लीय किया जाता है तथा भोजन में मिश्रित सूक्ष्मजीव इस एसिड से मर जाते हैं। आमाशय में पैप्सीनोजन, रेनिन, लाईपेस नामक तीन प्रकार के एन्जाइम होते हे। ये भोजन को ओर अधिक तरल बनाते है।

पैप्सीनोजन एन्जाइम– यह हाइड्रोक्लोरिक एसिड की उपस्थिति में पैप्सिन में परिवर्तित हो जाता है। पैप्सिन ही प्रोटीन का पाचन कर उसे पैप्टोन में परिवर्तित करता है।

रेनिन एन्जाईम– यह दूध को जमाकर दही बना देता है। घुलनशील प्रोटीन केसीनोजन को केसीन में परिवर्तित कर देता है।

लाइपेस एन्जाईम– यह वसा को विघटित करता है।

पित्त रसः–Bile Juce- यह यकृत कोशिकाओं द्वारा उत्पन्न होने वाला एक स्वच्छ, धूसर पीत वर्ण का चिपचिपा तरल होता है। जो स्वाद में तीखा होता है। पित्त में ''म्यूसिन'', पित्त्वर्णक बिलीरूबिन (Billrubin) तथा बिलीवर्डिन (Biliverdin) नामक दो मुख्य वर्णक काम आते हैं।

पित्त लवण–Bile Salt- ये छोटी आंत में वसा को इमल्सीकृत करते है। वसा का विघटन करने वाले एन्जाईम ''लाइपेस'' की क्रियाशीलता को बढ़ाकर वसा के पाचन में सहयोग करता है।

छोटी आंत में अग्नाशयिक रस भी पाचन में सहायक होता है। एमाइलेस, टिप्सिन, लाइपेस आदि द्वारा पाचन क्रिया में सहायता मिलती है।

चयापचय की क्रियाऐंः– भोजन के अवयवों में कार्बोहाइड्रेट , प्रोटीन, वसा, खनिज लवण, विटामिनों एवं जल का चयापचय होता है, जिससे कार्बोहाइड्रेट प्रोटीन वसा शक्ति के रूप में प्राप्त होते हैं।

16.6 पोषक तत्त्वों का कार्य प्राप्ति स्त्रोत एवं अवशोषण

भोजन से प्राप्त निम्न प्रतिशत में पोषक तत्त्व

1. कार्बोहाइड्रेट 50 से 60 प्रतिशत
2. प्रोटीन 15 से 20 प्रतिशत
3. वसायें 20 से 25 प्रतिशत

कार्बोहाईड्रेट का चयापचय– भोजन का ग्रहण,जटिल कार्बोहाईड्रेट,मोनो सेक्केराइडा,ग्लूकोज, फ्रक्टोज, गैलेक्टोज

प्रोटीन का चयापचय–अमीनो एसिड, नाइट्रोजनी अमीनो एसिड,अनाइट्रोजनी अमीनो एसिड

वसा का चयापचय–वसा, अमीनो अम्ल एवं ग्लिसराल,यकृत में,किटोन काय

खनिज लवणों का चयापचय(mineral Salts)-भोजन के साथ ग्रहण,मूत्र पसीना, मल द्वारा निष्कासन

विटामिनों का चयापचय–A,D,E,K वसा में घुलनशील, BC जल मेंघुलनशील

1 शरीर को स्वस्थ रखने में महत्त्वपूर्ण

2 शरीर की सामान्य वृध्दि एवं विकास में आवश्यक

जल का चयापचय

वृक्कों द्वारा	–	मूत्र रूप में
त्वचा द्वारा	–	पसीना के रूप में
फैफड़ों द्वारा	–	वाष्प के रूप में
गुदा द्वारा	–	मल के रूप में

कार्बोज –कार्बोज में मुख्यतः शर्करा (Sugar) स्टार्च (Starch) तथा रेशे (Fiber) इन तीनों का समूह है। कार्बोज मोटे अनाज (मिलेट) जड़, मूल, कंद, फल, शहद, गुड़, चीनी आदि से प्राप्त होता है।

कार्बोज के प्रमुख कार्यः–उर्जा प्रदान करना, शारीरिक वृध्दि हेतु प्रोटीन का उपयोग,वसा के उपयोग में सहायता करना,

छोटी आंत के तीन मुख्य एन्जाइम–माल्टेज,लेक्टेज,सुक्रोज

अंतिम परिणाम

1 ग्लूकोज

2 फ्रक्टोज

3 ग्लेक्टोज

रेशे के कार्य एवं प्राप्ति स्थान

1 अनाज, एवं दालों की बाह्य परतों में

2 गेंहू का दाना आदि

3 साबूत छिलके वाली दाल

4 राजमा, उड़द, आटा आदि

कार्य–

1 भूख शांत करना

2 मल निष्कासन में सहायता

3 आंतों को स्वस्थ रखना

4 दिल की बीमारियों, मधुमेह, बड़ी आंत का कैंसर आदि रोगों में सहायता करना।

सूक्ष्म पोषक तत्त्वों का पाचन–

वसा विलेय विटामिन (Fat-Soluble Vitamins)

विटामिन ए, विटामिन डी,विटामिन ई,विटामिन के

विटामिन में विटा का अर्थ– जीवन है।

1 विटामिन स्वास्थ्य का संरक्षण करते हैं।

2 शरीर की वृध्दि एवं विकास करते हैं।

3 बीमारियों से शरीर की सुरक्षा करते हैं।

4 चयापचय की क्रियाओं पर नियंत्रण रखते हैं।

विटामिन ए का अवशोषण रेटिनाल या कैरोटीन के रूप में आतों द्वारा किया जाता है। अवशोषित रेटिनाल काइलोमाइक्रान के रूप में यकृत तक पहुंच जाता है। 90 प्रतिशत

भाग यकृत में तथा 10 प्रतिशत भाग फेफड़े में अधिकवृक्क ग्रंथि द्वारा अवशोषित किये जाते है।

कार्यः–

1 नेत्र ज्योति को बनाये रखना
2 हड्डियो की वृध्दि में सहायक
3 उतकों की वृध्दि में सहायक
4 संक्रामक रोगों से बचाव में सहायक

विटामिन डी

यह सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में त्वचा के नीचे के पदार्थ के साथ निर्मित होता है। अंडा, कलोंजी, मक्खन में विटामिन डी अधिक मात्रा में प्राप्त होता है मछली के यकृत से प्राप्त विटामिन डी सर्वाधिक श्रेष्ठ एवं प्राप्ति स्त्रोत है। हड्डियों को मजबूत करता है।

विटामिन ई–

वसा तथा पित्त रस द्वारा अवशोषण
छोटी आंत के उपरी भाग में अवशोषण
मांसपेशियों तथा वसा उतकों में स्थित होता है।
असंतृप्त वसा अम्लों के सुरक्षा प्रदान करना।
विटामिन ए एवं सी को सुरक्षा प्रदान करना।

विटामिन के–

वसा विलेय होने से पित्त रस द्वारा अवशोषण
छोटी आंत को उपरी हिस्से में अवशोषण
बहुत कम मात्रा में अवशोषण
रक्त का थक्का जमाने में काम आता हैं
रक्तावरोधी Anti bleeding vitamin है।
प्रोथ्रोम्बिन नामक प्रोटीन बनने में सहायक है।
प्रोथ्रोम्बिन रक्त का थक्का जमाने में महत्त्वपूर्ण है।

जल विलेय विटामिन

विटामिन बी समुदाय
थायोमिन $बी_1$
राइबोफलेविन $बी_2$
नियासिन
फोलिक अम्ल
विटामिन $बी_{12}$ (कोबालेग्मिन)
ये सारे विटामिन जल विलेय है।
मात्रा से अधिक होने पर मूत्र द्वारा उत्सर्जित किये जाते है।
ये सभी सह विटामिन का कार्य करते हैं।
कार्बोज वसा, प्रोटीन के चयापचय में उपयोगी है।
बी समुदाय के उक्त विटामिन सामान्यतः साबुत अनाज साबुत दालें, दूध, अंडे, हरी पतेदार सब्जियां, अंकुरित अन्न, अंकुरित दालें, संतरा, टमाटर, नीबूं, अमरूद, सेब, आंवला, पपीता, आदि से प्राप्त होते है।
विटामिन सी या ऐस्कार्बिक अम्ल को फ्रेश फूड की श्रेणी में मानते हैं। ऐस्कार्बिक अम्ल (विटामिन सी) का अवशोषण शीघ्र होता है। यकृत, अस्थि मज्जा, प्लीहा, अग्नाशय, तथा आंख के रेटिना में विटामिन सी स्थित होता है।

विटामिन सी के कार्य

लौह तत्त्व के अवशोषण में सहायक
घाव भरने में सहायक

संक्रमण रोकने में सहायक
तनाव दूर करने में उपयेागी
विटामिन ए को नष्ट होने पर रोकता है।

सूक्ष्म पोषक तत्त्व खनिज लवण

मनुष्य शरीर में खनिज लवणों की न्यूनाधिक मात्राा आवश्यक होती है खनिज लवण बीमारियों से शरीर को बचाते है। खनिज लवण शरीर में क्षारीय एवं अम्लीयता का संतुलन करते हैं।
खनिज लवणों की निम्नानुसार शरीर को आवश्यकता होती है।
(1) कम मात्रा में आवश्यक खनिज लवण
लौह तत्त्व,आयोडिन,जिंक,तांबा
(2) अधिक मात्रा में आवश्यक खनिज लवण
कैल्सियम, फास्फोरस, सोडियम, पोटेशियम, मैग्नीशियम, क्लोराइड

लौह तत्त्व– कुल मात्रा 3 से 5 ग्राम
1 रक्त में सर्वाधिक 75 प्रतिशत पाया जाता है।
2 ऑक्सीजन का संवाहक है।
3 हिमोग्लोबीन में हीम के अंतर्गत पाया जाता है।
4 मांसपेशियों के संकुचन हेतु ऑक्सीजन को उपलब्ध कराना।
5 आक्सीकरण की प्रक्रिया को कोशिकाओं में बढ़ाना
6 संक्रमण रोकने में सहायक
7 सीखने ध्यान लगाने आदि में उपयोगी
8 छोटी आंत के उपरी भाग में सर्वाधिक अवशोषित

आयोडीन

1 न्यूनमात्रा 20 से 25 मि. ग्राम
2 सर्वाधिक थायोराइड ग्रंथि मे पाया जाता हैं।
3 आयोडिन का अवशोषण छोटी आंत में होता है।
4 समुद्री किनारे फल सब्जी समुद्री मछलियों में अधिक पाया जाता है।
5 बंद गोभी , मूली, भिंडी, मूंगफली ये थायोराइड की क्रिया में रूकावट करते है।
खनिज लवण मानव शरीर के भार का 4 प्रतिशत होते है, खनिज लवणों की उपलब्धता प्राकृतिक होती है। खनिज लवण अधिक व्याधियों से शरीर को बचाते है। चयापचय की क्रियाओं का नियंत्रण करते है। हड्डियॉ, दांत तथा अस्थि कंकाल का विकास करते है। शारीरिक क्रियाओं को नियंत्रण में रखते है।

अधिक मात्रा में आवश्यक खनिज लवण

कैल्शियम तथा फास्फोरस

प्रायः सभी खनिज लवणों से सर्वाधिक मात्रा कैल्सियम की होती है।
हड्डियों तथा दालों में अधिक होते है। एवं इनका निर्माण करते है।
शारीरिक क्रियाओं के नियामक होते है।
दूध व दूध से बने पदार्थों में अधिक
रागी में अर्थात मोटा अनाज में भी कैल्सियम पाया जाता है।
नारियल, बादाम, अखरोट में भी कैल्सियम पाया जाता है।
छौटी आंत में उपरी भाग में अवशोषण होता है।
भोजन से 20 से 30 प्रतिशत अवशोषित होता है।

सोडियम–

सामान्यतया व्यस्क व्यक्ति में 120 ग्राम लगभग होता है।
अधिकांश भाग कोशिकाओं के बाहर रहता है।
शरीर में क्षारीय एवं अम्लता का नियंत्रण करता है।
स्नायुओं में संदेश भेजने के कार्य में सहायता करता है।

- मांसपेशियों के संकुचन में सहायक होता हैं
- पदार्थों के कोशिकाओं में आने जाने पर रोक लगाता है।
- दूध, अंडे, मांस, मुर्गी, मछली, हरी पत्ते दार सब्जियों में पाया जाता है।
- भोजन से छोटी आंत में शीघ्र अवशोषित हो जाता है।
- गर्मियों में पसीने से, मूत्र से निष्कासन होता रहता है।
- दोनों वृक्कों द्वारा सोडियम की मात्रा का संतुलन होता है।

पोटेशियम

- सोडियम का दुगना 250 ग्राम होता है।
- अन्तः कोशिका द्रव्य में अधिकांश पाया जाता है।
- कोशिकाओं के बाह्य एवं अभ्यान्तर संतुलन को बनाये रखता है।
- क्षारता एवं अम्लता का नियंत्रण तथा संतुलन करता है।
- मांस पेशियों के संकुचन में मदद करता है।
- स्नायु द्वारा संदेश भेजने में सहायक है।
- कच्चे नारियल का पानी पोटेशियम का अच्छा स्त्रोत है।
- मांस–मछली मुर्गी में पाया जाता है।
- शाकाहारियों में केला, टमाटर, नीबूं, आलू, गाजर, साबुत अनाज में पाया जाता है।
- आंत के उपरी भाग में अवशोषित होता है।

मैग्निशियम

- मात्रा 20–25 ग्राम
- 20 से 25 ग्राम का 70 प्रतिशत हड्डियों में पाया जाता है।
- कोशिका में आने जाने वाले पदार्थों का नियंत्रण करता है।
- हड्डियों व दांतों के निर्माण में सहायक
- एंजाइमों की कार्यशीलता में वृध्दि
- प्रोटीन के निर्माण में आवश्यक है।
- काजू, अखरोट, मूंगफली, बादाम, तिलहन, दालों, हरी सब्जियां, मटर, ककड़ी, आदि में पाया जाता है।
- छोटी आंत में अवशोषित होता है।
- मैग्निशियम की मात्रा वृक्कों के द्वारा नियंत्रण होती है।

16.7 सारांश

संतुलित आहार का पाचन तंत्र द्वारा सम्यक पाचन होने पर ही शरीरगत धातुओं का तथा अवयवों का पोषण कर्म होता है। पाचन क्रिया के द्वारा आहार को शरीर के अनुकूल पोषक तत्त्वों द्वारा संग्रहित किया जाता है। आहार द्रव्यों का सेवन, पाचन तथा उसका अवशोषण आदि का पोषण में महत्त्व है। पाचन क्रिया के समय शरीर की अंतः स्त्रावी ग्रंथियां भी क्रियाशील रहती है। अतः स्वस्थ शरीर के लिये भोजन का सही पाचन होना अति आवश्यक है।

पोषण द्वारा शरीर का विकास, बल वर्ण आभा प्रभा की प्राप्ति होती है। पोषण की रोगी एवं स्वस्थ दोनों को आवश्यकता रहती है। संक्षेप में यह कह सकते है, कि जिस

प्रक्रिया द्वारा भोजन का सही उपयोग, शरीर की वृद्धि मानसिक शांति एवं आरोग्यता तथा शक्ति उर्जा प्राप्त हो वह सभी पोषण के अन्तर्गत आती है।

16.8 शब्दावली

- विजातीय तत्त्व द्रव्य जैसे – शरीर से निष्कासित किये जाने वाले मल–मूत्र, पसीना आदि
- कुपोषण – आहार का कम या अधिक मात्रा में सेवन
- थायोराईड – गले के नीचे रहने वाली ग्रंथियां
- सात्विक – अर्थात श्रेष्ठ, अनुकूल, पवित्र
- एंजाइम तत्त्व – आहार का सम्यक, पाचन कराने वाले

16.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

- **आयुर्वेदचिकित्साविज्ञान – वैद्य बनवारी लाल गौड़**
- **चरक संहिता ''पिद्योतनी'' – पं. काशीनाथ शास्त्री**
- **आयुर्वेद दीपिका – टीका चक्रपाणिकृत**
- **स्वस्थवृत्त विज्ञान – डॉ. सर्वेशकुमार अग्रवाल**
- **प्राकृतिक आयुर्विज्ञान – डॉ. राकेश जिन्दल**
- **चरक संहिता – डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी**
- **सद्वृत्त विज्ञान – डॉ. रामहर्षसिंह**
- **पांतञ्जल योग दर्शन – डॉ. नित्यानन्द शर्मा**
- **सुश्रुत संहिता – आयुर्वेद रहस्य दीपिका**
- **शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान – श्रीनन्दन बंसल**

16.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. पोषण की अवधारणा का विस्तृत वर्णन कीजिए?
2. आहार के पाचन की आधुनिक मतानुसार वर्णन कीजिए?
3. पोषण का आर्थिक, सामाजिक, एवं मनोवैज्ञानिक पहलू बताइये?
4. खनिज लवणों का कार्य प्राप्ति स्त्रोत, एवं अवशोषण का वर्णन कीजिए?

इकाई –17 आहार के विभिन्न घटकों की पोषण विधि

17.1 प्रस्तावना
17.2 उद्देश्य
17.3 अष्टविघ आहार विधि विशेष आयतन
17.4 आहार के विभिन्न घटक एवं पोषण विधि
17.5 आहार रूपी विशेष सदाचार
17.6 साराश
17.7 शब्दावली
17.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
17.9 संदर्भ ग्रंथ
17.10 निबन्धात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

आज के प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण में अधिकांश बीमारियाँ एवं अकाल मृत्यु गलत आहार के सेवन से हो रही है।

आहार से हमारे शरीर का पोषण होता है। शरीर की टूट –फूट, मरम्मत , शरीर के अंगावयवों की कार्य करने की शक्ति (ऊर्जा) , तथा रोगो से लड़ने की रोगप्रतिरोधक क्षमता सभी आहार से प्राप्त होते है। सारे रोगों की जड़ विनातीय द्रव्य असंतुलित आहार है। इससे कब्ज होती है। रोगाःसर्वेद्रपि मन्दग्नो–मन्दाग्नि अर्थात कब्ज ही सभी रोगों का मूल है जो आहार पर आधारित है। भोजन कैसा हो कब खायें कितना खायें कैसा खायें क्यों खायें आदि आहार के विचारणीय बिदुं है।

''अन्नं मृत्युऽमृतं–जीवात्माहुः!''

आहार जीवन तथा मृत्यु दोनों है। भोजन के लिये जीवन धारण नहीं वरन् जीवन धारण के लिए भोजन होना चाहिए। आहार शुद्ध होने पर अन्तः करण की शुद्धि होती हैअन्तः करण शुद्ध होने पर स्मृति दृढ़ होती जाती है। स्मृति प्राप्त होने पर हृदय की समस्त गाठें खुल जाती है। मनुष्य की मुख्य आवश्यकता भोजन से सम्बन्धित दैनिक जीवन में होती है। इसी भोजन से पोषण पाप्त होता है। पोषक तत्त्वों से शरीर का उतम स्वास्थ्य प्राप्त किया जाता है।

17.2 उद्देश्य

इस इकाई में अध्ययन के निम्न बिदुओं का वर्णन किया जा रहा है–

अष्ट विधि आहार के विधि विशेष आयतन

आहार के विशेष सदाचार

आहार के विभिन्न घटक की पोषण विधि

17.3 अष्टविघ आहार विधि विशेष आयतन

आहार :– जिस भी सेवनीय द्रव्य को निगला जाता है उसे आहार कहते हैं। आयुर्वेद शास्त्र में तीन उपस्तम्भ माने गये हैं।

प्रथम–आहार, द्वितीय निद्रा और तृतीय ब्रह्मचर्म। तीनों उपस्तम्भोंमें सर्वप्रथम आहार की गणना की है। आहार द्वारा ही देह का धारण एवं संर्वधन किया जाता है। आहार द्वारा शरीर में शक्ति तथा ऊर्जा प्राप्त होती है जिससे सम्पूर्ण शरीर की समस्त कियाओं को सुचारू रूप से चलाया जाता है। भोजन की समस्त प्रकियाओं में पाचक अग्नि का विशेष महत्त्व है। पाचक अग्नि द्वारा

सेवित भोजन का पाक होता है। अग्नि द्वारा ही भोजन को मुख्यतः दो भागों में (i) सार भाग तथा (ii) किट्टभाग (मलभाग) में विभाजित किया जाता है। आचार्य चरक के अनुसार आहार के विभिन्न घटकों में आठ आहार विधि विशेष आयतन माने गये हैं।

प्रकृति,करण,संयोग,राशि,देश,काल,उपयोग संस्थ,उपभोक्ता

1 प्रकृति– आहार के अन्तर्गत रहने वाले स्वाभाविक गुण सामान्यतः दो प्रकार के होते हैं। 1 लघु गुण अर्थात् हल्के आहार 2 गुरूगुण अर्थात् भारी गरिष्ठ आहार आदि

2 करण – आहार द्रव्यों में जो ''संस्कार'' करके अनके गुणों में जो परिवर्तन किया जाता है उसे ''करण'' कहते हैं। गुणाधान की प्रक्रिया भी निम्न प्रकार से होती है।

(i) जल संयोग के अनुसार– इस प्रक्रिया में जल का विशेष महत्त्व होता है। पंचविध कषाय कल्पना इसके अन्तर्गत आती है जैसे –क्वाथ, फाण्ट (चाय बनाना) हिम, कषाय कल्क आदि। जल संयोग द्वारा शीत–उष्ण, मृदु एवं तेज आदि गुणों का परिवर्तन आहार विधि विशेष आयतन में किया जाता है।

(ii) अग्नि संयोग के अनुसार– अग्नि के सम्पर्क द्वारा आहार द्रव्य के गुणों मे परिवर्तन किया जाता है। जैसे – चावल को दूध में पकाते हैं तो खीर रूप में वह भारी अथात् गरिष्ठ हो जाता है, उसी चावल को अग्नि गरम पर रेत पर पकाते हैं तो वह परमल (लावा) के रूप में हल्का हो जाता है।

(iii) शोधन के अनुसार– सभी विष मृत्युकारक होते हैं। उन विषों को गोमूत्र, गिलोय स्वरस, तुलसी स्वरस आदि में शुद्ध कर लिया जाता है। वही विष शुद्धिकरणोपरान्त अनेक रोगों को औषधि के रूप में दूर करने की सामर्थ रखते हैं।

(iv) मंथन के अनुसार– दही स्वभाव से शोथ (सूजन) भारीपन गुरू गुण तथा अभिष्यन्दीकारक होता है, परन्तु वही मथने के पश्चात् छाछ रूप में हल्के गुणा वाला हो जाता है। उसमें सिका हुआ जीरा, सैधव नमक मिलाने पर उसकी ओर तासीर परिवर्तन होकर तृप्तिकारक, अग्निवर्धक तथा पाचन प्रणाली को मजबूत बनानी वाली होती है।

(v) देश स्थान के अनुसार– तीन प्रकार के देश (स्थान) होते हैं यथा 1.जांगल प्रदेश – वहां के प्राणियों का मांस उष्णता की अधिकता के कारण हल्का गुण वाला होता है। 2. आनूप देश – इस देश के प्राणियों का मांस शीतलता की अधिकता के कारण भारीगुण वाला होता है। 3. साधारण देश – इस देश के प्राणियों का मांस सेवन करने पर ''समशीतोष्ण'' वातावरण (जलवायु) के कारण सामान्य गुण वाला होता है।

(vi) काल के अनुसार– काल के अनुसार भी आहार के गुणधर्म में परिवर्तन होता है। जैसे – चावल स्वभावतः सामान्य रूप से भारी होता है। लेकिन वही चावल एक वर्ष से अधिक समय का सेवन करने पर पुराना चावल लघु गुण वाला अर्थात् पचने में हल्का हो जाता ह। इसी तरह कच्चे मौसमी फल भारी होते हैं एवं पकने पर हल्के गुण वाले हो जाते हैं। इसी प्रकार बाल्यावस्था के प्राणियों का मांस युवावस्था तथा वृद्धावस्था के

प्राणियों को मांस सेवन भिन्न–भिन्न हल्का या भारी गुण वाला होता है।

(vii) भावना के अनुसार– हानिकारक द्रव्यों को निर्धारित भावना प्रधान द्रव्यों विषों में घोटने से उनकी मारक क्षमता में कमी आकर उनके गुण धर्म बदल जाते हैं। विषों को तीन दिन तक गोमूत्र में रखकर भावना देने से उनके गुण विष होते हुए भी रोगनाशक अर्थात् अमृत तुल्य हो जाते हैं।

(viii) काल अपकर्ष के अनुसार– काल अपकर्ष का भी गुणाधान में विशेष महत्त्व है। जितने भी स्वरस होते हैं वे सभी स्वरस ताजा (ज्यूस) रूप में ही सेवनीय लाभदायक होते हैं। तुलसी का रस, आवंले का रस, एलोवेरा का रस, गेहूँ के ज्वारे का रस आदि। इसी प्रकार कुछ द्रव्य ऐस होते हैं जो जितने पुराने उतने अच्छे जैसे : शुद्ध शहद, शुद्ध गाय का घी, आसव एवं अरिष्ट आदि।

(ix) भाजन (पात्र) के अनुसार– यदि कांसे के पात्र में 10 दिन तक घी को रखा जाये तो वही , घी ''विषमय'' हो जाता है। दही, टमाटर नींबू, इमली, केरी आदि पीतल–तांबे के पात्र में रखने उबालने पर हानिकारक हो जाते हैं। त्रिफला को लोहे के बर्तन में लेप कर खाने से अमृत के समान रसायन के रूप में लाभदायक होता है।

3. संयोग – दो या दो अधिक द्रव्यों को परस्पर मिलाने से उनकी कार्यक्षमता में परिवर्तन होकर उनकी गुणवत्ता बढ़ जाती है। जैसे घी एवं शहद दोनो अलग अलग सेवन करने पर शरीर में लाभकारी गुण उत्पन्न करते हैं। यदि उन्हें (घी और शहद) समान मात्रा में मिलाकर सेवन किया जाए तो गुण मारक/प्राणघातक अर्थात् हानिकारक होता है।

4. राशि – द्रव्यों का संयोग करने पर मात्रा एवं अमात्रा का निर्णय करना राशि के अन्तर्गत आता है।
(अ) सर्वग्रह राशि – इसके अन्तर्गत सभी आहार, द्रव्यों को एक साथ मिलाकर पकाते हैं तथा एक साथ मिलाकर सेवन करते हैं। इसे सर्वग्रह राशि कहते हैं।
(ब) परिग्रह – अलग अलग आहार द्रव्यों को एक एक कर पकाना तथा अलग अलग ही खाना ''परिग्रह'' कहलाता है।

5. देश (स्थान) – अष्टविध आहार विशेष आयतन में देश का तात्पर्य स्थान से है, जो आहार सामग्री जिस देश (स्थान विशेष) में उत्पन्न होती है वह वहां के निवासियों के लिए स्वास्थ्य वर्धक होती है, परन्तु वही आहार सामग्री दूसरे स्थान के लोग सेवन करते हैं तो यह जरूरी नहीं कि उनके लिये वह लाभदायक ही हो। अतः हानिकारक भी हो सकती है।

6. काल – काल अर्थात् ऋतुचर्या का आहार सेवन में विशेष महत्त्व है। वर्षा, शरद,हेमन्त, शिशिर, वसन्त एवं ग्रीष्म इन छः ऋतुओं की पृथक् पृथक् ऋतुचर्या के अनुसार शास्त्र सम्मत आहार का सेवन करना चाहिये। अन्यथा, ऋतुसंधि जन्य रोग अर्थात् मौसमी बीमारियों से पीड़ित होने की संभावनाएं बढ़ जाती है।

7. उपयोग संस्था – आहार करने के नियम उपयोग संस्था कहलाते हैं। इसमें आहार से सम्बन्धी सभी सद्वृत्त या स्वस्थवृत्त का पालन करना ''उपयोग संस्था'' कहलाता है।

8. उपभोक्ता – आहार का सेवन करने वाला व्यक्ति उपयोक्ता कहलाता है।

उक्त आठों आहार विधि विशेष आयतन शुभ एवं अशुभ फल देने वाले होते हैं। अतः संयम एवं सद्वृत का पालन कर आहार का सेवन विवेकपूर्ण तरीके से पथ्यानुसार करना चाहिए। अन्यथा यही आहार मोह एवं लालचवश हीन या अतिमात्रा में अध्यशन रूप में करने पर हानिकारक/प्राणघातक हो जाता है।

17.4 आहार के विभिन्न घटक एवं पोषण विधि

(i) प्रोटीन (ii) वसा (iii) कार्बोहाईड्रेट
(iv) विटामिन (v) खनिज लवण (vi) जल

उक्त आहार के विभिन्न छः घटक पोषणकारी माने गये है। इनमें प्रोटीन, वसा एवं कार्बोहाईड्रेट को ''प्रत्यक्ष मूलतत्त्व (Proximate Principles) अर्थात् ऊर्जादायी आहार कहते हैं। जल के साथ संयोजन ने शरीर का संघटन पानी 63 प्रतिशत, प्रोटीन 17 प्रतिशत, वसा 12 प्रतिशत , खनिज 7 प्रतिशत, कार्बोहाइड्रेट 1 प्रतिशत होता है। इस प्रकार अनुमानित इन घटकों की शरीर में प्रतिशतता रहती है।

आहार का निम्न चार प्रकार से वर्गीकरण किया जा रहा है –

(1) उत्पत्ति के आधार पर आहार का वर्गीकरण
(अ) पशुजन्य आहार (ब) वनस्पतिजन्य आहार
(2) रासायनिक एवं आधुनिक मतानुसार आहार का वर्गीकरण
(अ) प्रोटीन (ब) वसा (स) कार्बोहाइड्रेट
(द) विटामिन्स (य) खनिज लवण (र) पानी (जल)
(3) आहार से प्राप्त ऊर्जा के कार्यो के आधार पर वर्गीकरण
(अ) शरोर निर्माणकारी आहार द्रव्य (दूध, मांस, मुर्गी, अंडे, दालें, मूंगफली आदि)
(ब) शरीर का संगठन करने वाले आहार द्रव्य (अन्न, शर्करा, कंदमूल, तेल एवं घी आदि)
(स) शरीर का संरक्षण करने वाले आहर द्रव्य (वनस्पतियाँ जन्य हरी सब्जियाँ, फल दूध आदि)
(द) शरीर को संक्रामक रोग से बचाने वाले आहार द्रव्य (विटामिन, खनिज लवण, प्रोटीन वाले दूध, हरी सब्जियां, पीले फल आदि)
(य) रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने वाले आहार द्रव्य (नीम गिलोय, तुलसी, आंवला, ऐलोवेरा, अश्वगंधा, शतावरी, विटामिन सहित संतुलित पोषणकारी आहार आदि)

प्रोटीन प्राप्ति स्रोत

(i) प्राणी जन्य – दूध, अंडे, मांस, मछली
(ii) वनस्पति जन्य – दालें, अनाज, गिरी, साग–सब्जी, फल, सोयाबीन

दैनिक आवश्यकता – 1 ग्राम प्रति किलोग्राम अनुमानित सामान्य अवस्था में होती है।

प्रोटीन के कार्य

(अ) शरीर का वृद्धि एवं विकास
(ब) ऊतकों की टूटफूट की मरम्मत
(स) एन्जाइम, हार्मोन्स का संश्लेषण

3. प्रोटीन की पोषण विधि– भोजन के साथ ग्रहण की गई प्रोटीन में लगभग 21 प्रकार के अमीनों एसिड पाये जाते हैं। जिनमें से आठ प्रकार के एमीनों एसिड आवश्यक होते हैं। पाचन के परिणाम स्वरूप प्रोटीन अपने घटकों, अमीनों एसिडो मे विघटित होकर छोटी आन्त्र की भित्तियों में स्थित अंकुरों (viLLi) से अवशोसित होकर उनके भीतर विद्यमान रक्त कोशिकाओं के साथ रक्त में मिल जाते हैं। और रक्त के साथ पहले ''प्रतिहारिणी शिरा'' (पोर्टल वेन) द्वारा यकृत में पहुचते हैं और फिर यकृत द्वारा सामान्य रक्त संरचण में आते हुए शरीर की सभी कोशिकाओं एवं ऊतकों के उपयोग हेतु पहुंच जाते हैं। इन आवश्यक उपलब्ध अमीनों एसिड द्वारा शरीर की अलग अलग प्रकार की कोशिकाएं अपने विशिष्ट प्रकार की ऊतकों की वृद्धि, विकास तथा उनकी टूट फूट की मरम्मत के लिए तथा उनके स्रावों जैसे – एण्टीबाडियों, एन्जाइम तथा हार्मोन के निर्माण के लिये विशेष प्रकार के अमीनों एसिडो का चयन करते हुए उनका उपयोग किया जाता है।

शरीर में ऊतक कोशिकाओं की प्रोटीन के विघटन से उत्पन्न अमीनों एसिड ''अन्तर्जात अमीनां एसीड'' कहलाते हैं। जबकि भोजन के साथ सेवन की गई प्रोटीन जो कि पाचन के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होती है उन ''एमीनो एसिडो को बहिर्जात अमीनों एसिड'' कहते हैं। इन अन्तर्जात (Endogenous) अमीनो एसिड तथा बहिर्जात (Exogenous) अमीनो एसिड मिलकर अमीनो एसिड कुण्ड (Amino acid pool) बनाते हैं। जहां से शरीर की मांग के अनुसार टूट फूट मरम्मत, वृद्धि विकास हेतु कोशिकाएं इन्हें ग्रहण कर लेती है। भोजन से प्राप्त अधिक मात्रा में प्रोटीनों को यकृत में नाइट्रोजनी तथा अनाइट्रोजनी पदार्थों के रूप में अमोनिया, यूरिया एवं कार्बन, हाईड्रोजन के रूप में परिवर्तित होकर उत्सर्जित कर दिये जाते हैं।

वसा के पोषण की विधि – वसा में कार्बन, हाइड्रोजन और आक्सीजन का संयोजन (Fatty acids) होता है। मूंगफली का तेल आदि की वसा सामान्य तापमान में '' द्रव अवस्था में तथा घी, मक्खन आदि इसी तापमान में ''घनीभूत अवस्था '' में रहते हैं। प्राणी जन्य वसा ''संतृप्त वसा'' तथा वनस्पति जन्य तेलादि को ''असंतृप्त वसा'' के रूप में जानते हैं। प्राणिजन्य अर्थात् ''संतृप्त वसा'' का अत्यधिक प्रयोग शरीर के लिये नुकसान दायक होता है। हृदय की धमनियों में यही संतृप्त वसा का अत्यधिक सेवनोपरान्त जमने के कारण ''हृदय रोग'' का सबसे बड़ा कारण बनता है।

वसा की दैनिक आवश्यकता – सामान्यतः व्यस्क में 15 ग्राम प्रत्यक्ष वसा की दैनिक मात्रा में आवश्यकता होती है। वसा के अत्यधिक उपयोग से मोटापा (स्थूलता) और रक्त वाहिकाओं में रूकावट (Atheroscierosis) के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। कोलेस्ट्राल बढ़ने से धमनियां मोटी हो जाती है। भित्तियां मोटी कठोर होने से ''रक्त संचार'' बाधित होकर ''हृदयविकार'' हाइब्लड प्रेशर (उच्च व्यान) जैसे रोग उत्पन्न होते हैं। वसीय अम्लों की कमी से भी रोग उत्पन्न होते हैं। इनकी कमी से त्वचा कठोर तथा शुष्क तथा कांतिहीन हो जाती है।

वसाओं के पाचन के परिणाम स्वरूप प्राप्त ''वसीय अम्ल एवं ग्लिसराल'' छोटी आंत्र की भित्तियों में विद्यमान अंकुरों द्वारा अवशोषित होकर उनके भीतर दुग्धवाहिकाओं अर्थात् लसीकावाहिनियों में प्रवेश कर लासिकाओं में मिल जाते हैं। लसिकाओं में मिश्रित वसीय अम्ल एवं ग्लिसराल दोनों अनेक लसीका वाहिनियों द्वारा सिस्टर्ना काइलाई (cisterna chyli) में पहुच जाते हैं, जहां से

उन्हें Thoracic duct अर्थात् वसीय नली द्वारा अन्त में रक्तप्रवाह पहुचकर प्रतिहारिणी शिरा द्वारा यकृत में पहुँचाया जाता हैं। यकृत के द्वारा रक्तपरिसंचरण में ये ''वसीय अम्ल एवं ग्लिसराल'' शरीर के अंगावयवों ग्रन्थियों में ऊर्जा, शक्ति सम्बन्धित स्रावों के निर्माण में सक्रिय हो जाते है। शेष वसीय अम्ल तथा ग्लिसराल यकृत में आक्सीकरन (Oxidation) होकर उनका विसंतृप्तिकरण (Desaturation) हो जाता है। यही विसंतृप्तिकरण वाली वसा ऊतकों मे संचित होने योग्य होती है। ऊतकों में संचित हुयी वसा का कुछ भाग कार्बोहाइड्रेट की उपस्थिति में आक्सीकृत हो जाता है जिससे वसा का चयापचय की प्रक्रिया होकर उससे ''ऊर्जा एवं ऊष्मा'' की उत्पत्ति होती है। साथ ही कुछ मात्रा में CO_2तथा जल का निर्माण भी होता है। ऊर्जा एवं ऊष्मा का उपयोग शरीर के कार्यों के लिये किया जाता है, ऊष्मा शरीर का तापमान बनाये रखती है एवं बची हुयी कार्बन डाइआक्साइड को फैफड़ों के माध्यम से बाहर उत्सर्जित कर दी जाती है। वसा द्वारा ऊर्जा का उत्पादन होता है। शरीर के तापमान को स्थिर रखने का त्वचा के नीचे स्थित वसा की परत का योगदान रहता है। विटामिन ए डी ई और के का वसा में घुलन का कार्य सम्पादित होता है। हृदय, वृक्क, आंत्र, त्वचा सहित अनेक अंगों में वसा की आवश्यकता उपस्थिति लाभदायक होती है। वसा की अधिकता हानिकारक होती है।

कार्बोहाइड्रेट की पोषण विधि – पोषक तत्त्वों में से जटिल कार्बोहाइड्रेट का सीधे स्वांगीकरण (Assimilation) नहीं होता। कार्बोहाइड्रेट का आंत से अवशोषण के पूर्व पाचक नली में पाचक स्रावों द्वारा उनकी यांत्रिक तथा रासायनिक घुलनशील प्रक्रिया होती है। जिससे इनका विघटन होता है। छोट–छोटे टुकड़ों में विखण्डित इन्हें पाचक रसों द्वारा महीन कर मिश्रण कर अवशोषण हेतु उपयोगी बनाया जाता है। कार्बोहाइड्रेट, मोनोसैक्कराइड, डाइसैक्केराइड, पॉलीसैक्कराइड इन तीन वर्गों में वर्णन की दृष्टि से रासायनिक जटिलता के अनुसार विभाजित है। दूसरा इनका विभाजन माडी या स्टार्च के रूप में, ग्लाइकोजन एवं सेल्युलोज के रूप में किया गया है।

मोनोसैक्केराइड जो कि ग्लूकोज, फ्रेक्ट्रोज और ग्लेक्टोज के रूप में ग्लूकोज में परिवर्तित होकर छोटी आंत की भित्तियों में अवस्थित अंकुरों (villi) से अवशोषित होकर रक्त में कोशिकाओं के माध्यम से मिलते हैं। शारीरिक क्रियाओं के शक्ति हेतु रक्त में शर्करा का सामान्य स्तर 80-120mg% तथा भोजनोपरान्त दो घण्टे बाद post prandial blood sugar 120-140 mg% बनाये रखता है। अधिक मात्रा में प्राप्त ग्लूकोज को ''पोर्टल वेन'' द्वारा यकृत में संग्रहित करने हेतु भेज दिया जाता है। कुछ भाग यकृत की चयापचयी क्रियाओं में काम आता है। शेष भाग अग्नाशय से प्राप्त इन्सुलिन की उपस्थिति में ''ग्लाइकोजन'' में परिवर्तित कर संग्रहित कर लिया जाता है। यकृत से कुछ ग्लूकोज रक्तपरिसंचरण द्वारा पेशियों में पहुचकर उनमें ग्लाइकोजन के रूप में जमा हो जाता है। जो शारीरिक श्रम के दौरान ग्लाइकोजन से पुनः ''ग्लूकोज'' में परिवर्तित होकर पेशीय कार्य हेतु उपयोग में आता है। भोजन के साथ आहार द्वारा अधिक मात्रा में ग्रहण किया गया कार्बोहाइड्रेट वसा रूप में परिवर्तित होकर शरीर के वसा भण्डारों में जमा हो जाता है जिससे शरीर का वनज बढ़कर मोटापा आदि हो जाता है। प्रतिदिन व्यस्क व्यक्ति को 400 ग्राम कार्बोहाइड्रेट की आवश्यकता सामान्य कार्य हेतु होती है।

4. विटामिन्स के पोषण की विधि –विटामिन्स एक प्रकार के रासायनिक यौगिक है जो सूक्ष्म मात्रा में आहार द्रव्यों में पाये जाते हैं। ये शरीर

को स्वस्थ एवं निरोग बनाने में सहायक है। विशेष परिस्थितियों में विटामिन्स की अधिक आवश्यकता होती है। जैसे – शिशुओं में, गर्भवती महिलाओं में, स्तन पान कराने वाली महिलाओं में, प्रसूताओं में जीर्ण रोगों के निवारण में आदि। सामान्यतया विटामिन्स 6 प्रकार के होते हैं जिनमें से विटामिन ए, डी, ई तथा के वसा में घुलनशील तथा विटामिन बी तथा सी जल में घुलनशील है। जल में घुलनशील विटामिन बी काम्पलैक्स है। जिनमें विटामिन बी, विटामिन $बी_2$, विटामिन $बी_6$, निकोटिन एसिड, फोलिक एसिड, विटामिन $बी_{12}$, बायोटिन आदि है।

छोटी आंत की भीतरी दीवारों पर अंगुलियों के समान बहुत छोटे छोटे ऊभार जिन्हें villi अंकुर के नाम से जानते हैं। उन प्रत्येक अंकुर में एक लसीका वाहिनी होती है। जिसके चारों ओर रक्त केशिकाओ का जाल फैला रहता है। पचे हुए भोजन का विसरण द्वारा लसीका वाहिनी में पहुँचकर उसकी लसीका में मिलकर रक्त केशिकाओं के साथ रक्त में मिलकर उनका अवशोषण कर लिया जाता है। तथा कुछ भाग ''प्रतिहारिणी शिरा'' द्वारा यकृत में पहुँचाया जाता है सामान्यतः आहार घटकों की पोषण विधि लगभग इसी प्रकार से है।

खनिज लवण – मुख्यतया शरीर में खनिज लवण कैल्सियम, फास्फोरस, लौह, सोडियम पोटशियम, मैग्नेशियम, आयोडीन होते हैं। गन्धक के खनिज लवण क्लोराइड, कार्बोनेट तथा फास्फेट आदि लवणों के रूप में मिलते हैं।

खनिज लवणों के कार्य – अस्थियों जैसी कठोर संरचना निर्माण हेतु कैल्सियम, फास्फोरस तथा मैग्निेशियम की आवश्यकता रहती है। शरीर के क्रियात्मक कार्य तथा परासरणी दबाव (osmotic) खनिज लवणों के द्वारा किये जाते हैं। खनिज लवणों द्वारा विशिष्ट कार्य भी सम्पादित किये जाते हैं। जैसे – खून की कमी में आयरन के अवशोषण की प्रक्रिया महत्त्वपूर्ण है जो खनिज लवणों द्वारा सम्पादित की जाती है।

कैल्सियम से अस्थियां एवं दांतों का निर्माण, रक्त स्कन्दन आदि कार्य होते हैं। दूध ''कैल्सियम'' का श्रेष्ठ स्रोत है। इसकी कमी से सूखारोग एवं हड्डियां कमजोर हो जाती है। सामान्य मात्रा में व्यस्क में 0.5 ग्राम तथा गर्भिणी एवं प्रसूता में धात्री में 1.0 ग्राम की आवश्यकता होती है।

लोहा – प्रमुख कार्य शरीर में रक्त के द्वारा ''आक्सीजन परिवर्तन'' का है। इससे '' हीमाग्लोबिन'' का निर्माण होता है।

पुरूषों में 24 mg प्रतिदिन

महिलाओं में 32 mg प्रतिदिन

गर्भावस्था में 40 mg प्रतिदिन

स्तनपान में 24 mg प्रतिदिन

सोडियम (sodium) – एक प्रकार का नमक है, मूत्र एवं पसीने से बाहर निकलता है। दैनिक आवश्यकता 10 से 25 ग्राम हाती है।

फास्फोरस – अस्थि एवं दंत निर्माण हेतु। दैनिक आवश्यकता 0.5 ग्राम की होती है।

अन्य खनिज लवणों में (Trae elements) – ये सूक्ष्म मात्रा वाले खनिज लवण जैसे– आयोडिन, तांबा, कोबाल्ट, मैग्निशियम आदि तत्त्वों की गणना की है।

आयोडीन (Iodine) – अवटुका ग्रंथि की सूजन को गलगण्ड (Guitre) कहते हैं।

आजकल "iodised salt" का प्रचलन तेजी से बढ़ रहा है।

फ्लोरिन – अस्थि एवं दांतों के अन्तर्गत पाया जाता है।

जल – (i) ''पानीयं प्राणिना प्राणाः'' अर्थात् पानी प्राणियों का प्राण है। (ii) तापमान नियंत्रण में सहयोगी (iii) पोषक तत्त्वों के परिवहन का काम (iv) ऊतक निर्माण एवं मरम्मत कार्य (v) पाचन, अवशोषण एवं विसर्जन (उत्सर्जन) का कार्य (vi) स्नानादि –वस्त्र प्रक्षालन के कार्य में जल का उयोग (vii) जल का शारीरिक तरल जैसे – रक्त लसीका, मस्तिष्क मेरू तरल सेरेब्रो स्पाइनल फ्लड में उपयोग होता है। भोजन को नम बनाता है। भोजन के पाचन में सहायता करता है। रक्त को तरल बनाता है। विशेषकर छोटी आंतों में रक्त की कोशिकाओं में मिश्रित पोषक तत्त्वों को अवशोषित कर शरीर के विभिन्न भागों में पहुँचाता है। कोशिकाओं में ''प्रोटोप्लाज्म'' के रूप में रहता है। शरीर की सर्वाधिक रासायनिक प्रतिक्रिया में जल के माध्यम से होती है। शरीर का तापमान बनाये रखता है। शरीर से उत्सर्जित होने वाले त्याज्य एवं विषैले पदार्थों को पसीना, श्वास (co_2) मल–मूत्र आदि द्वारा घोलकर छानकर शरीर से बाहर निकालता है।

इस प्रकार शरीर में आहार घटकों द्वारा पोषण की प्रक्रिया होती है। सेवन किये गये भोजन का उपयोग शरीर के पोषण के लिये होता है। आहार विज्ञान में पोषण के सिद्धान्तों की एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसमें स्वस्थ व्यक्ति एवं रोगियों के लिए भोजन एवं पोषण का महत्त्व है।

आयुर्वेद के अनुसार आहार द्वारा पोषण विधि –

जो शरीर का धारण करे वह धातु कहलाती है, यथा – ''धारणात धातवः'' ये सात धातुयेंक्रमशः निम्नानुसार होती है –

1. रस धातु
2. रक्त धातु
3. मांस धातु
4. मेद धातु
5. अस्थि धातु
6. मज्जा धातु
7. शुक्र धातु

ये सभी धातुऐं शरीर का धारण सूक्ष्म एवं स्थूल रूप से करती है। आहार द्वारा प्राप्त पोषण, तत्त्वों से इन धातुओं का पोषण होता है। ये सभी धातुऐं शरीर को स्थिर एवं दृढ़ता प्रदान करती है। मानव शरीर का प्रत्येक अवयव दोष धातु एवं मल से विहीन नहीं होता। सम्यक मात्रा में ये सभी शरीर का धारण बल संवर्धन करती है। हमारा शरीर दोष धातु एवं मलों का संयुक्त रूप से समूह है। ''दोष धातु मल मूलं शरीरम्''।

धातुओं की पोषण विधि –

1. रस धातु – शरीर की सबसे पहली धातु है जो प्लाज्मा के रूप में अग्रणी धातु है। आहार द्वारा सर्वप्रथम रसधातु का निर्माण एवं पोषण होता है। यही रस धातु शरीर की रक्त एवं मांसादि उत्तरोत्तर धातुओं का पोषण करती है।
2. रक्त धातु – वीर बहुरी या तपाये हुए स्वर्ण की आभा के समान वर्ण की यह धातु होती है। रक्त को ही ''जीवन'' संज्ञा दी है। रक्त धातु शरीर का ''मूल'' है इसकी उत्पत्ति ''रसधातु'' द्वारा होती है।
3. मांस धातु– शरीर के विभिन्न अंगों में मांस धातु होती है। इसकी उत्पत्ति रक्तधातु से रक्ताग्नि द्वारा पाचनोपरान्त सार भाग में होती है। इस मांस धातु के वृद्धि होने पर स्थूलता (मोटापा), भारीपन, शरीर में गुरूता आती है।

4. मेद धातु– मेदधातु मांसाग्नि के द्वारा पाचनोपरान्त सारभाग के रूप में उत्पन्न होती है। यह त्वचा के नीचे स्थित होकर अस्थि धातु का निर्माण करती है। मेदधातु द्वारा ही शरीर में स्नेह (चिकनाई) एवं क्लेद उत्पन्न होता है। अस्थियों को मजबूत करना तथा अंगों में स्निग्धता उत्पन्न करना इसका कार्य है।
5. अस्थि धातु–मानव शरीर की आकृति, संरचना, (ढांचा) इस धातु द्वारा निर्माण होता है एवं शरीर को दृढ़ता आकार एवं आधार अस्थि धातु द्वारा प्राप्त होता है। मेदाग्नि द्वारा पाचनोपरान्त सारभाग में अस्थि धातु का निर्माण होता है।
6. मज्जा धातु– यह धातु ''अस्थि अग्नि'' के पाचनोपरान्त सार भाग में बड़ी अस्थियों में पायी जाती है। इसे ही ''बोनमेरो'' के नाम से जानते हैं। त्वचा में स्निग्धता (चिकनाई) उत्पन्न करना, शुक्र धातु का निर्माण करना आदि इसके कार्य हैं।
7. शुक्र धातु– यह धातु शरीर को बल प्रदान करती है। फिटकरी के समान श्वतेवर्ण की होती है। संभोग आदि क्रिया में यह मूत्रमार्ग द्वारा शरीर से बाहर निकलती है। सन्तानोत्पत्ति करना, शक्ति, बल, ऊर्जा, आभा, प्रभा, ओज तथा तेज आदि इसी धातु पर निर्भर करता है।

इस प्रकार आहार से पोषण के क्रम में सात धातुऐं एवं उपधातु के रूप में स्तन्य (दूध) कण्डरा, सिरा, वसा, त्वचा, स्नायु आदि सात उपधातुयें तथा इनके मल के रूप में पुरीष, मूत्र, स्वेद आदि का निर्माण होता है।

पोषण आधारित आहार द्रव्य –

(i) अन्न एवं मोटे अन्न
(ii) दालें
(iii) वनस्पतियाँ (साग–सब्जियाँ)
(iv) तिलहन एवं गिरी
(v) फल
(vi) प्राणी (पशु) जन्य भोजन
(vii) वसा एवं तेल
(viii) शर्करा एवं गुड़
(ix) मिर्च मसाले
(x) अन्य शेष खाद्य पदार्थ (पेय)
(xi) दूध एवं दूध से बने पदार्थ
(xii) जल (नदी, कुएं झील आदि)

स्वास्थ्योपयोगी आहार को प्रभावित करने वाले कारक

1 ऋतु के विपरीत आहार का सेवन
2 प्रज्ञापराध द्वारा आहार का सेवन
3 इन्द्रियों (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) का असात्म्य होना

सेवित आहार जो पोषण जन्य होता है शरीर के लिए हितकारी होता है उसे भी ये उक्त कारक रोगोत्पत्ति की परिस्थिति उत्पन्न करते हैं।

17.5 आहार रूपी विशेष सदाचार

हम यह जानते हैं कि आहार हल्का–सुपाच्य, प्रकृति के अनुसार, पथ्यकारक ऋतुचर्यानुसार शास्त्र सम्मत पाचन शक्ति के अनुरूप ही सेवन करना चाहिए। इनके अलावा भी कुछ अतिरिक्त सदाचार आहार के संबंध में उनका निम्नानुसार वर्णन किया जा रहा हैः

1. भोजन का स्थान यथा सम्भव एकान्त, स्वच्छ बर्तनों (पात्रों) में, पुष्पादि से सुसज्जित वातावरण में, पवित्र स्थान पर होना चाहिए।
2. सुन्दर एवं मनोनुकूल वातावरण में मनको शांति मिलती है अतः ऐसे स्थान पर बैठकर ही भोजन करना चाहिए।
3. जहां पर रेडियों, टेलीविजन, टेलीफोन, मोबाईल का उपयोग हो रहा हो वहां पर इन संचार संसाधनों को बंद कर ''तन्मना भुन्जीत्'' मन को प्रसन्न भाव में रखते हुए आहार सेवन करना चाहिए।
4. भोजन के समय परिवारजनों से ऐसा कोई वार्तालाप नहीं हो जिससे मन अशांत कोध, चिन्ता, घबराहट की स्थिति उत्पन्न हो।
5. एक ही जैसा पथ्यकारी भोजन करते करते मन उब जाता है, रूचि कम हो जाती है। अतः रम्यता–सुन्दरता, आकर्षक पात्रों में रखा हुआ भोजन रूचि उत्पन्न करता है। ऐसे आहार में अरूचि दूर करने हेतु निर्माण में विविधता, सुगन्ध स्वाद (धनिया, हींग, सौंप इलायची) का उपयोग किया जा सकता है।
6. भोजन का रंग–गंध रस तथा स्पर्श ये सभी रूचिकर होने चाहिए जिससे लालास्राव एवं पाचकरसों का सम्यक् स्राव उत्पन्न हो सके।
7. भोजन करने क समय उस स्थान पर कोई ऐसी वस्तु या घृणित प्राणी वहां न हो जिसको देखकर मन में घृणा एवं ग्लानि उत्पन्न हो।
8. भोजन हमेशा यथा सम्भव उष्ण एवं ताजा ही सेवन करना चाहिए। वही स्वास्थ्यवर्धक एवं स्वादिष्ट होता है। जठराग्नि भी उसी को पचाने में सक्षम होती है। ताजे आहर के द्रव्य पौष्टिक भरे हुए अर्थात् पाषणकारी होते हैं। बासी एवं ठण्डा भोजन, डिब्बा बन्द भोजन, जंकफूड आदि अपौष्टिक तथा कुपोषण जन्य होते हैं।
9. भोजन करना भी एक आध्यात्मिक क्रिया से कम नहीं हैं। अतः सुखी प्रसन्न आदन्दित होकर शांत मन से आहार ग्रहण करने से पाचक स्रावोंका स्रवण आवश्यकतानुसार उचित मात्रा में होता है।
10. मानसिक भाव यदि काम,क्रोध, लोभ, मोह ,ईर्ष्या, राग–द्वेष, भय, लज्जा, घबराहट, चिन्ता , ग्लानि आदि की स्थिति में पाचक स्रावों का भावावेश की स्थिति होने पर कम स्राव होता है। जिससे अपक्व अन्न तथा आमविष की उत्पत्ति होने पर रोगोत्पत्ति होती है।
11. मानसिक भावों में यदि मन भावावेश अवस्था में है तो भोजन में स्वाद भी नहीं आता, न ही उसे रूचिपूर्वक खाया जाता है। ऐसे बेस्वाद आहार को चबाने का मन भी नहीं करता। अतः ''दांतों का काम आंतों को करने'' के कारण भी पाचन शक्ति क्षीण होकर बीमारियाँ उत्पन्न होती है। भोजन को चबा चबाकर खाने से आहार में लार का संयोजन ''सम्यक मात्रा में होने से पाचनशक्ति ठीक होती है एवं पोषक तत्त्व आहार से सुविधापूर्वक प्राप्त होते हैं।
12. सम्यक पाचन एवं जठराग्नि हेतु आहार उचित मात्रा में होना परमावश्यक है। भोजन की मात्रा में सम्पूर्ण आहार द्रव्य सलाद आदि तथा पृथक् पृथक् मात्रा कौनसी कितनी लेनी चाहिए इसका अवश्य ध्यान रखना चाहिए। आमाशय का एक तिहाई भाग रिक्त होना चाहिए। जिससे पाचक रस रिक्तभाग से मिलकर अच्छा क्लेदन करते हुए सम्भक पाचन कर सके। मिताहार करने से उदर में दबाव भारीपन तथा पार्श्व में पीड़ा तनाव आदि नहीं होता है।भोजन स्वयं की प्रकृति के अनुकूल सात्म्य होना चाहिए। किसी भी भोजन सामग्री का सात्म्य एवं असात्म्य का ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति का अपना अलग अभ्यास एवं अनुभव पर आधारित होता है। अतः सात्म्यानुकूल आहार स्वास्थ्यवर्धक होता है।

17.6 सारांश

हम जो आहार ग्रहण करते हैं वह पोषण की विभिन्न प्रक्रियाओं में से होता हुआ कोशिका का ''जीव द्रव्य (Protoplasm)'' बनता है, जो जीवधारियों में जीवन का प्रधान आधार है। इसी से सभी प्राणियों की सभी क्रियायें मे सम्पादित होती है। इस द्रव्य के नष्ट होने पर मृत्यु हो जाती है।

सेवित आहार द्रव्य को चार चरणों से शरीर में गुजरना होता है। आहार का पाचन (Digestion) उसका अवशोषण (Absorption) उसका स्वांगीकरण या आत्मीकरण (Assimailation) एवं अपशिष्ट पदार्थों का (मलों) निर्हरण। भोजन की आवश्यकता पोषक तत्त्वों की पूर्ति हेतु मनुष्य करता है। ऊष्मा (ताप सन्तुलन) हेतु श्वास क्रिया, हृदय स्पन्दन आदि कार्यों, ऊर्जा या शक्ति प्राप्ति हेतु, जीव द्रव्य के निर्माण हेतु क्षतिपूर्ति हेतु, शारीरिक विकास वृद्धि हेतु, खनिज लवणों विटामिन्स द्वारा रोगों से शरीर की सुरक्षा हेतु, संतुलित पोषण जन्य द्वारा स्वास्थ्य संरक्षण हेतु भोजन किया जाता है। अष्ट विध आहार के विधि विशेष आयतन, आहार के सदाचार तथा आहार के विविध घटकों की पोषण विधि का अध्ययन इकाई में किया गया है।

17.7 शब्दावली

मंथन – मथना
उपयोग संस्था – आहार करने के नियम
भुञ्जीत – भोजन करना
पथ्यकारी – शरीर के अनुकूल भोज्य पदार्थ
आमविष – अपक्व भोजन द्वारा उत्पन्न द्रव्य
अंकुर (viIIi) – छोटी आंत स्थित भित्तियों में अंगुलिसदृश रचना तो अवशोषण का कार्य करती है।
गलगण्ड – गले में होने वाली आयोडीन की कमी से सूजन
प्रज्ञापराध – रोगों का वह कारण जिसमें बुद्धि द्वारा अपराध करते हैं। त्रिदोषों के प्रकोप का मुख्य कारण प्रज्ञापराध कहलाता है।

17.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1 चरक संहिता ''पिद्योतनी'' – पं. काशीनाथ शास्त्री
2 स्वस्थवृत्त विज्ञान – डॉ. सर्वेशकुमार अग्रवाल
3 प्राकृतिक आयुर्विज्ञान – डॉ. राकेश जिन्दल
4 शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान – श्रीनन्दन बंसल
5 आयुर्वेद दीपिका – टीका चक्रपाणिकृत
5 चरक संहिता – डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी
6 सद्वृत्त विज्ञान – डॉ. रामहर्षसिंह
6 पांतञ्जल योग दर्शन – डॉ. नित्यानन्द शर्मा
7 सुश्रुत संहिता – आयुर्वेद रहस्य दीपिका
8 आयुर्वेदचिकित्साविज्ञान – वैद्य बनवारी लाल गौड़

17.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आचार्य चरक के अनुसार ''अष्टविध आहार विधि विशेष आयतन'' का विस्तार से वर्णन कीजिए?
2. आहार के घटकों की पोषण विधि का वर्णन कीजिए?
3. ''करण'' का विस्तार से वर्णन कीजिए?

इकाई 18– पोषण द्वारा शरीर का निर्माण करना

18.1 प्रस्तावना
18.2 उदेश्य
18.3 पोषण के द्वारा शरीर का निर्माण एवं परिचय
18.4 पोषण के द्वारा शरीर निर्माण आधुनिक मतानुसार
18.5 पोषण द्वारा शरीर के निर्माण आयुर्व्रेद मतानुसार
18.6 सारांश
18.7 शब्दावली
18.8 स्वमूल्याकन करना
18.9 संदर्भ ग्रथ सूची
18.10 निबन्धात्मक

18.1 प्रस्तावना

आज के प्रगतिशील युग में नवीनतम खोजों से अनुसंधानों के आधार पर मानव शरीर में जो कि अनेक मंत्रों के द्वारा निर्मित मशीन जैसा है उसके गूढ़ रहस्यों, जीवन–यापन, पोषण के द्वारा शरीर का निर्माण आदि। का सरलीकरण होते हुये स्वस्थ सहने के रास्ते सुगम हो गये हैं।

हमारा शरीर कार्य ही नहीं करता बल्कि स्वयं शक्ति पैदा करता है। टूटे – फूटे अंगों की स्वयं मरम्मत भी करता है। मानव शरीर एवं श्रेणी का विलक्षणता लिये हुये सजीव मशीन है। शरीर के विभिन्न अंगावयवों का विकास, सुदृढीकरण ,उर्जा–शक्ति ,उत्पादन,अंगावयवों की मरम्मत आदि उत्पति– विकास से लेकर स्वस्थ शरीर बना रहें यि सब आहार के द्वारा प्राप्त पोषण की प्रक्रिया पर ही निर्भर है। ''पहला सुख निरेागी काया'' अर्थात स्वस्थ शरीर प्रकृति का अमुल्य रत्न है।

सेवित आहार एवं पोषक जन्य पोषण के द्वारा ही आरेाग्यमय शरीर प्राप्त हेाता है। स्वस्थ रहने पर ही हम जीवन की सभी सांसरिक ,आध्यात्मिक , सामाजिक, एवं आत्मिक क्रियाओं को व्यवस्थित रूप से कर पाने में सक्षम होते है। इस इकाई में शरीर को जानते हुये पोषण के द्वारा शरीर का निर्माण कैसे हेाता हैं। इसका आगे अध्ययन किया जा रहा है।

18.2 उद्देश्य

इस इकाई में हम अध्ययन करेगें कि पोषण के द्वारा शरीर का निर्माण कैसे होता है, पोषण के द्वारा शरीर का आधुनिक मतानुसार कैसे निर्माण होाता है, सर्वप्रथम पोषण के द्वारा आयुर्वेद मातनुसार शरीर का निर्माण कैसे होता है,पोषण का महत्त्व एवं पोषण की तीन अवस्थाओं का वर्णन अन्त में किया है।

18.3 पोषण के द्वारा शरीर का निर्माण एवं परिचय

- दोषधातु मलमूलं हिं शरीरम्– दोषु धातु मल एवं मूल का आधार शरीर है।
- क्षीयमाने हि शरीरम। – जो कि क्षीणता को शनैःशनैः प्राप्त करें वह शरीर है।
- पंच भौतिक तत्त्वों से निर्मित जिसमें जीवात्मा होने पर शरीर ही रहता है।
- शुक्र शोणित के गर्भाशय में संयोग होने पर आत्माा के प्रवेश को शरीर माना है।

शरीर का विभाजन–

शरीर के अगों के छः अंगों में विभाजन आचार्य चरक एवं शरीर के शास्त्र के प्रधान आचार्य सुश्रत ने माना है।

षंडग शरीर में दो हाथ,दो पैर,सिर ग्रोवा, मध्य शरीर (उदर एवं वक्ष)

शरीर के निम्न 14 प्रधान अयव होते है।

(i) त्वचा
(ii) सेवनी
(iii) इन्द्रियाँ।
(iv) अस्थि
(v) प्राणायतन
(vi) हृदय
(vii) नौछिद्र
(viii) कोंष्ठाग
(ix) कूर्य
(x) स्नायुशिरा
(xi) कण्डरा
(xii) जाल
(xiii) संधात
(xiv) सींमत

01. त्वचा – यह शरीर की सबसें बडी स्पर्शइन्द्रिय है, सम्पूर्ण शरीर को चादर की तरह ढ़कती है। त्वचा में ''स्वेदवाही रोमकूप'' होते हैं। स्वेदवह स्त्रोतस इसी में होता है। यह निम्न प्रकार का होता है।

(i) अवभासिनी त्वचा
(ii) लौहिता त्वचा
(iii) श्वेता त्वचा
(iv) ताम्र त्वचा
(v) वेदिनी त्वचा
(vi) रोहिणी त्वचा

अस्थियॉ परिचय– शरीर का आकार एवं स्थिरता अस्थियों के द्वारा हेाता है। प्राचीन आयुर्वेद शास्त्र में कुल ती सौ अस्थियां मानी हैं

दोनो हाथों में		120
मध्यशरीर में	–	117
ग्रीवा में	–	63
कुल अस्थियों	–	300

चरक के अनुसार–

चारो शाखाओं में (हाथ पैरो में)	–	128
मध्य शरीर में	–	140
ग्रीवा के उपर	–	92
कुल योग		360

आधुनिक मतानुसार कुल 206 निम्नानुसार है।
अस्थियॉ शरीर में मानी गयी है।

दोनों हाथों एवं दोनो पैरों में	–	120
मध्य शरीर में	–	50
ग्रीवा के उपर	–	36
कुल अस्थियॉ		206

तेरह स्त्रोंतस :–

01. प्राणवह स्त्रोतस
02. उदकवह स्त्रोतस
03. अन्नवह स्त्रोतस
04. रसवह स्त्रोतस
05. मांसवह स्त्रोतस
06. भेदवह स्त्रोतस
07. अस्थिवह स्त्रोतस
08. मज्जा वह स्त्रोतस
09. शुक्रवह स्त्रोतस
10. पुरीष वह स्त्रोतस
11. मूत्रवह स्त्रोतस
12. रक्तवह स्त्रोतस
13. स्वेद वह स्त्रोंरस

मनुष्य का शरीर इन सभी स्त्रोतों से बना होता है। जिनमें त्रिदोष (वातपितक) निरन्तर गति करते रहते है। ये 13 प्रकार के होते हैं। स्त्रोतस प्राकृतिक अवस्था में समान कार्य करते है। शरीर स्वस्थ रहता है। कम हो या अधिक कार्य करते हैं। शारीरिक विकृति होकर व्याधियों की उत्पन्न होती है तो भोजन से प्राप्त आहार के घटक द्रव्यों, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट , वसा, एवं वविटामिन आदि।

खनिज लवण एवं जल को ग्रहण करते हुये शरीर में आवश्यकतानुसार मात्रानुसार पहुँचाते है।

विजातीय द्रव्य जो कि रेाग का प्रमुख कारण है। जैसे मल, पसीना, आदि को शरीर से बाहर निकालना होता है।

शरीर एवं मन में दोनों का सजीव रखने हेतु प्राणों का संवहन पर जीवन बनाये रखना है। अर्थात् रक्तधरा में प्राणवायु (आक्सीजन) का वहन करना है।

संधियॉ–

जिस स्थान पर दो या अंगों का संधान(मिलना/जुड़ना) होता है। उस स्थान को संधिस्थान कहते है।

जब दो या दो से अधिक अस्थियाँ परस्पर मिलती है तो उस संयोग वाले स्थान को संधि स्थान कहते है।

अस्थि संधिस्थान को ही संधि स्थान कहते है।

संधियॉ षडगं शरीर में कुल दोनों प्रकार की दस होती है।

हाथ पैरों में	–	68
मध्य शरीर में	–	59
ग्रीवा के उपर	–	83
कुल योग		210

मांसपेशियाँ–

सम्पूर्ण शरीर में पांच सौ होती है।

दोनो हाथ एवं पैरो में	–	400

मध्य शरीर में – 66
गर्दन एवं सिर में – 34
कुल यांग 500
शरीर की समस्त चेष्टायें पेशियों के द्वारा होती है।
मांसपेशियों की चेष्टा में आठ प्रकार की होती है।

(i) आकर्षण
(ii) अपकर्षण
(iii) उन्नयन
(iv) अवमनन
(v) संकोचन
(vi) प्रसारण
(vii) मुद्रण
(viii) विस्फारण करना।

स्त्रियो में स्तनों एवं गर्भाश्य की 20 मांसपेशियों होने से उनमें कुल 520 मांसपेशियॉ होती है।

सिरायें–

सम्पूर्ण शरीर में ''सात सौ सिरायें'' होती है। जिनमें से मूल सिरायें चालीस 40 होती है।

क्र 0 स0	नाम सिराये	मूल सिरा में	कुल सिरायें
01	वातवह सिरा	10	175
02	पितवह सिरा	10	175
03	कफवह सिरा	10	175
04	रक्त वह सिरा	10	175

शिरायें शरीर में रक्त को हदय की ओर ले जाती है। ये अशुद्व रक्त का शरीर में संवहनन करती हे। और ये जिनमें सरण (बहने) की क्रिया होती हे। वह सिरा है।

धमनियॉ–
मुख्य धमनियॉ – 10
अधोगामी धमनियॉ – 10
तिर्यगामी धमनियों – 04
कुल धमनियॉ 24

''सरणात् सिरा एवं धन्यात धमनी'' जो धमन के साथ शुद्व रस 0_2 का संवहन करे वह धमनी कही जाती है।

धमनियों के द्वारा सम्पूर्ण शरीर में शुद्वरक्त का संवहन होता है।

कोष्ठ एवं कोष्ठाग

शरीर के आठ अंग अवयवों को एक स्थान पर मिलाकर कोष्ट बनता है। ये आकाश महाभूत अवकाश वाले स्थान कोष्ठ की श्रेणी में आते है।

(i) आमाशय
(ii) मूत्राशय
(iii) अग्नाशय
(iv) पक्वाशय
(v) मुत्राशय
(vi) रूधिरशय
(vii) उण्डूक
(viii) दोनों फूक्फुस

➢ **कलायें:–**

शरीर में सात कलाये होती है। दो घाात्वाशयों के मध्य में शरीर की गर्मी के कारण परिपक्व हुये क्लिन्न भाग को लेकर कला नामक संज्ञा से जाना जाता है। शारिरिक रस रक्तादि धातुओं एवं रक्ताशय आमाशय आदि आशयों में पृथकता या भिन्नता करने वाला मध्य में स्थित आवश्यक भाग को कला कहते हैं।

01. मांसधारा कला
02. रक्त धरा कला
03. मेदोधरा कला
04. श्लेष्मधरा कला
05. पूरीषधरा कला
06. पित्ताधरा कला
07. शुक्रधरा कला

आशय– जिसमें द्रव्य का ''आश्रय'' रहें उसे आशय की संज्ञा है। सामान्यतः वात पित कफ के अधिष्टान को आश्रय कहते हैं। जो महाभूत प्रधान खाली स्थानवाली हो उसे आश्रय कहते है। आशयों की संख्या आठ प्रकार की होती है।मानव का शरीर पांच महाभूतों से मिलकर बना हुआ है।

(i) पृथ्वी महाभूत
(ii) जल महाभूत
(iii) तेज महाभूत
(iv) वायु महाभूत
(v) आकाश महाभूत

जीवित शरीर के पोषण के द्वारा निर्माण होता है। इस शरीर में चार प्रकार की अवस्था होती है–

(i) हितायु– जीवन के अनुरूप अनुकूल
(ii) अहितायु– जीवन के विरूद्व प्रतिकुल वातावरण
(iii) सुखायु– स्वस्थ जीवन
(iv) दुखायुः रोगावस्था

जीवित शरीर जो कि पोषण के द्वारा निर्मित होता है उनमें आधुनिक एवं प्राकृतिक विद्या के अनुसार निम्न भाव पाये जाते हैं यथा–

01. **वृद्वि एवं विकासः–** मर्म – मर्म का 09 माह का विकास जन्म शिशु अवस्था, किशोरावस्था ,वयस्क (युवावस्था) एवं वृद्वावस्था इस प्रकार की वृद्वि एवं विकास का सिंद्वात चलता रहता है।
02. **सन्तानौपति प्रकियाः–**प्रत्येक जीव अपने जीव को प्रजनन प्रकिया के द्वारा उत्पन्न करता है। स्थूल एवं सूक्ष्म दोनों ही प्रकार के जीवों में उत्पादन/ प्रजनन क्षमता पायी जाती है।
03. **गतिमान्यताः–**संसार के सभी पदार्थो में चल एवं अचल दो प्रकार की गतियॉ पायी जाती है। सजीव में जीव जन्तु मनुष्य आदि चल तथा पेड़ पौधे एवं वनस्पतियॉ, लता– क्षुप, स्थिर रहते है। अचल भी जड़ें, तनें, डालियॉ, पतें, आदि दूर दूर तक वृद्वि को प्राप्त होते रहते है।

04. **चेतनता–** प्रत्येक शरीर में जिसमें सजींव एवं मृत शरीर का अन्तर किया जाता है वह है। प्रोटोप्लाज्म का समावेश करना ।

''प्रोटोप्लाज्म'' अर्थात् जीवनीय द्रव्यों के कोशिकाओं में मनुष्य ,वनस्पति, पेड़, पौधे, सभी में पाया जाता है, जो कि जीवन का मूल आधार है–

संवहन एवं संचरण की प्रकिया :–शारीरिक सप्तधातुओं,उपधातुओं, मलों, का एक स्थान से दूसरें स्थान पर संवहन एवं संचरण की प्रकिया में आहार से प्राप्त ऊर्जा ऊष्मा –पोषण के द्वारा जीवधारियों में पायी जाती है।

चेतना एवं संवदेना का भावः प्रत्येक जीवधारियों में चेतना एवं संवेदन का भाव क्षोभ आदि गुणों की प्रधानता रहती है। वातावरण के सानिध्य में शीतलता, उष्णता, तीक्ष्णता आधात (चोट) , सुख, दुख, क्रोध, अनुकूल कियायें प्रतिकूल कियायें सभी संवेदनशील न्यानाधिक कियायें होती है।

श्वसन की प्रकिया– संजीवों में किसी ना किसी प्रकार से श्वसन कार्य ऑक्सीजन लेना एवं कार्बन डाईऑक्साइड छोड़ना आदि कियायें समान्यतः पायी जाती है। इस प्रकार ते जन्म से लेकर सतत् चेतना प्रधान उक्त सभी लक्षण शरीर में आहार के द्वारा पोषक तत्त्वों के द्वारा स्वस्थ शरीर में निर्माण हेतु पाये जाते हैं।

वातदोषः– रस , शीतल, लघु, सूक्ष्म, चल, विशाल, विशद, खर, ये सात भैतिक गुण प्रधान रूप से होते हैं। वातदोष के द्वारा शरीर में कियाओं का संचालन चेष्टायें बोलना, श्वास, प्रश्वास, हदय की गति, तंत्रिका तत्र का जन्य सवंदनायें, मल मूत्र विसर्जन वाणी, इन्द्रियों, का संचालन, नियंन्त्रण आदि। कार्य शरीर के द्वारा सम्पादित किये जाते है।

01. **पितृदोषः–**उष्ण तीक्ष्ण, एवं द्रव, मिश्रण , गन्ध, कटु , अम्ल एवं आदि ये भैतिक गुण प्रधान होता है। पित दोष के द्वारा नेत्रों से देखना, आहार को पचाना, उष्मा का निर्माण करना । भूख एवं प्यास को उत्पन्न करना। मृदुता एवं कोमल, तथा कोमलता एवं लचीलापच लाना, विशैली तत्त्वों में जलाना आदि कार्य शरीर के पित दोष के द्वारा सम्पादित होते हे।

    क पाचक पित्त

ख आलोचक पित्त
ग. रंजक पित्त
द. साधक पित्त
घ भ्राजक पित्त

02. **कफ दोष–** कफ दोष के द्वारा सेवित अन्न का क्लेदन होता है। संधियों को धर्षण से बचाना, संधियाँ, को गति। प्रदान करना। शरीर में स्नेहनता की पूर्ति करना, सभी इन्द्रियों का तर्पण करना, बुद्वि स्मृति आदिभावों को बल प्रदान करना। आदि कार्य शरीर के अंकदोष के द्वारा सम्पादित किये जाते हैं।

(i) अवलम्बक
(ii) तपर्क
(iii)बोधक
(iv)क्लेदक
(v) श्लेष्मक

मन का वैशिष्टयः–

मुख्य रूप से सात्त्विक, राजसिक, एवं तामसिक भावों प्रदान मन तीन प्रकार का होता है। सारे रोग शारीरिक एवं मानसिक भागों में बंटे हुये है। शारिरिक रोग का अधिष्टात स्थान शरीर है। एवं मानसिक रोगों का अधिष्टान मन को माना गया है। मन की भुमिका शारिरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार के रोगों में होती है। चित्त की वृत्तियों को रोकना है। ही योग शास्त्र का प्रधान उद्देश्य है। मन को ''चित्त ,चैत, मानस'' आदि नामों से जाना जाता है। आत्मा का ज्ञान कराने हेतु इन्द्रियों से कडी जोडने का काम करता है। मन ही शरीर को शुभ एवं अशुभ कर्म करने हेतु प्रेरित करता है। मन की गणना आयुर्वेद ने ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रिय दोनो में होती है। सात्विक मन मे निर्मल होता है।

मन के कर्मः–

01. चिन्ता करना
02. तर्क करना
03. ध्यान करना

संकल्प करना

इन्द्रियों को अपने अपने कार्यो में प्रेरित करना।
हित अहित में भेद करना
क्या उचित एवं क्या अनुचित में भेद करना।
क्या करना क्या नहीं करने में विभाजन करना आदि।
सत्त्व गुण रहने पर शुभ कार्य करना
रत तम गुण रहने पर अशुभ एवं बूरे कार्य करना आदि।

मन का गुण–

01. एकत्व एवं अणुत्व अधिक सूक्ष्म
02. आकाश की तरह व्यापक
03. सभी इन्द्रियों से सम्बन्ध (तीव्र गति के कारण)

पंच महाभूतों में मानसिक गुण निम्न प्रकार है–

- आकाश महाभूत सत्व गुण प्रधान
- वायु महाभूत रजोगुण प्रधान
- जल महाभूत सत्व एवं तमो गुण की प्रधानता
- पृथ्वी तमोंगुण प्रधानता

18.4 पोषण के द्वारा शरीर का निर्माण आधुनिक मतानुसार

शरीर में शक्ति में उत्पन्न करने तथा पातक्रम बनाये रखने एवं नष्ट कोशिकाओं के पुननिर्माण हेतु शरीर में आहार की सतत आवश्यकता होती है। शारीरिक उर्जा, वृद्वि एवं ऊतकों की मरम्मत हेतु मुख्य रूप से पोषण के द्वारा प्राप्त तीन पोषक तत्त्व निम्न प्रकार से है–

01. प्रोटीन 02. वसा 03. कार्बोहाइड्रेट

हामरा भोजन चाहे शाकाहारी हो या मांसाहारी हो उसमें न्यूनाधिक धटक 01.. प्रोटीन ,02. कार्बोहाइड्रेट, 03. वसा 04. विटामिन 05. खनिज लवण एवं जल पाये जातें है। हम जैसा आहार करते है वैसा ही हमारे शरीर में अवशोषित होकर कार्य करने लगता है।
इसकी एक वैज्ञानिक पोषण एवं अवशोषण को प्रक्रिया है जो पाचन द्वारा सम्पादित होती है।
भोजन के अवयव जटिल भौतिक रसायन के रूप में तथा जल में अघुलनशील स्वरूप में रहते है, ये जटिल भौतिक कम्पाउडं उसी रूप शरीर की इकाई कोशिकाओं में काम नहीं आते है। अपितु हमारें शरीर में कियायें हेाती रहती है। जो इस भोजन के जटिल तत्त्वों को सरल यौगिक तत्त्वों में जल में घुलनशील बना देते है हम पूर्व में पढ चेके है कि आहार का सर्वप्रथम मुख गुहा में लार के साथ समायोजित किया जाता है। मुंह में उसे चबा चबाकर लार केसाथ समायोजन होता है। मुहं मे उसके चबा चबाकर छोटे छोटे समूह में विभक्त करते हुय उसकी लुग्दी जैसा कवल बनाया जाता है।
अमाशय एवं छोटी आत में भोजन को ओर खडित कर दिया जाता है। यह खडित करने की प्रक्रिया विभिन्न प्राकर के पाचत तत्त्वों के हाते है। से पाचक रसों ही पाचन क्रिया होती

है, उदाहरण के लिये पेप्सीन नामक एजाइम का प्रभाव केवल प्रोटीन पर ही होता है। तथा टायलीन का प्रभाव स्टार्च एवं विशेषकर शर्करा पर पडता है।

वस्तुत पाचन एक अत्यन्त एक यांत्रिक तथा रासायनिक प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत भोजन को अधिक सूक्ष्म महिन में विभक्त कर पाचक रसों की क्रिया के द्वारा उस में परिवर्तित किया जाता है। जिससे उसके घटक रक्त ज्ञान अवशोषित कर सकें।आहार में पोषण हेतु विभिन्न भौतिक एवं रासायनिक प्रक्रियाओं के द्वारा अविलेय भोजन की विलय या घुलनशील बनाते हुये उसे स्वांगीकरण हेतु करना है। पाचन प्रक्रिया है। पाचन अंगो द्वारा पाचक रसों के स्त्रवण महत्त्वपूर्ण है। इस सम्पूर्ण आहार प्रक्रियाओं में आहार का सेवन तथा अवशोषण एवं निष्कासन की क्रिया होती है। इस क्रिया में कार्बोहाइर्डेट लैक्टोज, माल्टोज, आदि सरल शर्कराओं में परिवर्तन होकर अवशोषणक के योग्य बनाते है। अमीनो अम्ल वसा की वसीय ''अम्ल तथा ग्लिसटोन'' में परिवर्तित कर देती हे। कार्बोहाइडैट एवं वसाये भी प्रोटीन से पाचन तंत्र के द्वारा खंण्डित कर देती है। जिसका सुगमता से सरलता से रक्त की कोशिकाओं के साथ अवशोषण किया जाता है।

18.5 पोषण द्वारा शरीर निर्माण आयुर्वेद मतानुसार

"तत्राहारप्रसादाख्यो रसः – किट्ट च मलाख्यमभिनिवर्तते।"

आचार्य चरक कहते है कि आहार जब समुचित रूप में पच जाता है तो उसका जो स्वच्छ भाग होता है उसे रस कहते है तथा जो मल भाग होता है उसे "किट्ट" की संज्ञा दी है। इस प्रकार दोभाग आहार परिणाम के होते है।

(1) प्रसाद भाग (रस)
(2) मल भाग (किट्ट)।

1. **प्रसाद भाग "रस" से पोषणः–**
   इस धातु से सभी धातुओं का प्रथम धातु होने पोषण होता है। प्रसाद रूप आहार से कमश रस धातु रक्तधातु मांस धातु मेदधातु, अस्थिधातु, मज्जाधातु, शुक्रधातु ओज इन सभी का पोषण होता है।
   आहार के प्रसाद भाग से धातुओं के सारभुत पांचों इन्द्रियों द्रव्य और शारीरिक संधिया बंधन के कारणभूत स्नायू और कण्डरा में, तथा सात कलाओं में निम्नानुसार विभक्त होता है।
   (1) मांसधरा,
   (2) रक्त धरा
   (3) मेदोधरा,
   (4) श्लेष्म धरा
   (5) पुरोष धरा
   (6) पित्त धरा एंव
   (7) शुक्रधरा का पोषण होता है।

2. **किट्ट भाग (मल) से पोषणः –**

किट्ट भाग से मूत्र, पुरीष, स्वेद, वात, पित्त, कफ एवं कान, आंख, नाक, मुख, रोम कूप ओर जननेन्द्रियों का मल और केश दाढ़ी के बाल, रोम नख आदि अवयवों का पोषण होता है।

मल एवं प्रसाद स्वरूप में धातूयें रस एवं मल से पुष्ट होकर आयु एवं शरीर संहनन के आधार पर उसकी उचित मात्रा का शरीर में अनुसरण करती हैं। इस प्रकार उचित समान मात्रा में रहते हुये रस और मलधातु में अपने आश्रय से सुत समधातुओं वाले पुरूस को स्वस्थ बनाये रखती है। जब किसी प्रज्ञापराध मिथ्याहार विहार या परिणाम के द्वारा प्रसाद धातुओं का रस क्षीणता या वृद्वि को प्राप्त हो जाता है। तो आहार रस, आहार मुलक वृद्वि या क्षय के द्वारा स्वास्थ्यानुवर्तन हेतु धातुओं को सम बनाये रखता हैं इसी प्रकार किट्ट भाग भी मलों को सम बनाये रखता हैं।

चिकित्सा सिद्वान्त के अनुसार अपने प्रमाण से बढें हुये और बाहर निकलने वाले मल इनकी शीत, उष्ण और विपरीत गुण से चिकित्सा करने पर मल एवं धातुओं को साम्यावस्था में लाया जाता है। इन स्त्रोतों मुखों द्वारा प्रसाद एवं मल रूप में धातुओं एवं मलों की पुर्ति स्वभावतः होती रहती है।

XXX पाचन तंत्र में ऐसी ग्रथियाँ जिनसे पाचक स्त्राव निकलता हो वह निम्नानुसार है –

1. यकृत
2. अग्नाशय
3. प्लीहा

1. यकृत द्वारा पोषणः– सबसे बडी ग्रंथी शरीर में दांयी और होती है। इस के निम्न प्रमुख अंग है।

(i)	यकृत धमनी	-	Hepatic Artery
(ii)	प्रतिहारिणिसिरा	-	Portal Vein
(iii)	यकृत सिरा	-	Hepatic Vein
(iv)	यकृत वाहिनी	-	Hepatic Duct
(v)	पित्ताशय	-	Gall Bladder

यकृत के कार्य :–

1 पित्त का स्त्राव करनाः– यकृत की कोशिकाओं में पित बनता है, जिसे "बाइल ज्यूस" नाम से जानते है। पित्ताशय द्वारा "पित्त" गृहणी में आता है। जो वसा एवं वसा किण्वो, विटामिनों से अवशोषण में सहायता करता है। प्रोटिन तथा कार्बोहाइडेट पर पित्त की कोइ भी किया नहीं होती । पित्त में वसा अम्ल को घोलने की क्षमता होती है। पित्त द्वारा ही वसा अम्लों को दूधिया तरल अर्थात् "इमल्सन" में बदला जाता है। पित्त की चिकनाई को म्यूसिन कहते है। यह आंतो की चिकनाई बनाये रखता है। जिससे वसा का शीघ्र अवशोषण हो जाता है। साथ ही पित्त संकामकरोधी हे जिसमें विषाणुओं कीटाणुओं का नाश होकर शरीर

संक्रमण रहित होता है। पित्त हल्का सा मृदु विरेचक का कार्य करता है। इसकी कमी से मल में दुर्गन्ध आती है।

2 यूरिया को निर्माणः–प्रतिहारिणी सिरा द्वारा प्राप्त यकृत में आहार से सार भाग से प्राप्त अमीनो अम्ल का नाइट्रोजन अलग होकर "अमोनिया" में परिवर्ति हो जाता है। शरीर की कोशिकाओं के टूटने–फूटने से भी यूरिया भी बनता है, कुछ प्रोटिन भी टूटता है। यूरिया यकृत से वृक्क (Kidney) में होता हुआ रक्त से अलग होकर मूत्र द्वारा उत्सर्जित कर दिया जाता है।

3 विसमारण किया (Detoxicating Action) –यकृत रसायनों तथा जीवाणूओं से उत्पन्न विषाक्त पदार्थों को नष्ट कर देता है। यूरिया, यूरिक अम्ल, क्रियेटिनिन, जैंथिन आदि कार्बनिक यौगिक बनाकर मूत्र द्वारा बाहर निकाल दिये जाते है।

4 ''ग्लायकोजिन'' बनाना एवं संग्रह करनाः –कार्बोहाइड्रेट का अंतिम परिणाम ग्लूकोज में परिवर्तन होकर मांसपेशियों में जाता है। शेष बचा हुआ ग्लूकोज प्रतिहारिणी शिरा द्वारा रक्त के साथ यकृत में पहुँचता है एवं ''ग्लाइकोजिन'' में परिवर्तित होकर यकृत की कोशिकाओं में संग्रहित होता है। आवश्यकता पडने पर पुनः ग्लाइकोजिन को ग्लूकोज में परिवर्तित कर रक्त वाहिकाओं द्वारा शरीर के विभिन्न भागों में पहुचता रहता है।

यकृत में फाइब्रिनोजन को बननाः

1. हिपारिन का बनाना – इससे रक्त जम नहीं पाता
2. विटामिन ए, डी, बी.$_{12}$ प्लाज्मा, प्रोटिन, लोहा, तांबा, ग्लाइकोजिन, वसा आदि का संचय करना
3. रक्तक्षीणता को दूर करना
4. शरीर का तापमान बनाए रखना
5. मृत आर. बी. सी. को रक्त से अलग करना

2. अग्नाशय **(Pancreas)**

इसमें दो प्रकार की कोशिकाये होती है–

कोष्ठिका कोशिकाऐं - (Alveolar Cells)

द्विपक कोशिकाऐं - (Islet Cells)

अग्नाशयरस चार प्रकार को होता है।

1. ट्रिप्सिन - Trypsin
2. स्टियप्सिन - Stealpsin
3. एमाइलेप्सिन - Amylospsin
4. रेनिन - Renin

कार्बोहाइड्रेट का आत्मीकरण उचित नहीं होने से रक्त में ग्लूकोज की मात्रा अधिक होकर मधुमेह रोग हो जाता है। अग्नाशय रस आमाशय में प्रोटिन को

पेप्टान में परिवर्तित करता है। ट्रिप्सिन पेप्टान को "पोलिपेप्टाइट" में परिवर्तित कर देता है। पेालिपेप्टाइड अमीनों अम्ल में विभाजित हो जाता है जिसे रक्त की कोशिकाये अवशोषित कर लेती है।

स्टियप्सिस का लाइपेज पर प्रभाव होकर वसा को ग्लिसरिन एवं वसा अम्ल में विभक्ति कर देता है।

एमाइलेप्सिन स्टार्च को माल्टोज में परिवर्तित कर देता है। बाद में माल्टोज ग्लुकोज में बदल जाता है।

रेनिन यह दूध को थक्का बनाकर इसे फाड़ने का कार्य करता है।

3–पित्ताशय Gall Bladder- सामान्य पितवाहिनी, सामान्यकृता वाहिनी, पिताशय एवं पिताशय वाहिनी के संयोजन से बनत है। इसके Funds, Body, Neck, से तीन भाग होते है, भोजन के बाद ही पित्तरस ग्रहणी में आता है। यह क्षारीय एवं स्वाद में कडवा होता है। ओसतन प्रतिदिन 500 से 1000 मिली पित्त स्त्रावित होता है। इसमें पित्तरंग, पित्तलवण, कोलेस्ट्राल, म्यूसिन, सोडियमबाई कार्बोनेट आदि रहते है।– पाचन में सहायता करता है।– पची हुयी वसा को अवशोषित करने मे सहायक है।

4 प्लीहा **(Spleen):-** इसमें श्वेत रक्त कणिकाओं का निर्माण होता है।

टूटी–फूटी क्षयग्रस्त RBC का विनाश करता है। RBC टूटने से संचित लोहा को संचित करता है। मलेरिया टायफायड में प्लीहा बढकर शरीर को हानि से बचाता है एवं रोग मुक्त होने पर पुनः पूर्ववत् सामान्य हो जाता है।

पोषण द्वारा शरीर निर्माण का महत्त्व :–

(i) शरीर की गतिशिलता को सिर निरन्तर बनाये रखता है।
(ii) नवीन कोषों के निर्माण में सहायक है।
(iii) शक्ति एवं ऊर्जा प्रदान करता है।
(iv) शक्ति, साहस एवं शरीर को निरोग बनाता है।
(v) शक्ति का संचय जैसे– ग्लाइकोजीन, वसा रू‍प में करता है।
(vi) औसतन तापमान बनाये रखने में सहायक हैं
(vii) शरीर के निरन्तर विकास एवं वृद्वि करता है।
(viii) जोवन शक्ति एवं रोग निवारण क्षमता को बढाता है।
(ix) टूटे–फूटे ऊतकों की क्षतिपूर्ति करता है।

पोषण द्वारा हमें ऊर्जा मिलती है। इस ऊर्जा का रूपान्तरण (Energy Transformation) निम्न प्रकारों में होता है।

(i) ऊष्मा ऊर्जा (Heat Energy)
(ii) विद्युत ऊर्जा (Electrical Energy)
(iii) प्रकाश ऊर्जा (Light Energy)
(iv) ध्वनि ऊर्जा (Sound Energy)
(v) कार्य ऊर्जा (Work Energy)

रासायनिक स्थितिज ऊर्जा (Chemical Potential Energy) : -
आहार के चपापचय प्रकिया से उत्पन्न पदार्थ (वसा, ग्लाइकोजिन) शरीर के अंगो में जमा रहते है, जो आवश्यकता पडने पर शरीर में ऊष्मा प्रदान करते है तथा कार्य करने की शक्ति में बढाते है।
पोषण द्वारा शरीर निर्माण (धातु उपधातु मल का परिचय)
जो शरीर का धारण करें वह धातु कहलाती है। प्राचीन चिकित्सा शास्त्र में पोषण द्वारा शरीर को निम्न सात धातुओं का निर्माण माना गया है।

(i) रस धातु
(ii) रक्त धातु
(iii) मांस धातु
(iv) मेद धातु
(v) अस्थि धातु
(vi) मज्जा धातु
(vii) शुक्रधातु

पंचमहाभूतों द्वारा धातुओं की उत्पत्तिः–

धातु		पंचमहाभूत
(1) रस धातु	–	जल महाभूत
(2) रक्त धातु	–	अग्नि, जल, पृथ्वी
(3) मांस धातु	–	पृथ्वी
(4) मेद धातु	–	पृथ्वी + जल
(5) अस्थि धातु	–	पृथ्वी + आकाश
(6) मज्जा धातु	–	जल का महाभूत
(7) शुक्रधातु	–	जल का महाभूत

शरीर में धातु के समान गुणकर्म करने वाले विशेष भावों को उपधातु" कहते है। आहार रस से धातुओं की उत्पत्ति पश्चात् उनसे (1) उपधातु (2) मल इन दोनों को निर्माण होता है। आहार रस के तीन भाग है।

	धातु	उपधातु	मल
1.	रस	स्तन्य (स्त्री दुग्ध)	जीभ, नेत्र का आंसू
2.	रक्त	आर्तव	रंजक पित्त
3.	मांस	वसा	कान क ामल
4.	मेद (वसा)	स्वेद	जीभ, दांत, लिंग का मल
5.	अस्थि	दांत	नाखून
6.	मज्जा	केश	नेत्र का कीचड
7.	शूक्र	ओज	कील–मुहासें, यौवन

दोष, धातु एवं मल तीनों तत्त्व मिलकर शरीर का निर्माण एवं धारण करते है। वायुदोष का निवास स्थान अस्थियां है, पित्त दोष का रक्त और स्वेद तथा कफ का निवास अन्य शेष धातुऐं है।

अग्नियाँ :– अग्नियों की चार अवस्थायें होती है : – 1 तीक्ष्णाग्नि 2 मंदाग्नि 3 समाग्नि 4 विषमाग्नि।

भूताग्नियां : – ये पांच प्रकार की होती है। 1 आकाशाग्नि 2 वायव्याग्नि 3 आग्नेयाग्नि 4 आप्याग्नि 5 भौमाग्नि ये अग्नियाँ शरीर के अंदर पांच भौतिक अंशों का पाचनकर शरीर के पंच भौतिक अंशों को पोषण का कार्य करती है।

धात्वग्नियां : – ये सात प्रकार की होती है : –

1. रसाग्नि
2. रक्ताग्नि
3. मांसग्नि
4. मेदाग्नि
5. अस्थाग्नि
6. मज्जाग्नि
7. शुकाग्नि
8. महिलाओं में आर्तवाग्नि

ये सभी धात्वाग्नियां जाठराग्नि की किया द्वारा पक्व अन्न रस द्वारा धात्वाग्नि अपने अपने अंश का पाचनकर उस अन्न रस द्वारा धात्वाग्नि अपने –अपने अंश का अपनी अपनी धातु का पोषण करती है। धात्वाग्नि, भूताग्नि के सहयोग से अगलो कम वाली धातु एवं मलों को पोषण करती है। धात्वाग्नि की मंदता से धातु की वृद्वि एवं धात्वाग्नि की अतितीव्रता से धातु का क्षय होता है। वैद्यक शास्त्र के अनुसार आहार का सेवन करने के उपरान्त क्षीर दधिन्याय, केदारी कुल्या न्याय एवं खलेकपोत न्याय अर्थात इन तीन सिद्वान्तों के द्वारा आहार रस से प्रसाद भाग से सप्तधातूओं उपधातुओं एवं मलों का निर्माण होता है जो स्वस्थ शरीर के लिये परमावश्यक है।

पेाषण की आयुर्वेदीय प्रकिया : –

1. पोषण की प्रथम अवस्था : – संतुलित भोजन का ग्रहण
   जिहवा से बोधक कफ का संलयन
   षड् रसों की प्रतिति
   (1मधुर 2अम्ल, 3लवण 4कटु 5तिक्त 6 कषाय)
   प्राणवायु द्वारा भोजन का आमाशय में पवेश
   क्लेदक कफ एवं समान वायु द्वारा पाचक रस का संलयन भोजन का आमाशय के क्लेदन
   मधुररस एवं झागयुक्त कफ की उत्पति

कफ दोष की प्रधानता
2 पोषण की द्वितीय अवस्था :– अपक्व आहार का गृहणी में प्रवेश जठराग्नि समान वायु पाचक पित्त का संलयन आहार रस में विदग्ध पित्त दोष की प्रधानता।

3 पोषण की तृतीय अवस्था

अपक्व आहार का पक्वाशय में प्रवेश

पाचक पित्त द्वारा जल का अवशोषण

पिण्ड रूप में कटुरस एवं आयु की प्रदानता

खाद्य पदार्थ के दो भाग 1 सार (प्रसाद) 2 कटु (मल)

सारभाग स रस धातु का निर्माण

उपधातु का निर्माण

शेष सार भाग से रक्त धात्विाग्नि + भूताग्नि की किया

रक्त धातु + उपधातु+ तथा मल का निर्माण

इस प्रकार शुक्र धातु (ओज) तक निर्माण होता है। मूल रूप से मूत्र का निर्माण बस्ति में और पुरीष का पक्वाशय के अन्तिम भाग अर्थात् मलाशय में संचित होकर वेगोपरान्त शरीर से गुदमार्ग द्वारा उत्सर्जित कर दिया जाता है।

8.6 सारांश–

इस इकाई के अन्तर्गत मानवशरीर क्या है। इसका पोषण द्वारा द्वारा निर्माण आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के आधार पर तथा प्राचीन आयुर्वेद विज्ञान के आधार

पर कैसे हाता है? पोषण द्वारा शरीर का महत्त्व एवं पोषण की तीन अवस्थाओं का पाचन की प्रकिया की दृष्टि से वर्णन किया गया है।

18.7 शब्दावली

- दोष – त्रिदोष (वात, चित्त, कफ)
- सिरायें – अशुद्धरक्त की वाहिकायें
- धमनियां – शुद्ध रक्त की वाहिकायें
- मर्म – निश्चित मृत्यु के कारक स्थान
- सद्यप्राणहर – तुरन्त, मृत्यु करने वाले मर्म
- उत्सर्जित – शरीर से बाहर निकालना
- एकत्व अणुत्व – मन के दो गुण (एक एवं अत्यन्न सूक्ष्म)
- किट्ट – मल भाग
- प्रसाद – आहार रस का सार भाग
- क्षीर दधि न्याय – जैसे दूध से दही बनता है ऐसे ही एक साथ आहार रस क सार भाग से एक साथ सातों धातुयें बनती है।
- केदारी कुल्यान्याय – जैसे खेत में क्रमशः क्यारियों द्वारा पानी अंतिम छोर तक पहुंचाते है, ठीक उसी प्रकार आहार रस से क्रमशः रस धातु एवं अंतिम शुक धातु बनती है।

18.8 स्वमूल्यांकन प्रश्न

1 शरीर क्या है, बताइये?
2 शरीर का पंचमहाभूतों से निर्माण कैसे होता है?
3 धातु में कौन कौनसी होती है?
4 मलों की उत्पत्ति कैसे होती है?
5 उपधातुओं के नाम बताइये?

18.9 संदर्भ ग्रंथ

- आयुर्वेद प्रबोध – श्रीमती विमला शर्मा
- चरक संहिता ''पिद्योतनी'' – पं. काशीनाथ शास्त्री
- स्वस्थवृत्त विज्ञान – डॉ. सर्वेशकुमार अग्रवाल
- प्राकृतिक आयुर्विज्ञान – डॉ. राकेश जिन्दल
- शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान – श्रीनन्दन बंसल
- आयुर्वेद दीपिका – टीका चक्रपाणिकृत

- चरक संहिता – डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी
- सद्वृत्त विज्ञान – डॉ. रामहर्षसिंह
- शरीर किया विज्ञान – डॉ0 प्रमिला वर्मा
- सुश्रुत संहिता – आयुर्वेद रहस्य दीपिका
- आयुर्वेदचिकित्साविज्ञान – वैद्य बनवारी लाल गौड़

18.10 निबंधात्मक प्रश्न

1 पोषण द्वारा शरीर का आधुनिक मतानुसार वर्णन कीजिए।
2 पोषण द्वारा शरीर का आयुर्वेद मतानुसार उल्लेख कीजिए।
3 पोषण का महत्त्व एवं पोषण की तीन अवस्थाओं का वर्णन कीजिए।
4 धातु, उपधातु एवं मलों की उत्पत्ति सहित विस्तार से वर्णन कीजिए।

इकाई 19 पोषण का स्वास्थ्य सम्बन्धी महत्त्व

19.1 प्रस्तावना
19.2 उद्देश्य
19.3 पोषण एवं स्वास्थ्य
19.4 मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य
19.5 पोषण एवं स्वास्थ्य शिक्षा के कार्यक्रम
19.6 पोषण का महत्त्व एवं प्रकार
19.7 सांराश
19.8 शब्दावली
19.9 स्वमुंल्याकन हेतु प्रश्न
19.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
19.10 निबन्धात्मक प्रश्न

19.1 प्रस्तावना

पोषण एवं स्वास्थ्य एक दूसरे के पूरक है जो कि हमारे शरीर का पोशण आहार द्वारा हेाता है। पोषक तत्त्वों के द्वारा शरीर का पोषक होता है। शरीर की मरम्मत करना, टूट–फूट को ठीक करना, शरीर का संर्वधन करना, शक्ति का उत्पादन करना, शरीर की सम्पूर्ण रूप से रक्षा करना। आदि शुद्व सुपाच्चय एवं सात्विक, खनिज ,लवण युक्त प्राकृतिक संतुलित भोजन की शरीर को परमावश्यक होती है।

शुद्व एवं सात्विक भोजन के द्वारा तन एवं मन स्वास्थ्य तथा पवित्र बनता है। असंतुलित आहार, अप्राकृतिक आहार, अम्ल प्रदान भोजन के द्वारा शरीर में विजातीय द्रव्यों के इकटठा होने से आहार के द्वारा प्राप्त पोषक तत्त्व प्राप्त होते है। उचित पोषण के अभाव में कोशिकाओं के निरन्तर टूटने से शरीर को बार बार अस्वस्थता को प्राप्त होता रहता है, अतः पोषण हेतु आहार का सेवन भूख के लगने पर सेवन करना चाहिये। उतना ही सेवन करे। कि भूख शांत हो जाये। एकाग्रता के साथ साथ चबा चबाकर शांति से बिना हड़बड़ी के प्रसन्न मन के साथ साथ भेजन करना चाहिए।

19.2 उदेश्य

प्रस्तुत इकाई में हम अध्ययन करेगें कि

पोषण एवं स्वास्थ्य क्या है।

पोषण एवं स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले तत्त्व क्या है।

मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य क्या है।

किशोरावस्था एवं वृद्वावस्था में पोषण एवं स्वास्थ्य का महत्त्व क्या है। पोषण एवं स्वास्थ्य शिक्षा के कार्यक्रम में कौन कौन से है।

इन सभी बिन्दुओं पर अध्ययन सामग्री का पोषण एवं स्वास्थ्य की दृष्टि से वर्णन किया जा रहा हैं

19.3 पोषण एवं स्वास्थ्य

प्रत्येक मनुष्य दस संसार में स्वास्थ्य एवं सुखी रहना चाहता है। कोई भी दुखी एवं अस्वस्थ नही होना चाहता है। मनुष्य चुंकि एक सामाजिक प्राणी है। अतः जिस भी समाज एवं समुदाय में वह रहता है, वहॉ भोजन, पोषण एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं के बारें में पता करना प्रथम कार्य है।

1 समुदाय के व्यक्तियों के रहन सहन का पता करना।
2 उनके रीति रिवाज का पता करना।
3 उनकी परम्पराओ एवं मान्यताओं का पता करना।
4 भोजन एवं पोषण की स्थिति का पता करना।
5 बालक एवं वृद्व एव युवा के लिये प्र्याप्त भोजन का सर्वे करना।
6 पोषण हेतु आर्थिक स्थिति का पता करना।
7 इनके कार्य व्यवहार एवं धन्धा पानी का पता करना।
8 दूषित आहार का पता करना
9 पोषण एवं अन्य आहार का पता करना।
10 मल मूत्र एवं अपशिष्ट पदार्थो के निस्तारण का पता करना।
11 बाल्यावस्था में होने वाली बीमारी का पता करना।
12 संक्रमण जन्य रोगों एवं दस्त, सर्दी जुकाम आदि का पता करना।
13 पानी की शुद्वता का पता करना।
14 पानी की पर्याप्त उपलब्धता का पता करना।
15 फल सब्जियों हेतु विक्रय स्थल तक सड़क मार्ग का पता करना।?
16 विक्रय स्थानों की पर्याप्त स्वच्छता की जानकारी करना।
17 खाद्य सागग्री में कीटनाशक द्रव्यों का पता करना।
18 खाद्य सामग्री में मिलावट का पता करना।
19 बासी एवं सडी गली खाद्य सामग्री का पता करना।

पोषण एवं स्वास्थ्य के अन्तर्गत परस्पर नियमों एवं सम्यक दिनचर्या ,जीवनचर्या, ऋतु चर्या, तदनरूप आदि कारकों का एक दूसरें पर प्रभाव पडता है। पोषण सामान्यतया उस अध्ययन को कहते है। जिसमें मुनष्य द्वारा खाये गये भोजन का पाचनोपरान्त प्राप्त होने वाले पोषक तत्त्वों के द्वारा आहार के परिवर्तनों का परिणाम समाहित है। पोषण एवं स्वास्थ्य संबधी आहार को सेवन का तरीका कम या अधिक मात्रा में आहार का सेवन आदि कारक स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव डालते है।

स्वास्थ्य के अनतर्गत निम्न प्रकार के चार कारकों का अध्ययन किया जाना आवश्यक है।

1. शारिरिक स्वास्थ्य
2. मानसिक स्वास्थ्य
3. समाजिक स्वास्थ्य
4. आध्यात्मिक स्वास्थ्य

(1) शारीरिक स्वास्थ्य–i वात पित्तएवं कफ त्रिदोष समान मात्रा में हो

ii पाचन शक्ति सामान्य एवं सक्षम हो।
iii शरीर में रक्त, रस, मांस ,मेंद, अस्थि, मज्जा, एवं शुक्र धातु सम अवस्था में हो।
iv साफ एवं कोमल स्वच्छ त्वचा हो।
v आंख नाक, कान, जिव्हा, आदि ज्ञानेन्द्रियाँ स्वस्थ हो।
vi जिव्हा स्वस्थ एवं निर्मल हो

- दांत साफ सुथरें हो।
- मुंह से दुर्गंध ना आती हो।
- समय पर भूख लगती हो।
- अच्छी गहरी नींद आती हो।
- शारीरिक चेष्टा सम प्रमाण में हो।
- जिसका रीढ खम्ब सीधा हो।
- चेहर`पर कांति ओज तेज हो।
- कर्मेद्रिंय हाथ पांव आदि स्वस्थ हो।
- मल विसर्जन सम्यक् मात्रा में समय पर होता हैं।
- शरीर की उचाई के हिसाब से वजन हो।
- शारीरिक संगठन सुदृढ़ एवं लचीला हो।

2. मानसिक स्वास्थ्य

- इन्द्रियाँ प्रसन्न हो।
- डर, क्रोध, इर्ष्या, का अभाव हो।
- मनसिक तनाव एवं अवसाद ना हो।
- स्वभाव शुद्व एवं सात्विक हो।
- वाणी में संयम और मधुरता हो।
- कुशल व्यवहारी हो।
- स्वार्थी ना हों
- संतोषी जीवन की प्रवृति का वाला हो।
- परोपकार एवं समाज सेवी की भावना वाला हो।
- जीव मात्र के प्रति दया की भावना वाला हो।
- परिस्थितियों के साथ संघर्ष करने की सहनशक्ति वाला हो।
- विकट परिस्थितियों में सांमजस्य बढाने वाला हो।
- हमेशा प्रसन्न रहने वाला हो।
- तनाव मुक्त जीवन शैली का प्रबन्धन करने वाला हो।

- दुसरों की भावनाओं के प्रति संवेदनशील वाला हो।
- पाँच यमों एवं नियमों का पालन करने वाला हो।

03. समाजिक स्वास्थ्य

- व्यक्ति एवं समाज में किये गये व्यवहार एवं आचरण का सामाजिक स्वास्थ्य पर परस्पर प्रभाव पडता है।
- प्रदूषण मुक्त वातावरण हो।
- शुद्व पेयजल एवं पानी की टंकियों का प्रबंध हो।
- मल मूत्र एवं अपशिष्ट पदार्थों के निकासी की योजना हो।
- सुलभ शौचालय तथा वे स्वस्थ हो।
- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रहमचर्य एवं अपरिग्रही स्वभाव वाला हो।
- वृक्षारोपण का अधिकाधिक कार्य हो।
- सार्वजनिक स्थलों पर पूर्ण स्वच्छता हो।
- चिकित्सालय पर्याप्त जंनसंख्यानुसार वाला हो।
- संक्रमाण रोधी व्यवस्था हो।
- उचित शिक्षा की व्यवस्था हो।
- भय एवं भ्रममुक्त समाज हो।
- मानव कल्याण के हितों का समाज वाला हो।

आध्यात्मिक स्वास्थ्य

- महर्षि वेदव्यास जी ने अठारह पुराणों का सार निम्नानुसार वर्णित किया है जो कि निम्न प्रकार से है–

  " अष्टादशेषु पुराणेषु व्यासस्य वचन द्वयं।

  परोपकारस्य पुण्याय, पापाय परपीडनम। अर्थात परोपकार के समान कोई पुण्य नही है, एवं दूसरों को कष्ट देने के समान कोई पाप नहीं है।

  01. प्राणी मात्र के कल्याण की भावना हो।
  02. सर्वे भवन्तु सुखीन का आचरण हो।
  03तन मन एवं धन की शुद्वता वाला हो।
  04परस्पर सहानुभूति वाला हो।
  05परेापकार एवं लोकल्याणकारी की भावना वाला हो।
  06कथनी एवं करनी में अतर वाला नहीं हो।
  07प्रतिबद्वता ,कर्त्तव्यपालन वाला हो।
  08योग एवं प्राणायाम का अम्यासी हो।
  09श्रेष्ठ चरित्रावान व्यक्तित्त्व वाला हो।
  10इन्द्रियों को संयम में रखने वाला हो।
  11सकारात्मक जीवन शैली जीने वाला हो।
  12पुण्य कार्यो के द्वारा आत्मिक उत्थान वाला हो।

ठस प्रकार विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार भी स्वास्थ्य के बारें में शारिरिक मानसिक और सामाजिक इन अवस्थाओं का परस्पर समावेश व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में माना गया है।

पोषण एवं स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले तत्त्व–

- खाद्य सामग्री की जनसंख्या के अनुपात में उपलब्ध
- कृषि व्यवस्था एवं खाद्यान्न का उत्पादन करना।
- उगायी जाने वाली मुख्य फसलों की उपलब्धता।
- मौसमी फल एवं सब्जियों की उपलब्धता।
- खान पान की सामाजिक पद्वतियाँ।
- बच्चों के आहार से संबधी नीतियों।
- स्थानीय दुकाने एवं बाजार सम्बन्धी नीतियाँ
- समाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन में स्वास्थ्य सम्बन्धी जागरण करना।
- पेाषण संबधी स्वास्थ्य शिक्षा का प्रचार प्रसार करना।
- प्रदूषण मुक्त वातावरण का निर्माण।
- मनसा वाचा कर्मणा आचरण में शुद्विकरण ।
- समुदाय का आर्थिक स्तर
- समुदाय का शैक्षिणिक स्तर
- समुदाय की चिकित्सकीय व्यवस्था
- समुदाय हेतु परिवर्तन मार्ग एवं परिवहन व्यवस्था।
- बच्चों एवं महिलाओं से संबधित विशेष स्वास्थ्य की नीतियों।
- पोषण व्यवस्था एवं आहार का समुचित भंडारण करना।
- अंध विश्वास एवं गलत धारणाओं का समाधान करना।
- पोषण एवं स्वास्थ्य की कार्य योजनाओं का विकास।
- सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं मनौवेज्ञानिक स्तर।
- निम्नतम मृत्युदर एवं न्यून बीमारियो।
- जनंसख्या वृद्वि का नियंत्रण करना।
- सामाजिक रीति रिवाजों एवं परम्परागत मान्यतायें।

19.4 मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य

मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य के विषय का पोषण जन्य कार्यक्रम में विशेष महत्त्व है। इसे हम निम्न प्रकार से वर्णन कर अध्ययन करेगे।

01. गर्भिणी परिचर्या में पोषण
02. स्तन्य काल में पोषण
03. शैशवास्था में पोषणा।
04. विद्यालयी छात्र छात्राओं का पोषण करना।
05. अवस्थाजन्य पोषण।

01. **गर्भिणी परिचर्या में पोषण–** आचार्य सुश्रुत ने गर्भिणी ने परिचर्या का आुयर्वेद में सुश्रुत संहिता नामक ग्रंथ में विस्तार से वर्णन किया है। " शुक्रशोणित संयोग" के उपरान्त गर्भ ढहरने पर प्रथम मास में "कलल "के रूप में द्वितीय मास के "गर्भ पिण्ड" के रूप में तृतीय मास में "पंचपीड़िका "के रूप में तथा चतुर्थ मास में गर्भिणी की संज्ञा "दोहृदनी'' "दी गई है। जिसमें मां का हदय तथा गर्भ का हृदय दोनों कार्य करने लग जाते है। पंचम मास में मन बनता है। अतः सात्त्विक मन का गर्भ का बने इस हेतु सात्त्विक जीवनचर्या का पालन करना महती आवश्यक है। " षष्ठे बुद्वि" गर्भिणी के छठे मास में गर्भ की बुद्वि का निमार्ण होता है। अतः इस मास में बादाम, शंखपुष्पी, ब्राह्मी, जटामांसी , गोघृत आदि मेध्य रसायनों का सेवन गर्भिणी को करना चाहिए। इस प्रकार प्रथमदिन से लेकर 9 वें माह तक की गर्भिणीपरिं चर्या का उल्लेख मिलता है।
02. गर्भावस्था के दौरान खान पान वजन का बढना, प्रातः काल में उल्टी होना, अम्लपित का बढना, हृदय में जलन होना, कब्जीयत होना, पैरो में सूजन आना, गर्भिणी को मिट्टी खाने की इच्छा होना आदि। समस्याओं से गुजरना पडता है।इन समस्याओं के समाधान हेतु निम्न उपाय किय जीन चाहिये।

- प्रातः काल में उल्टियाँ होने पर पुदीना धनिया सौफ – इलायची का सेवन करें।
- रात्रि में हल्का आहार लेना चाहिये।
- एक गिलास के दूध का नियमित सेवन करना चाहिये।
- दिनभर में चार या पांच बार थोड़ा थोड़ा आहार लेना चाहिये।
- हृदय में जलन के होने पर तेज मिर्च मसालों का त्याग कर देना चाहिए।
- धनियाँ, मिटी एवं सौफ का चूर्ण लेना चाहिए।
- कब्ज होने पर तरलीय आहार का सेवन करना चाहिए।
- चोकर युक्त आटे का प्रयेाग करना चाहिए।
- आहार में मौसमी फलों का सेवन करना चाहिए।
- रेशे युक्त फाइबर आहार का सेवन करना चाहिए।
- हल्का नियमित व्ययाम करना चाहिए।
- लौह तत्त्व की कमी होने पर (एनीमिया) होने पर अनार, सेवफल, का सेवन चुकन्दर का
  सेवन करना चाहिए।

- हरी सब्जियाँ लौकी, पत्तागोभी, मैथी, चुकन्दर पालक, आदि का सेवन करना चाहिए।
- यदि हो सके तो आइरन की गोली लेवें उसे भोजन के बाद में लेनी चाहिए।
- आइरन की गोली गर्म दूध या चाय में कॉफी के साथ नहीं लेना चाहिए।
- गर्भावस्था में सामान्य अवस्था से अधिक आहार की आवश्यकता गर्भ में पल रहें भ्रूण के पोषण हेतु होती है।
- अनाज एवं दालों और सब्जियों को मिलाकर खिचड़ी आदि का सेवन करना चाहिए।
- मौसमी फलों को सेवन अवश्य करना चाहिए ताकि रोग प्रतिरोधक क्षमता बनी रहे।
- दूध एवं दूध से बने भोज्य पदार्थो का सेवन नियमित रूप से गर्भावस्था में करना चाहिए।
- पानी की मात्रा को अधिक सेवन करना चाहिए।
- गर्भस्थ शिशु के मानसिक विकास हेतु आयोडीनयुक्त नमक का सेवन करना चाहिए।
- गर्भवती की अति उर्जा हेतु लगभग 300 कैलारी प्रतिदिन के हिसाब से लेनी चाहिए।
- वनस्पति एवं प्रोटीन का सेवन अधिक करना चाहिए।
- कैल्सियम की 30 ग्राम की मात्रा आवश्यकतानुसार लेना चहिए।
- विटामिन ए की मात्रा नवजात के नेत्रों की रक्षा के लिये लेना चाहिए।
- भ्रूण की वृद्वि एवं विकास के लिये थायमिन सेवन करना चाहिए।
- राइबोफलोबिन सम्पूर्ण वृद्वि एवं स्वास्थ्य हेतु लेना चाहिए।
- फोलिक अम्ल का सेवन परिपक्वतता हेतु सेवन करना चाहिए।
- विटामिन बी का सेवन, जिसका आंतों में भी निमार्ण होता है। उसका सेवन करना चाहिए।

स्तन्य काल में या धात्री अवस्था में पोषण–आवश्यक निम्न तत्त्वों की अतिरिक्त मात्रा में सेंवन करना चाहिए।

01. प्रोटीन (दूध, मांस, मछली, अण्डा)
02. कैल्सियम
03. लौहतत्त्व(आयरन)

- विटामिन ए तथा कैरोटिन विटामिन बी, विटामिन सी तथा तरल पदार्थ
- मां का दूध एवं शिशु की सुरक्षा करता है।
- शिशु को बीमारी एवं संक्रमण से बचाता है।
- मां का दूध विटामिन ए की कमी को पूर्ति करता है।
- स्तन पान से बच्चों का विकास होता है।

- स्तनपान में सारें पौष्टिक तत्त्व पाये जाते है।
- सुपाच्चय एवं सुग्राह्य होता है।
- स्तनपान बच्चों को कब्ज से बचाता है।
- स्तनपान का दूध सही तापमान वाला होता है।
- स्तानपान का दूध हमेशा तैयार मिलता है।
- स्तपनपान का दूध एलर्जी से बचाता है। स्तनपान का दूध भावनात्मक दृष्टि से लाभ प्रद होता हैं।
- शिशु के सर्वार्गीण विकास हेतु आवश्यक है।
- शिशु को आवश्यक वृद्वि हेतु प्रोटिन उपलब्ध करता है।
- शिशु को विकास हेतु वसा उपलब्ध करता है।
- स्तनपान के दूध में लैक्टोस अर्थात दूध शर्करा होती है।
- इस दूध में मस्तिष्क के विकास हेतु पर्याप्त आयरन होता है।
- दूध मे ंजल में घुलनशीनल विटामिन, थाइमिन एवं विटामिन सी पाये जाते हैं।
- नैत्र ज्योति की वृद्वि हेतु विटामिन ए की पूर्ति की जाती है।
- स्तनपान के द्वारा भावनात्मक ममत्व अर्थात वात्सल्य की प्राप्ति होती है।
- स्तनपान से बच्चों को आवश्यक वातावरण प्राप्त होता है।
- जैसे गले लगाना, गोद में सुलाना, परिचित चेहरा, सुरक्षित भाव की प्राप्ति होती है।
- स्तनपान के कारण माताओं में भी निम्न लाभ होता है।
- प्रसूता के शरीर को सुडोल एवं सुन्दर बनाता है।
- धात्री का स्वास्थ्य संरक्षण एवं वृद्वि करता है।
- प्रसव के दौरान एवं गर्भ के दौरान समय में बढ़े हुये गर्भाशय को पूर्व स्थिति में लाता है।
- स्तनपान के कारण जज्दी गर्भधारण नहीं होता है। अतः यह परिवार नियोजन में भी सहायक है।
- स्तनपान कराने वाली महिला कों गर्भाशय अण्डाशय तथा स्तन केंसर आदि का बचाव होता है।

किशोरावस्था में पोषण एवं स्वास्थ्य– इस अवस्था में बालक या बालिका अधिक क्रियाशील में होते हैं। शारीरिक एवं मानसिक रूप में उनका तेजी से विकास होता है। शरीर की लम्बाई भी एकाएक बढ़ना प्रारम्भ होती है। बच्चा स्वयं भोजन करना सीख लेता है, तथा अपने स्वाद के रूचि के अनुसार भोजन का आनन्द लेकर प्राप्त करता है। बच्चें को अधिक से अधिक कैलोरी एवं स्टार्चयुक्त आहार की आवश्यकता होती है। किशोरावस्था में विद्यालय जाने से पूर्व एवं विद्यालय जाने के समय बच्चों में विशेष शारीरिक सुस्वास्थ्य के संगठन हेतु पौष्टिक तत्त्वों की आवश्यकता होती है। जो कि आहार के माध्यम से उसे प्राप्त होते हैं। शरीर के संवर्धन, विकास, मांसपेशियों, ऊतकों, के निर्माण तथा संक्रामक

रोगों से बचने हेतु प्रोटीन की आवश्यकता होती है। प्रोटीन की मात्रा की पूर्ति हेतु गाय का दूध, बकरी का दूध, या फिर दूध से बने हुये पदार्थ का सेवन कराना चाहिए।

बच्चों के अस्थ्यिों एवं दांतो के विकास के लिये कैल्शियम, खून की वृद्वि हेतु आयोडीन आदि खनिज लवणोंकी आवश्यकता होती है। जिसकी पूर्ति हेतु हरी सब्जियॉ, मौसमी फल आदि का सेवन करना चाहीए।

जैसे जैसे किशोरावस्था में बालक का शरीर बढ़ता है। त्यों तयों उसे विटामिन की आवश्यकता भी बढ़ती है। बालको को आहार में दूध मक्खन, घी, दही, सब्जियों एवं पीले फलों का सेवन कराना चाहिए। इससे उसको आवश्यक बढ़ी हुई विटामिन ए की मात्रा की पूर्ति होती है। जिससे नैत्र सुरक्षित रहते है, एवं दृष्टि भी स्वस्थ बनी रहती है।

बच्चों के द्वारा अधिक व्यायाम और खेल कूद करने के कारण, अधिक सक्रिय होने के कारण उन्हें ऊर्जा की आवश्यकता होती है। अतः आहार में वसा की पूर्ति व वसाजन्य आहार का सेवन कराना चाहिए। पोषण की दृष्टि से उर्जा संबधी औसतन 2500 कैलोरी की प्रतिदिन आवश्यकता होती है। जिसकी पूर्ति करने के लिये प्रोटीन, वसा, कैल्सियम, आयरन, विटामिन ए, कैरोटिन ,थाइमिन, फौलिक एसिड एवं विटामिन बी 12 की पूर्ति पोषण के द्वारा प्राप्त करनी चाहिए।

प्रौढावस्था में पोषण एवं स्वास्थ्य–

आजकल प्रौढ़ावस्था में विशेष शारीरिक एवं मानसिक भावों में परिवर्तन को देखते हुये अलग से जरा चिकित्सा विभाग खोले गये है। जरा चिकित्सा के अन्तर्गत प्रौढावस्था में पौषणिक आहार की आवश्यकतानुसार आहार की समायोजना की जाती है। जिससे शारिरिक कार्यानुरूप एवं मानसिक बौद्विक कार्यानरूप भिन्न भिन्न प्राकर से उर्जा की आवश्यकता के अनुरूप पूर्ति हो। शरीर में होने वाली टूट–फूट की मरम्मत के लिये प्रोटीन की आवश्यकता होती है। परिश्रमी में व्यक्तियों को अधिक वसा की आवश्यकता होती है। दिमागी कार्य करने वालों को अधिक वसा को नहीं लेना चाहिए। प्रौढावस्था में कम कैलोरी की शरीर को आवश्यकता होती है, क्योकि वृद्वावस्था में शरीर की परिश्रमजन्य क्रियाशीलता न्यून हो जाती है। बैसल मेटाबौलिक दर अर्थात बी.एम.आर.भी कम होने से कैलोरीज की भी कम आवश्यकता होती है।

वृद्वावस्था में कैल्सियम एवं लौह तत्त्व तथा विटामिन का अवशोषण कम होने पर इनकी पत्तेदार सब्जियों फाइबर रेशे युक्त आहार जिनसे आंतों की सक्रियता, पाचन शक्ति हेतु फलो का सेवन अति आवश्यक हो जाता है। इसलिये चोकर युक्त आटा, छिलकायुक्त ,दालें, कच्चे फल एवं पानी की पूर्ति हेतु एक दिन में न्यूनतम 10 से 12 गिलास पानी पीना चाहिए।

इस अवस्था में चूकिं दाँत कमजोर हो जाते है, या गिर जाते है अतः भोजन मुलायम तथा आसानी से चबाने वाला होना चाहिए। पाचक रसों एवं एन्जाइम की कमी के कारण फाइबर रेशे युक्त आहार आसानी से पचने वाला, हल्का सुर्पाच्य दलिया खिचड़ी जैसा आहार का सेवन करना चाहिए।

हृदय रोग की सम्भावनाओं को ध्यान में रखते हुये भोजन में वसा की मात्रा कम सेवन करनी चाहिए। अधिक वसा के सेवन चिकनाई तैलीय भोजन का त्याग करना चाहिए। रात्रि में नींद में व्यवधान ना हो इसके लिये रात्रि में भोजन त्याग करना चाहिए। सांयकाल का

भोजन दोपहर के भोजन की तुलना में हल्का होना चाहिए। आहार में द्रव्यों में स्निगध एवं गरिष्ठ आहार से बचना चाहिए। अतः भोजन तरलीय पदार्थ वाला अधिक लेना चाहिए। तरलीय आहार से तात्पर्य यह है कि जो आहार पाचन तत्र में जलन, गैस, कब्ज, उत्पन्न नहीं करें तथा क्रमाकुञ्चन गति को (आंतों की) उत्तेजित करें। इसके अन्तर्गत निम्न प्रकार से आहार द्रव्य होते है।

01. सभी खाद्य तरल पदार्थ
02. फल एवं सब्जियों का रस
03. अनाज का मोटा दलिया
04. दूध दही एवं छाछ
05. सूप आदि का सेवन करना आदि।

संक्षेप में वृद्वावस्था में रोगों की रेाकथाम हेतु जीवन शैली तथाा स्वभाव के अनुसार सावधानीयाँ रखते हुये पूर्ण संतुलित मिताहार का सेवन करना, व्यसनों से मुक्त रहना, शरीर के भार का नियंत्रण करना पर्याप्त, विश्राम करना, तथा भरपूर गहरी नींद लेना तथा अपने आपको शारीरिक एवं मानसिक दोनों तरीके से सक्रिय रखते हुये तनावरहित प्रसन्नता के साथ आध्यात्मिक परोपकार का जीवन जीने का प्रयास करना चाहिए।

प्रातः कालीन नाश्ता दोपहर शाम के समय का भोजन एंव रात्रि का भोजन	प्रातः कोष्ण जल/ हल्की तरल काफी/ चाय उपमा/ इडली/ नारियल/ अंकुरित आहार/ चावल/ सब्जियों/ युक्त दालें आटे की चपाती छाछ/ दही/ एवं अल्पाहार में फलों का सलाद/ खिचडी/ हरी चावल/ चपाती/ दलिया/ खिचड़ी/ हरी सब्जियाँ /दाल /दूध आदि।

19.5 पोषण एवं स्वास्थ्य शिाक्षा के कार्य्रकम

शिशुओं एवं गर्भवती महिलाओं समबधी मृत्युदर को ध्यान में रखते हुये तथा कुपोषण की रेाकथाम के लिये पोषण एवं स्वास्थ्य शिक्षा के कार्यकम जनंसंचार की प्राणालियों के माध्यम से WHO, UNISEF. ARE, समेकिंत बाल विकास आदि के द्वारा निम्नानुसार संस्थाओं के सहयेाग से कार्य किये जा रहे हैं।

समेंकित बाल विकास सेवा कार्यकमः

महिला एवं बाल विकास
मानव विकास सांसाधन मंत्रालय

यूनिसेफ संस्थान
बाल एवं ववकिास सेवा एवं पुष्टाहार निदेशालय
समुदाय पर आधारित मातृ एवं बाल विकास स्वास्थ्य एवं पोषण परियोजना
बाल्यावस्था देखभाल हेतु आंगनबाडी के कार्यक्रम
फुलवारी, आई. सी. डी. के कार्यक्रम
आयोडीन युक्त नमक, नमक विभाग, उद्योग मंत्रालय
राष्ट्रीय जनंसहयोग एवं बाल विकास संस्थान
Nutritive Value of Indian foods.
National institute of Nutrition ICMR Hydrabad ,National Guidelines of Infants and Young child feeding ministry of Human of Resources Development Department of Women and child Development Foods and Nutrition Board Govt. of India.

पोषण षिक्षा संबधी कार्यक्रम

उद्देश्य– शिशु एवं गर्भवती महिलाओं सम्बन्धी मृत्यु दर को रोकना।

- खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्वि करना।
- जनंसख्या का नियंन्त्रण करना ।
- पोषण कार्यक्रमों को जनसामान्य तक पुहचाना।

कार्यक्रम–

01. संयुंक्त पोषण कार्यक्रम Compositive Programme
02. व्यवहारिक पोषण काग्रक्रम – Applied Nutrition rogramme
03. विशेष पोषण कार्यक्रम Special Nutrician Programme
04. मध्याहन भोजन कार्यक्रम Mid dat mil Programme
05. पोषण स्वास्थ्य शिक्षा और पर्यावरण स्वच्छता कार्यक्रम -- Health Education and Environmental Development
06. आक्सफाम परियोजना – पोषण पुर्नवासस कार्यक्रम

समन्वित बाल विकास सेवाये (आइ. सी.डी.एस.)

बच्चों में बाल स्वास्थ्य विकास, गर्भवती महिला,स्तनपान कराने वाली महिला, महिलाओं का पोषण स्तर ,बच्चें का जन्म से पूर्व में, जन्म के उपरांत तथा वुद्वि काल के दर के दौरान पर्याप्त स्वास्थ्य सेवायें शिशु एवं महिला का शारिरिक मानसिक एवं सामाजिक विकास का सुनिषिचत करण करना आदि।

बाल कल्याण सेवायें समाज के पिछड़े वर्गों के लिये बच्चों का विकास एवं पोलियोग्रस्त एवं विंकलाग बच्चों का विकास, मन्दबुद्वि बच्चों के विकास मूक बधिर बच्चों का विकास निर्धन बच्चों का विकास कुल मिलाकर बच्चों के माताओं के स्वास्थ्य पोषण स्तर पर सुधार करना आदि सभी शिक्षा एवं स्वास्थ्य प्रदान करना ।उक्त कार्यक्रम निम्नानुसार आई. सी. डी. एस. के द्वारा सम्पादित किये जाते है।

01. प्रतिरक्षीकरण (टीकाकरण)
02. स्वास्थ्य जाचँ एवं परीक्षण
03. मेडिकल सेवाऐ। (रेफरल हास्पिटल आदि)।
04. पूरक पोषाहार
05. अनौपारिक शालापूर्व शिक्षा आदि।
06. स्वच्छ पेयजल
07. स्वच्छ भारत स्वस्थ भारत

हमारे देश में ये सभी सेवाऐं आंगनबाडी केन्द्रित सबसे छोटी इकाई के द्वारा सम्पूर्ण देश में चलाई जा रही है। ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्राों में 1000 जनसंख्या तथा आदिवासी वनवासी क्षेत्रों के में 700 जनसंख्या को प्रत्येक एक आंगनबाडी केन्द्र द्वारा समाविष्ट किया जाता है। इन आंगनबाड़ी केन्द्रों का पोषण एवं स्वास्थ्य शिक्षा से सम्बधित सरकार के कार्यक्रमों का लाभ महिला बाल विकास के द्वारा कई सुदूर क्षेत्रों तक पहुचाया जाता है।

19.6 पोषण का महत्त्व एवं प्रकार

पोषण आहार द्रव्यों प्राप्त होता है। शारीरिक क्रियाओं को सम्पन्न करने व शरीर की वृद्वि तथा सेल्स तथा टिशुओं का पुनः निर्माण हेतु पोषण का महत्त्व है।
आहार द्रव्य जिसे पोषण प्राप्त होता है। चार प्रकार से सेवन किया जाता है।

01. अशित = थोड़ा चबाने योग्य आहार
02. पीत = पीने योग्य
03. लीढ = चाटने के योग्य आहार
04. खादित = बहुत चबाने योग्य आहार

इन चारों को भी वैद्यक शास्त्र में पेय एवं खाद्य इन दों भागों को कुल बारह वर्गो में आहार द्रव्यों को बांटा गया है।

01. शूक धान्य
02. शमी धान्य
03. मांस वर्ग
04. शाक वर्ग सब्जियाँ
05. फलवर्ग
06. हरितवर्ग
07. मद्यवर्ग

08. दुग्ध वर्ग
09. इक्षुविकार वर्ग
10. कृतान्न वर्ग
11. आहार उपयोगी वर्ग तेल नमक मसाले आदि।
12. जल वर्ग

पोषण के प्रकार – पोषण तीन प्रकार के होते है–उत्तम पोषण, अपर्याप्त पोषण कुपोषण

01. **उतम पोषण–** इसके अन्तर्गत स्वस्थ लक्ष्णों वाला शरीर जो कि शारिरिक एवं मानसिक एवं मन इन्द्रियाँ जिसकी प्रसन्न तथा स्वस्थ हो वह उत्तम पोषण वाले समूह में हैं। जिसका तन एवं मन तथा क्रियायें संतंलित रहती है। आहार में संतंलित हो, सभी पोषक तत्त्वों का अनुपात सही मात्राा में हो, उचित पोषक एवं अवशोषण भी समुचित हो, उतम पोषण कहलाता हैं।
02. **अपर्याप्त पोषण–** इसमें भोजन की मात्रा या पोषक तत्त्वों की मात्रा में न्यूनतम हो। जिसके कारण शरीर में पोषक तत्त्वों का अभाव बना रहें, तथा शरीर रूगण हो जावे वह अपर्याप्त पोषण कहलाता हैं। इसमें विटामिन की कमी जन्यरोंग प्रोटीन की कमीजन्य रोग, खनिज लवणों की कमी से उत्पन्न लक्षणों वाले रोग होते हैं।
03. **अतिपोषण–** इसे भी कुपोषण का ही प्रकार कहा सकते है। अधिक मात्रा में बार बार आवश्यकता से अधिक पोषक तत्त्वों का आहार द्रव्यों द्वारा सेवन करने पर अतिपोषणजन्य व्याधियाँ उत्पन्न होती है। जैसे मोटापा या सतर्पणजन्य रोग अतिपोषणजन्य होते हैं। में पाचन क्रिया सही नहीं रहती हैं। तथा पोषक तत्त्वों का अवशोषण भी सम्यक नहीं होता हैं।

19.7 सारांश

इस इकाई में हमने सर्वप्रथम पोषक तत्त्वों एवं स्वास्थ्य के सभी क्षेत्र जैसे शारीरिक स्वास्थ्य , एवं मानसिक स्वास्थ्य, सामाजिक स्वास्थ्य एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य का अध्ययन किया है। भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश में पोषण एवं स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले तत्त्वों का अध्ययन किया है।मातृ एवं शिशु पर आधारित कार्यक्रमों में तथा विभिन्न अवस्थाओं में पोषण संबधी महत्त्वपूर्ण जानकारीयों का समावेश किया है। वस्तुतः स्वास्थ्य के प्रति पोषण द्वारा बेहतर स्वास्थ्य को केन्द्रित करते हुयें बच्चों ,महिलाओं, प्रौढ़ों को पोषण के प्रति जागरूक करना। मानव शरीर को स्वस्थ एवं सदा के लिये क्रियाशील तथा सुखमय जीवन जीने के लिये पोषण के द्वारा निरोगी काया को प्राप्त करना है। जनसामान्य में विशेषकर बालकों एवं महिलाओं तथा वृद्व व्यक्तियों में पोषण के द्वारा पोषक तत्त्वों से शारिरिक मानसिक तथा आध्यात्मिक स्वास्थ्य को प्राप्त कर स्वास्थ्य संरक्षण करना एवं पोषक की प्राप्ति हेतु पोषण का महत्त्व समझना तदनुरूप संतंलित आहार का सेवन करना। पोषणजन्य पौष्टिक आहार में प्राटिन, श्वेतसार, वसा, खनिज लवण, विटामिन्स, और जल आदि

पौष्टिक तत्त्वों का शरीर के निर्माण में उर्जा उत्पादन तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता का महत्त्व का ज्ञान प्राप्त करना है। अन्त में पोषण एवं स्वास्थ्य पर आधारित कार्यक्रमों की संक्षेप में विवेचना की गई है।

19.8 शब्दावली

- ज्ञानेन्द्रियाँ – शब्द,स्पर्श, रूप, रस, गंध को प्राप्त कराने वाली पांच प्रकार की इन्द्रियॉ , चक्षुनेन्द्रिय, द्रोन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रियाँ, रसनेदिय, वागेनिद्रय आदि।
- परोपकार – दूसरें की सेवाभावना से सेवा करना निस्वर्थ भावना से सेवा करना।
- संयम – नियंन्त्रण में रखना
- पंचपीडिका – गर्भमें तृतीय मास की आकृति– दो हाथ, दो पैर एवं एक सिर
- दोह्रदयनी – गर्भ के चतुर्थ मास में गर्भीणी की दो ह्रदय, वाली संज्ञा(एक मॉ का ह्रदय एवं एक गर्भस्थ शिशु का हदय जो कि क्रियाशील धड़कता है)
- विबन्ध– कब्जीयत होना।
- वात्सल्य्– मां के द्वारा बच्चे को किये जाने वाला स्नेह प्यार।
- मिताहार– स्वल्प मात्रा में लिया जाने वाला उपयोगी भोजन
- मानव संसाधन विकास – भारत सरकार का मंत्रालय जो कि मानव के समग्र विकास को करता है तथा शोषण को रोकता है।
- शूकधान्य – बाली वाले अनाज
- शमीधान्य– दाल वाले अनाज
- हरित वर्ग – सलाद
- इक्षुविकार– गन्नें से निर्मित गुड़, चीनी आदि।
- कृतान्न. – पकाया हुआा भोजन आदि।

19.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

01. पोषण से क्या आशय है ?
02. पोषक तत्त्वों में कौन कौन से होते है ?
03. स्वास्थ्य संरक्षण में पोषक तत्त्वों को भूमिका क्या क्या है ?
04. मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य क्या है ?

19.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

- शरीर किया विज्ञान – डॉ0 प्रमिला वर्मा
- सुश्रुत संहिता – आयुर्वेद रहस्य दीपिका
- आयुर्वेदचिकित्साविज्ञान – वैद्य बनवारी लाल गौड़
- प्राकृतिक आयुर्विज्ञान – डॉ. राकेश जिन्दल
- शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान – श्रीनन्दन बंसल
- आयुर्वेद दीपिका – टीका चक्रपाणिकृत
- आयुर्वेद प्रबोध – श्रीमती विमला शर्मा
- चरक संहिता ''पिद्योतनी'' – पं. काशीनाथ शास्त्री
- चरक संहिता – डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी
- सद्वृत्त विज्ञान – डॉ. रामहर्षसिंह

19.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1 पोषण एवं स्वास्थ्य की आज के परिप्रेक्ष्य में वर्णन कीजिये।
2 स्वास्थ्य के सभी चारों क्षैत्र शारीरिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक का वर्णन कीजिये?
3 मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य से संबंधी सरकार की लोक कल्याणकारी योजनाओं का उल्लेख कीजिये?